Master of Arts (Public Administration) (DDE)

Semester – I

Paper Code – 20PUB21C5

FINANCIAL ADMINISTRATION – I

वित्तीय प्रशासन – I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

MASTER OF ARTS (PUBLIC ADMINISTRATION)

FIRST SEMESTER

FINANCIAL ADMINISTRATION – II

PAPER CODE -20PUB21C5

M. Marks = 100
Term End Examination = 80
Assignment = 20
Time = 3 hrs.

Note : Attempt five questions by selecting one question from each unit. Question No. 9 is compulsory. All Questions carry equal marks.

Course Outcomes : On successful completion of the course the student will be able to :

CO – 1. Acquaint with the role of Monetary, Fiscal and Disinvestment Policy.

CO – 2 Explain the Parliamentary control over Finance, Delegation of Financial Powers in relation to Centre and States.

CO – 3. Familiar with Modified Accounting System and Performance Audit as well as the basics of Accounting and Auditing System

CO – 4. Describe the organization and functions of Central Board of Direct Taxes and Central Board of Excise and Custom as well as features of different committees and Commission of Tax Reforms.

UNIT – I

Financial Administration: Evolution, Meaning, Nature, Scope and Significance; Public Finance: Meaning, Nature, Scope and Significance; Public Revenue: Classification and Sources; Public Expenditure: Classification and Similarities &Dissimilarities between Public and Private Expenditure

UNIT – II

Budget: Evolution, Meaning and Importance, Types and Principles; Line Item Budget, Performance Budget, Zero Base Budgets; Budget Process Cycle, Budget as a tool of Financial Control & Socio-Economic Development.

UNIT – III

Ministry of Finance, Estimates Committee, Public Accounts Committee, Committee on Public Sector Undertakings, Comptroller and Auditor General of India.

UNIT – IV

Reserve Bank of India, Central Finance Commission, State Finance Commission, Fiscal Responsibilities and Budget Management Act, 2003, Problems and Prospects of Financial Administration in India.

SUGGESTED BOOKS

- Baisya, K.N., Financial Administration, New Delhi : Omsons Publications, 1992.
- Chand, Prem, Control of Public Expenditure in India, Allied Publishers, New Delhi, 2010.
- Chand, Prem, Performance Budgeting, Allied Publishers, New Delhi, 2010.
- Chaturvedi, T.N. and K.L. Honda, Financial Administration, New Delhi, IIPA, 1992.
- Chaturvedi, T.N. and K.L. Honda, Financial Administration, New Delhi : Indian Institute of Public Administration, 1986.
- Gautam, P.N., Bhartiya Vitt Prashsan, Chandigarh, Haryana Sahitya Academy, 1993.
- Goel, S.L., Public Financial Administration, New Delhi : Deep & Deep, 2008.
- Government of India, Report of the 2nd ARC on Financial Management, 2009.
- Government of India, Report of the 1st ARC on Centre State Relations; Delegation of Financial and Administrative Powers, 1969.
- Gupta, B.N., Indian Federal Finance and Budgetary Policy, Chaitanya Publishing House, Allahabad, 2006.
- Handa, K.L. (ed.), Financial Administration, New Delhi, IIPA, 1986.
- Lal, G.S., Financial Administration in India, Delhi, HPJ Kapoor, 1969.
- Mahajan, Sanjeev Kumar & Anupma Puri Mahajan, Financial Administration in INdia, New Delhi, PHI Learning Pvt. Limited, 2014.
- Mathur, Kuldeep (ed.), Development Policy and Administration, Sage, New Delhi, 1996.
- Mukerjee, S.S., Financial Administration in India, Delhi, Surjeet Book Deport, 1980.
- Palekar, S.A., Development Administration, PHI Learning Private Limited, New Delhi, 2012.
- Radhey Sham, Financial Administration, New Delhi, Surjeet Book Deport, 1992.
- Sarapa, Public Finance in India, Kanishka Publishers, Distributors, New Delhi, 2004.
- Sharma, Manjusha and O.P. Bohra, Bhartiya Lok Vit Prashashan, Delhi, Ravi Books, 2005.
- Singh, Sahib and Swinder Singh, Personnel and Financial Administration, Chandigarh, New Academic, 1994.
- Sundharam, KPM, Indian Public Finance and Financial Administration, New Delhi, S. Chand, 1973.
- Thavaraj, MJK, Financial Administration in India, New Delhi, S. Chand, 1995.
- Tiwari, A.C., Problems of Fiscal Management in the Government, Delhi, SHIPRA Publications, 1995.
- Verma, V.P., Financial Administration – Concept and Issues, New Delhi, Alfa Publications, 2008.
- Wattal, P.K., Parliamentary Financial Control in India, Bombay, Minerva, 1962.

विषय सूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	वित्तीय प्रशासन का विकास	1
2.	लोक वित्त का अर्थ एवं क्षेत्र	26
3.	लोक आयः वर्गीकरण तथा स्त्रोत	40
4.	बजट : उत्पत्ति, अर्थ, महत्व, सिद्धान्त तथा प्रकार	67
5.	बजट प्रक्रिया : बजट निर्माण, बजट अधिनियम, बजट क्रियान्वयन	91
6.	बजट एक आर्थिक व प्रशासनिक यन्त्र के रूप में	111
7.	सार्वजनिक वित्त पर वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण	117
8.	अनुमान समिति, सार्वजनिक लेखा समिति और सार्वजनिक उद्यम समिति	136
9.	लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक	151
10.	भारतीय रिजर्व बैंक	159
11.	वित्त आयोग : गठन, कार्य और भूमिका	167
12.	राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003	185
13.	प्रशासन की समस्याएं और सम्भावनाएं	192

भारत में वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration in India)

सैमेस्टर–**I**

Semester-I

प्रस्तावना

इस पेपर में विद्यार्थियों को वित्तीय प्रशासन की अवधारणा, प्रकृति और कार्यक्षेत्र से अवगत कराया गया है। वित्त प्रत्येक संगठन की प्राण शक्ति है और इसका प्रभाव उसकी कार्यक्षमता पड़ता है। इस पेपर में वित्त प्रशासन के उद्देश्यो और सिद्धान्तों की चर्चा की गयी है, सार्वजनिक राजस्व तथा व्यय का वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त बजट के सिद्धान्त, प्रकार, बजट प्रक्रिया पर बातचीत की गई है। वित्त मंत्रालय, संसद की वित्तीय समितियों, लेखा परीक्षक और नियन्त्रक की भूमिका, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, संघीय तथा राज्य वित्त आयोग की कार्य प्रणाली पर भी प्रकाश डाला गया है इसमें राजकोषीय नीति, मुन्द्रण नीति, विनिवेश नीति के उद्देश्यो तथा महत्व पर चर्चा की गई है। भारत में वित्तीय संघवाद, वित्तीय शक्तियों का प्रदत्तीकरण, सार्वजनिक खर्च पर विद्यार्थी नियन्त्रण, लेखा तथा टंकन व्यवस्था तथा कर प्रणाली की विस्तार से व्याख्यां की गई है। प्रथम सेमस्टर के पाठ्यक्रम की पहली इकाई में छात्रों को वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र, महत्व, राजस्व के स्त्रोत, खर्च के वर्गीकरण आदि विषयों से अवगत कराया जाएगा।

द्वितीय इकाई में बजट की अवधारणा की उत्पत्ति तथा उद्गम, बजट का महत्व तथा सिद्धान्त परम्परागत बजट तथा निस्पादन बजट, शून्य आधार बजट, बजट प्रक्रिया और बजट एक वित्तीय नियंत्रण और सामाजिक–आर्थिक विकास का साधन है – के बारे में वर्णन किया गया है।

तृतीय इकाई में वित्त मंत्रालय वित्तीय समितियाँ, लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक की भूमिका के बारे में बताया गया है।

चतुर्थ इकाई में भारतीय रिजर्व बैंक, केन्द्रीय तथा राज्य वित्त आयोग, वित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्धन अधिनियम 2003 तथा वित्तीय प्रशासन की समस्याएँ तथा सम्भावनाओं का वर्णन किया है।

वित्तीय प्रशासनः बुनियाद और उद्देश्य

आधुनिक युग में विकसित देशों में वित्तीय प्रशासन में अनेक सुधार किए है क्योंकि वित्तीय प्रशासन का क्षेत्र बढ़ता बढ़ता जा रहा है इसलिए आवश्यक हो जाता है कि सरकार की निवेश नीति की प्राथमिकताएँ तय हो, वित्तीय प्रशासन के कुछ निशचित सिद्धान्त होने चाहिए जैसे संगठन और प्रबन्ध की एकता, सन्तुलन और लोकशीलता, लागत–लाभ–विशलेषण आदि। भारत जैसी कृषि अर्धव्यवस्था में कृषि तथा उद्योग तथा शहरी और ग्रामीण हितो में संतुलन करना वित्तीय प्रशासन का उद्देश्य होना चाहिए निप्रपादन बजट के तहत संसाधन तथा परिणामों में सम्बन्ध स्थापित करना, मुन्द्रण, राजकोषीय नीति को प्रभावशाली रूप में लागू करना, बजट से पूर्व और बाद में वित्त मंत्रालय द्वारा सरकार के आय तथा खर्च प्रस्तावों की जांच पड़ताल को प्रभावशील बनाना, कर व्यवस्था मशीनरी का विकेन्द्रीकरण करना ताकि कर चोरी को रोका जा सके, वित्तीय संघवाद को अर्थ प्रदान करने के लिए केन्द्रीय वित्त आयोग की सिफारिशों का महत्व देना आदि उद्देश्य भी हैं।

इन सभी उद्देश्यों के तहत वित्तीय प्रशासन के पाठ्यक्रम को चार इकाईयों में बाँटा गया है जिनमें प्रथम तथा द्वितीय सेमस्टर शामिल है।

भारत में वित्तीय प्रशासन
(Financial Administration in India)

M.A. Public Administration Distance Education

Introduction, Bases and objectives

प्रस्तावना, बुनियाद और उद्देश्य

भारत में वित्तीय प्रशासन

(Financial Administration in India)

Semester-1st

सेमेस्टर–1

Unit-1st

Semester-1st

अध्याय–1

Chapter-1st

इकाई–1 वित्तीय प्रशासन का विकास

प्रथम समेस्टर – इकाई–1

अध्याय–1

इकाई–1 – वित्त प्रशासन का उत्पत्ति तथा उद्भगम रूप रेखाः–

- एतिहासिक परिपेक्ष
- वित्त प्रशासन के विकास के चरण
- सारांश
- वित्तीय प्रशासन का विकास

अध्याय – 1

वित्तीय प्रशासन का विकास

(Financial Administration: Evolution)

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Historical Background)

एक प्रचलन के रूप में, वित्तीय प्रशासन भारत के लिए कोई नई बात नहीं है। रामायण में संतुलित बजट तैयार करने के बारे में उल्लेख मिलता है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक वित्तीय प्रशासन विकास की उन्नत अवस्था में पहुँच गया था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र वित्तीय प्रशासन पर एक शोध–प्रबंधन था। इसके अंतर्गत लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन के अनेकों स्वस्थ सिद्धान्त मौजूद थे। मौर्यकाल में प्रशासन द्वारा अपने राजकोषीय कार्य इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप संपादित किए जाते थे। भू–राजस्व, राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। सोना, पशुओं आदि जैसी वस्तुओं पर भी कर लगाए जाते थे। लोक निर्माण कार्यों से प्राप्त आय गैर–कर राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। जनता से उधार लेने तथा घाटे की अर्थव्यवस्था जैसी चीजों के बारे में कोई जानता तक नहीं था। उस समय एक भली–भांति संगठित वित्तीय संरचना मौजूद थी जिसके तहत महासंग्रहकार, महा–खजांची तथा महालेखाकार के कार्यालय शामिल थे। राजकोषीय निर्णय राजसी सनक तथा ठाटबाट से प्रभावित रहते थे और वित्तीय जवाबदेही की कोई स्वस्थ प्रणाली मौजूद नहीं थी। गुप्त काल में करीब करीब इससे मिलती जुलती वित्तीय प्रशासन की प्रणाली कायम रही। मुगलकाल में एक व्यापक एवं सुव्यवस्थित वित्तीय प्रणाली देखी गई। भू–राजस्व का राजस्व के प्रमुख स्त्रोत के रूप में होना जारी रहा। इसे सर्वेक्षण तथा बंदोबस्त के नाम से जानी जाने वाली एक व्यवस्थित प्रक्रिया के पश्चात् ही आरोपित किया जाता था। भारत में राजस्व प्रशासन की बुनियादी संरचना का निर्माण शेरशाह सूरी द्वारा किया गया।

अकबर के दरबार में कार्यरत एक कुलीन व्यक्ति, राजा टोडरमल ने इसे सुव्यवस्थित किया तथा एक नियम पुस्तक के रूप में राजस्व प्रशासन के सिद्धांतों का प्रवर्तन किया, जिसे आगे चलकर अंग्रेजों द्वारा अपना लिया गया। उन्होंने भूमि के मसलों में बिचौलियों के संबंध कायम किए। जजिया, आयकर, संपत्ति कर इत्यादि अन्य प्रत्यक्ष करों का अंश थे। अप्रत्यक्ष करों में सीमा शुल्क, बिक्री कर, चुंगी तथा उत्पादक शुल्क शामिल थे। सार्वजनिक कोषों के संग्रह, देखभाल तथा संवितरण के लिए सरकारी तथा गैर–सरकारी खजानों का एक तंत्र मौजूद था।

यद्यपि, उपरोक्त विरासत ने भारत के राजकाषीय इतिहास पर अपने पद चिन्हों की अमिट छाप छोड़ी है, फिर भी आधुनिक, वित्तीय प्रणाली की शुरूआत ब्रिटिश प्रशासन के दौरान हुई। इस काल में वित्तीय प्रशासन विकास के अनेक विशिष्ट चरणों से होकर गुजरा। भारत के वित्तीय प्रशासन के इतिहास को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार विशिष्ट चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

काल I (1765-1858) संरचना का निर्माण तथा उसका सुदृढ़ीकरण

काल II (1859-1918) प्रणालियों तथा प्रक्रियाओं का विकास

काल III (1919-1947) जनतंत्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण

काल IV (1948 से आज तक) विकासात्मक रूझान

काल–1 संरचना का निर्माण तथा उसका सुदृढ़ीकरण
(Creation of Structure and its Consolidation)

1765 में दीवानी अधिकारों का अधिग्रहण ब्रिटिश भारत के वित्तीय प्रशासन की स्थापना का प्रतीक है। सभी शक्तियाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी की सौंप दी गई और इन्हें कम्पनी द्वारा नियंत्रक बोर्ड के जरिए जागू किया जाता था। भारत में प्राप्त राजस्व को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वाणिज्यिक कमाई माना जाता था। ब्रिटिश सरकार, विभिन्न विनियोजन अधिनियमों में यथा उपबंधित, अप्रत्यक्ष तरीकों के जरिए ही कम्पनी प्रशासन पर प्रभाव डाल सकती थी। सार्वजनिक वित्त का अधीक्षण एवं नियंत्रण, गवर्नर के नेतृत्व में प्रत्येक प्रेसीडैन्सी में, अलग से सौंपा गया था। नियंत्रक बोर्ड से खासतौर पर अनुमति प्राप्त किए बिना भारत का गर्वनर जनरल इन कोषों का इस्तेमाल नहीं कर सकता था। हालांकि युद्ध के दौरान वह इन कोषों का उपयोग कर सकता था। 1833 में, कम्पनी प्रशासन में भारी अव्यवस्था के चलते, ब्रिटिश संसद ने कार्यवाही शुरू की। 1833 के भारत सरकार अधिनियम के तहत, ईस्ट इंण्डिया कम्पनी ने भारत पर स्वयं शासन करने का अधिकार खो दिया। इसके पास रखी संपत्ति को सम्राट के लिए ट्रस्ट के रूप में छोड़ा गया। अधिनियम ने अधीक्षण नियंत्रणकारी सत्ता भारत के गर्वनर जनरल को सौंप दी। गर्वनरों को भी अपनी सत्ता से हाथ धोना पड़ा क्योंकि गर्वनर जनरल से मंजूरी प्राप्त किए बिना वे न तो किसी नए पद की स्थापना कर सकते थे न ही कोई अनुदान, वेतन, भत्ता अथवा उत्पादन ही दे सकते थे। भारत सरकार के वित्त सचिव को प्राक्कलन तैयार करने, उपायों तथा साधनों का प्रावधान, ऋणों पर बातचीत तथा लेखे का पर्यवेक्षण आदि जैसे वित्तीय कार्यों के संचालन एवं समन्वय का दायित्व सौंपा गया। उसे नये व्यय संबंधी तमाम प्रस्तावों की समीक्षा करनी होती थी। बंगाल का महालेखाकार भारत कास महालेखाकर बन गया तथा उस वित्त सचिव के समक्ष वित्तीय विवरणियों तथा लेखे प्रस्तुत करने का दायित्व सौंपा गया। लेखापरीक्षा के लिए कोई प्राधिकारी नियुक्त नहीं था क्योंकि वह प्रान्तों के पास बनी रहीं। वित्त तथा लेखे के एक संयोग के जरिए वित्त सचिव के हाथ मजबूत करने की दृष्टि से इसे 1857 में भारत का महालेखाकार बना दिया गया। यह व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल पायी। 1857 में लार्ड कैनिग द्वारा शुरू किए गए सुधारों के तहत वित्त–सचिव को केवल वित्त का कार्यभार सौंपा गया। भारत के महालेखाकार को जिसने वित्त सचिव के लेखा संबंधी कार्यभार ग्रहण किया था, लेखापरीक्षा का दायित्व सौंपा गया।

वित्तीय प्रशासन के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया 1858 के अधिनियम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की औपचारिक सत्ता समाप्त कर दी। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय वित्त व्यवस्था का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। अधिनियम के तहत भारत के लिए एक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स का प्रावधान किया गया उसकी मदद के लिए काउंसिल ऑफ इण्डिया का गठन किया गया। ब्रिटिश मंत्रिमंडल में मिनिस्टर ऑफ स्टेट्स हुआ करता था जो भारतीय वित्तीय एवं प्रशासनिक मामलों के लिए उत्तरदायी होता था। उसकी पूर्वस्वीकृति के बिना भारतीय वित्त में से किसी तरह का विनियोजन नहीं किया जा सकता था। गवर्नर जनरल को सौंपे हुए वित्तीय प्राधिकार प्राप्त थे। भारत का सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स बजट की स्वीकृति आचार संहिताओं तथा कार्यकारी आदेशों में यथा–अभिव्यक्त नियमों तथा कायदों की एक प्रणाली के जरए व्यय का नियंत्रण आदि जैसे उपायों द्वारा भारतीय वित्त का नियंत्रण करता था। उसके अधीनस्थ एक वित्तीय समिति तथा वित्त सचिव रहता था जो एक सलाहकार के बतौर वित्त–विभाग के भारतीय कार्यालय का प्रमुख होता था। कांउसिल ऑफ इण्डिया जिससे चौकीदार जैसी भूमिका की अपेक्षा की गई थी, अपनी भूमिका निभाने में असफल रही क्योंकि उसके पास एक ''निरंकुश'' सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स को नियंत्रित करने का कोई साधन मौजूद न था। समय के अभाव रूचि के अभाव, तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास आदि जैसे अनेक कारणों से भारत के सैक्रेटरी ऑफ स्टेट के उपर संसदीय नियंत्रण भी काफी कमजोर था। सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉंर इण्डिया वस्तुतः सत्ता का प्रमुख केन्द्र बन गया। किन्तु स्थानीय परिस्थिति से अनभिज्ञता प्रभावी संचार व्यवस्था के अभाव, भौगोलिक कारकों (दूरियों) इत्यादि जैसी सीमाओं के चलते वह प्रभावी नियंत्रण कायम करने की स्थिति में नहीं था। उसके पास भारत के गवर्नर जनरल को महत्वपूर्ण वित्तीय प्राधिकार सौंपने के

अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था, गवर्नर जनरल ही भारतीय वित्तीय गतिविधियों का असली कर्ताधर्ता बन गया। भारत में उसे नियंत्रित करने वाली कोई सत्ता मौजूद न थी क्योंकि लेजिस्लेटिव कांउसिल को वित्तीय मामलों की परीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं था। प्रान्तों की केन्द्र पर अत्यधिक निर्भरता का युग, जो 1833 में शुरू हुआ था 1858 के भारत सरकार अधिनियम के तहत भी जारी रहा। भारत के गवर्नर जनरल की तुलना में महालेखाकार की निम्नतर हैसियत ज्यों की त्यों बरकरार रही।

वित्त विभाग की अध्यक्षता तथा निर्देशन वित्त–सदस्य को करना होता था। भारतीय वित्त के संदर्भ में वह अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करता था। वह वार्षिक वित्तीय विवरण तैयार करता था, वित्त–व्यवस्था को स्वस्थ रखना, सुनिश्चित करने के लिए आय–व्यय की प्रगति पर निगरानी रखता था, धन संबंधी व्यवस्था का पर्यवेक्षण प्रशासन करता था तथा प्रान्तीय वित्त विभागों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करता था। वित्त–सचिव के नेतृत्व में वित्त–विभाग को यह सुनिश्चित करना होता था कि भारत के लिए सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स द्वारा लागू प्रतिबंधों पर अमल किया जा रहा है तथा नियम–कायदों का पालन हो रहा है। इसके पास दोहरी शक्ति थी। अर्थात् बजटपूर्व छानबीन तथा व्यय की मंजूरी।

काल–II प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं का विकास
(Development of systems and Procedures)

गवर्नर जनरल को महसूस हुआ कि वित्तीय समस्याओं का अकेले सामना करना असंभव है। 1859 में, उसके अनुरोध पर, कार्यकारिणी परिषद् में उसकी मदद के लिए वित्त सदस्य का पद स्थापित किया गया। जैम्स विल्सन पहला वित्त सदस्य था। उस समय तक बजट निर्माण की प्रणाली नहीं थी क्योंकि कानून में इसका कोई प्रावधान नहीं था। हालांकि कानून उससे यह मांग नहीं करता था फिर भी विल्सन ने 18–2–1860 को विधान परिषद् में पहला बजट प्रस्तुत किया यद्यपि उसके बजट पर परिषद् ने बहस नहीं की, किन्तु उसकी प्रस्तुति ने वित्तीय मुद्दे पर खासी दिलचस्पी पैदा की। इसने एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया जिससे जब भी कोई वित्तीय मकसद सामने आता तो परिषद् में बजट पेश होता और उस पर विस्तृत चर्चा होती। 1861–62 से वार्षिक बजट प्रणाली की स्थापना हुई। 1892 के परिषद् अधिनियम ने गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया इन कांउसिल को विधान परिषद् में बजट पर बहस को अधिकृत करते हुए नियम बनाने के लिए अधिकृत किया जिनके तहत बजट प्रस्तावों को उलट देने का अधिकार नहीं दिया गया था। लेकिन सदस्यों को कोई प्रस्ताव पेश करने की स्वतंत्रता नहीं थी। सार्वजनिक कोष पर लोकप्रिय नियंत्रण कायम करने के लिए सदन के भतर तथा बाहर लगातार आन्दोलन जारी रहा। 1895 तथा 1896 के अपने वार्षिक अधिवेशनों में कांग्रेस द्वारा संपूर्ण बजट व्यवस्था की मांग करते हुए प्रस्ताव पारित किए गए। 1909 के अधिनियम के तहत वार्षिक बजट पर विस्तृत बहस तथा साथ ही बजट अनुमानों पर प्रस्ताव पारित करने के उपबन्ध किए गए हालांकि 1909 का अधिनियम बजटीय विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था किन्तु इससे सीमित लाभ ही मिल सके क्योंकि ये प्रस्ताव सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं थे। 1910 के अधिनियम ने बजट की विधानमंडलों द्वारा स्वीकृति की आधुनिक प्रणाली की शुरूआत की। विधानमंडलों को मंजूरी देने अथवा मंजूरी देने से इंकार करने अथवा उल्लेखित धनराशि में कटौती करने के लिए अधिकृत किया गया। किन्तु इस प्रणाली में दो खामियां थी। पहली यह कि सराकर लोकप्रिय जनमत को ठुकरा सकती थी और दूसरा यह कि बजट के आधे से भी अधिक मामलों पर मतदान नहीं कराया जा सकता था। 1935 के अधिनियम ने भी इस प्रणाली में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

1860 में महालेखाकार को भारत का महालेखाकार बना दिया गया और वह लेखा सार्वजनिक विभागों के कार्यों का पर्यवेक्षण आदि जैसे अनेक कर्त्तव्यों का निर्वाह करने के लिए उत्तरदायी था। 1919 के अधिनियम ने उसे संवैधानिक हैसियत प्रदान की। उसे सरकार से स्वतंत्र रखा गया ताकि वह चौकसी करने की अपनी भूमिका प्रभावी

ढंग से निभाने में सक्षम हो सके।

काल–III जनतंत्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण (Democratization and Decentralization)

1909 तक केन्द्रीय विधानमंडल शक्तिशाली नौकरशाही तले दबा हूआ था। 1909 के मिण्टो–मार्ले सुधारों ने केन्द्रीय विधानमंडल में निर्वाचित तत्वों के सीमित प्रवेश का इरादा बनाया। किन्तु 1919 के अधिनियम के तहत, प्रान्तीय विधानमंडलों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत हो गया तथा केन्द्रीय विधानमंडल का विस्तार किया गया और उसे अधिक लोकप्रिय प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया गया। इस अधिनियम ने प्रांतीय सरकारों में अधिकतम लोकप्रिय प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया। इसने प्रान्तीय सरकारों में दोहरी शासन व्यवस्था की परिकल्पना भी की जिसके तहत प्रान्तीय स्वायत्ता की प्रक्रिया 1937 में पूरी हुई जबकि 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ। केन्द्र में दोहरी शासन प्रणाली 1935 के अधिनियमों के तहत शुरू की गई जिसके अनुसार वायसराय की कार्यकारी परिषद् के लोकप्रिय ढंग से निर्वाचित सदस्यों के मातहत 20 प्रतिशत व्यय रखे जाने का प्रावधान किया गया। लेकिन गवर्नर जनरल द्वारा उपभोग की जा रही विशेष शक्तियों ने लोकप्रिय भागीदारी को धक्का पहुँचाया।

1833 से पहले कोई केन्द्र सरकार नहीं थी। 1833 से ही प्रान्तों के केन्द्र पर निर्भरता के युग की शुरूआत हुई। यह निर्भरता इतनी अधिक थी कि कोई गवर्नर 10 रूपये प्रतिमाह से अधिक वेतन वाले किसी भी स्थाई पद का निर्धारण नहीं कर सकता था। व्यवस्था 1858 के अधिनियम के तहत भी जारी रही। बुनियादी आधार–वाक्य यह था कि साम्राज्य को समग्र रूप से लिया जाना चाहिए न कि पृथक राज्यों के संकलन के रूप में। हालांकि प्रादेशिक सत्ता में 1857,1877,1882,1897,1904 और 1911 में किए गए विभिन्न विरोधों एवं समझौतों के जरिए वृद्धि हुई थी किन्तु यह बुनियादी आधार–वाक्य 1919 का अधिनियम एक मील का पत्थर था। इसने केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच शक्तियों तथा दायित्वों का सांविधिक वितरण किया। अंतरित विषयों पर प्रान्तों द्वारा अपने बजट प्रस्तुत करने की अनिवार्यता अब नहीं थी। किन्तु इस अधिनियम ने गवर्नर जनरल को गवर्नरों का पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण करने की महत्वपूर्ण शक्तियों की परिकल्पना की। उदाहरण के तौर पर वह संदेशों की शक्ल में गवर्नरों को निर्देश भेज सकता था। समग्र–संघवाद के मूल लक्षणों तथा संरचनओं का आरंभ 1935 में किया गया जो आज तक विद्यमान है।

काल–IV विकासात्मक रूझान (Development Orientation)

स्वतंत्रता ने वित्तीय प्रशासन की राजनैतिक पृष्ठभूमि में मौलिक परिवर्तन ला दिया। कार्यपालिका द्वारा विधायिका के प्रति जवाबदेही के सिद्धांत को औपचारिक मान्यता प्रदान की गई। बजटीय तथा अन्य प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं को इस सिद्धान्त का पालन तथा क्रियान्वयन करने के अनुरूप ढाला गया। विधानमंडल समितियां सार्वजनिक कोषों के स्वरूप, विवरण, वैधानिक तथा निरंतरता में सक्रिया रूचि लेने लगी। निंयत्रण एवं महालेखापरीक्षक एक संवैधानिक प्राधिकारी बन गया जिस पर विधानमंडलीय **शक्तियों** को सहायता देने की भी जिम्मेदारी थी। वित्तीय प्रशासन ने धीरे–धीरे अपना केन्द्र स्थायित्व से हटाकर कल्याण, विकास तथा समता पर केनद्रित किया। 1974 में नियोजन तथा बजट–प्रक्रिया को मिलाकर निष्पादन बजट प्रणाली शुरू की गई, जिसने वित्तीय प्रक्रिया को परिणाम–उन्मुखी बना दिया। वित्तीय नियंत्रण की प्रणाली को मूलतः पुनर्गठित किया गया ताकि इसे योजना के क्रियान्वयन का एक औजार बनाया जा सके। परिणामस्वरूप 1955, 1958, 1962,1968 तथा 1975 की योजनाओं जैसी अनेक प्रतिनिधित्व की योजनाओं के जरिए व्यय करने वाले विभागों को महत्वपूर्ण शक्तियां सौंपी गई वित्तीय नियंत्रण का दायित्व भी दृढ़ता के साथ करने वाले विभागों पर निश्चित किया गया। इसे दो साधनों से प्राप्त किया जाता था पहली एकीकृत वित्तीय सलाह की योजना एवं दूसरी लेखा परीक्षा परिणामस्वरूप कर–संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए अनेक कदम उठाये गए। काल्डोर के कर–प्रस्ताव, वांचू समिति रिपोर्ट, झा समिति रिपोर्ट आदि इन कदमों के उदाहरण है। घाटे की अर्थव्यवस्था एक नियमित लक्षण बन गई क्योंकि सरकार को विकास की गति में तेजी लाने के लिए

दबाव का सामना करना पड़ रहा था।

बैंकिग प्रणाली का राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय कोषों के विकासात्मक गतिविधियों की ओर प्रवाह का एक औजार माना गया था। विकास एवं समता के ध्येयों के आगे बढ़ाने में सार्वजनिक क्षेत्र ने उल्लेखनीय महत्व प्राप्त कर लिया। कुछ अवांछित परिणाम भी सामने आए। तेजी से बढ़ती मुद्रास्फीति, भुगतान संतुलन का सिकुड़ना, सार्वजनिक क्षेत्रों से नकारात्मक परिणामों में वृद्धि सार्वजनिक बचतों में कमी तथा स्त्रोत आधार का सिकुड़ना इत्यादि का वित्तीय प्रशासन पर अंततः इस तरह बुरा प्रभाव हुआ कि सरकार को इन प्रवृत्तियों को सुधारने के लिए कदम उठाने पड़े।

निष्कर्ष के रूप में, काल–1 के दौरान मूलतः वित्तीय संगठन के निर्माण पर बल दिया गया जिसका उद्देश्य सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स तथा गर्वनर जनरल के रूप में नियंत्रण तथा निर्देशन के केन्द्र का निर्माण करना था। काल–II को एक स्वस्थ बजट प्रणाली की उत्पत्ति तथा उसके प्रयोग के प्रयास के लक्षणों से पहचाना जा सकता है। काल–III में स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रतिक्रियाएं देखने को मिलीं और अनेक परिणाम के रूप में धीरे–धीरे लोकप्रिय तत्वों को शामिल करने के प्रयास हुए। इससे सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा संघीय संरचना का निर्माण भी देखा गया। अंतिम चरण जनता तथा उसकी भलाई एवं विकास की तरफ झुकाव के लक्षण से पहचाना जा सकता है।

सारांश :

आरंभिक चरणों में ''न्यूनतम सार्वजनिक व्यय सरकार का मुख्य उद्देश्य रहता था। धीरे–धीरे वित्तीय प्रशासन की कार्यमूलक भूमिका में परिवर्तन आया इसे स्त्रोतों के एकत्रीकरण तथा उनके उत्पादक विनियोजन की दृष्टि से देखा जाने लगा। यद्यपि, वित्तीय प्रशासन से किसी निर्दिष्ट समय की लोकनीतियों में स्पष्ट किए गए आम उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता करने की अपेक्षा की जाती है फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत उद्देश्य होते हैं जिन्हें लेकर वित्तीय–प्रशासक चलते हैं जैसा कि विकसित तथा विकासशील देशों के अनुभव से स्पष्ट है। सांस्कृतिक विशिष्टता के कारण, वित्तीय प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धान्त तय कर पाना संभव नहीं है। हालांकि, अन्योन्य–राष्ट्रीय तथा अन्योन्य–सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के हमारे अनुभव के आधार पर, मोटे तौर पर दिशा–निर्देशों के रूप में हम कुछ सिद्धान्त निश्चित कर सकते हैं। इनके अन्तर्गत, लोक–नीति तथा राजनैतिक दिशा व नियंत्रण की सर्वोच्चता, संगठन तथा प्रबंधन की एकता, उद्देश्यों, कार्यों तथा स्त्रोतों के बीच अनुरूपता, स्थायित्व, सरलता, संतुलन तथा लचीलापन, इत्यादि शामिल हैं भारत में वित्तीय प्रशासन ई.पू. चौथी सदी तक एक विकसित अवस्था तक पहुंच गया था। भारत के राजकोषीय इतिहास में कुछ है कि हम उस पर सहज ही गर्व कर सकते हैं वित्तीय प्रशासन की आधुनिक प्रणाली को स्थापित करने की शुरूआत ब्रिटिश काल के दौरान हुई। 1765 से 1858 के बीच में वित्तीय प्रशासन की एक स्वस्थ संरचना निर्मित करने के अनेक उपाय किए। 1919 तक हमारे पास खासी विकसित वित्त–व्यवस्था तथा प्रक्रियाएं विकसित हो गई थीं। देश के वित्तीय इतिहास में जनतंत्रीकण तथा विकासात्मक रूझान मील का पत्थर बन गए। भुगतान संतुलन की प्रतिकूल स्थिति तथा तेजी से बढ़ती मुद्रा–स्फीति के चलते सरकार को 1919 में अत्यंत मूलभूत कदम उठाने पड़े। अनके अंतर्गत, राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण नौकरशाही नियंत्रण में कटौती, स्त्रोत जुटाने के जटिल विकल्प, सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर में कमी तथा परिचायक नियोजन आदि शामिल है। इस बात की संभावना तथा आशा है कि बाजार–अर्थव्यवस्था की दिशा में चलने तथा विश्व–अर्थव्यवस्था के साथ एकता स्थापित करने से शायद आर्थिक समृद्धि के एक युग का सूत्रपात हो सकता है। हालांकि गंभीर आशंकाएं भी मौजूद है। मूल्यों को पीछे लाने में सरकार की अक्षमता ऐसी ही चिन्ता का विषय में अनुकूल परिणाम सामने आना शुरू होने के लिए दो से तीन वर्ष तक इन्तजार करना होगा।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- पी. बैनर्जी – पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन एन सियन्ट इण्डिया, 1973
- जे. जे. पिन्टो – सिस्टम ऑफ फाइनेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, 1943

सम्भावी प्रश्नः 1. भारतीय वित्त प्रशासन की उत्पत्ति तथा उद्गम में 1860 के पहले के चरण बताएं।

2. भारतीय वित्त प्रशासन के विकास के चरण बताएं।

Sem-I, Unit-I

प्रथम समेस्टर – ईकाई – I Chapter – I

प्रथम अध्याय की रूपरेखाः वित्त प्रशासनः प्रकृति तथा कार्यक्षेत्र

- वित्त प्रशासन का अर्थ
- वित्त प्रशासन की प्रकृति
- वित्त प्रशासन का कार्यक्षेत्र
- वित्त प्रशासन का महत्व तथा उद्देश्य
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

वित्त प्रशासन : अर्थ प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र

(Financial Administration: Meaning, Nature and Scope)

कोई भी सरकार धन के बिना किसी भी कार्य को सम्पन्न नहीं कर सकती। वित्त सरकार के जीवन–रक्त (Life-blood) के **सदश** होता है। वास्तव में बात यह है कि वित्त प्रशासन को पथक नहीं किया जा सकता। बिना वित्त के कोई भी सरकार कार्य नहीं कर सकती ठीक उसी प्रकार जैसे कि बिना पैट्रोल के मोटरकार नहीं चल सकती। वित्त प्रशासकीय मशीनरी का ईंधन है। प्रशासकीय क्रिया की सीमा का निर्धारण उपलब्ध वित्तीय साधनों के द्वारा ही किया जाता है। जितना अधिक वित्त उपलब्ध होता है उतनी ही अधिक प्रशासकीय क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। वित्त प्रशासन इतना सार्वलौकिक रूप में व्याप्त हो गया है जिस प्रकार कि वातावरण (Atmosphere) में ऑक्सीजन वायु। जब सरकार अपनी योजना के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण करती है उस समय उसके लिए योजना की लागत तथा आय के स्त्रोतों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

एक संगठित राज्य की तुलना उस बड़े कारखाने से की जा सकती है जिसमें विभिन्न प्रकार की मशीनें अनेक प्रक्रियाओं (Processes) में कार्यरत रहती हैं। प्रत्येक कारखाने का अपना एक इन्जन–घर होता है जिसमें कि प्रधान चालक, वाष्प अथवा बिजली का इन्जन रखा होता है जो अन्य सब मशीनों को शक्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार राज्य में भी एक इन्जन–घर (Engine house) होता है। यह इन्जन–घर वित्त–विभाग (Finance Department) या राजकोष (Treasury) होता है और उसमें मुख्य चालक, वित्तीय इन्जन रखा होता है जो सरकार के सब प्रशासकीय यन्त्रों को चालू रखता है और जिस प्रकार वाष्प–इन्जन कोयले को शक्ति (चवूमतद्ध में बदल देता है। उसी प्रकार यह वित्तीय इन्जन राजस्व को लोक सेवाओं में परिवर्तित कर देता है। सरकार की क्रियाओं में चूंकि दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है और सरकार उन पर भारी धनराशियाँ व्यय करती है अतः वर्तमान समय में सरकार की अकुशल तथा अपव्ययी वित्तीय कार्यवाहियों को सहन नहीं किया जा सकता। अतः वित्तीय प्रशासन कुशल तथा प्रवीण होना चाहिये और उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि जिससे धन का जरा भी अपव्यय न हो।

अर्थ

(Meaning)

'वित्तीय प्रशासन' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें वे सब प्रक्रियायें सम्मिलित की जाती हैं जो कि निम्न कार्यों को सम्पन्न करने में उत्पन्न होती हैः ''सरकारी धन के संग्रह, बजट–निर्माण, विनियोजन तथा व्यय करने में, आय तथा व्यय और प्राप्तियों एवं संवितरणों का लेखा–परीक्षण (Audit) करने में परिसम्पत्तियों (Assets) तथा देवताओं (Liabilities) और सरकार के वित्तीय सौदों का हिसाब–किताब रखने में और आमदनियों व खर्चों, प्राप्तियों व संवितरणों तथा निधियों (Funds) व विनियोजनों (Appropriations) की दशा के संबंध में प्रतिवेदन–लेखक (Reporting) में।''

वित्त के बिना सरकार अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो सकती। प्रशासन के लिये वित्त की इतनी अधिक महत्ता होने के कारण वित्त के प्रशासन का अध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। जो सरकार वित्तीय प्रशासन की एक सन्तोषजनक व्यवस्था का निर्माण कर लेती है वह अपने कार्यों का प्रबन्ध कुशलता के साथ करने की दिशा में काफी आगे बढ़ जाती है। इस प्रकार "वित्तीय प्रशासन, जोकि एक सी व्यवस्था तथा रीतियों का निर्माण करता है जिनके द्वारा लोक सेवाओं के संचालन के लिये धन प्राप्त किया जाता है, व्यय किया जाता है और उसका लेखा रखा जाता है, आधुनिक सरकार का हृदय माना जाता है।"

वित्तीय प्रशासन एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया (च्तवबमे) है जो कि निम्नलिखित संक्रियाओं (व्चमतंजपवदे) की एक सतत श्रृंखला का निर्माण करती है–

(1) आय तथा व्यय की आवश्यकताओं के अनुमान लगाना–अर्थात् 'बजट का बनाना' (Preparation of the Budget)।

(2) इन अनुदानों के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) की अनुमति प्राप्त करना–अर्थात् 'बजट की विधायी अनुमति' (Legislative Approval of the Budget)।

(3) आय तथा व्यय की क्रियाओं को कार्यान्वित करना–अथवा 'बजट को कार्यान्वित करना' (Execution of the Budget)।

(4) वित्तीय व्यवस्थाओं का राजकोषीय प्रबन्धन (Treasury Management of the Finance)।

(5) इन संक्रियाओं की विधायी उत्तरदायिता (Legislative Accountability) अर्थात् समुचित रूप से हिसाब–किताब रखना और उस हिसाब–किताब का परीक्षण करना।

वित्तीय प्रशासन के ऊपर बताई गई प्रक्रियायें सम्मिलित हैं। ये वित्तीय क्रियायें निम्नलिखित अभिकरणों (Agencies) द्वारा सम्पन्न की जाती है–

(1) व्यवस्थापिका अथवा विधान–मण्डल (The Legislature),

(2) सरकार की कार्यपालिका शाखा (The Executive),

(3) राजकोष अथवा वित्त विभाग (Treasury and Finance Department),

(4) लेखा–परीक्षण विभाग (Audit Department),

वित्तीय प्रशासन का संचालन तथा नियंत्रण इन्हीं अभिकरणों द्वारा किया जाता है।

वित्तीय प्रशासन की प्रकृति

वित्त प्रशासन की प्रकृति को लेकर दो भिन्न दृष्टिकोण हैं:

1. परंपरागत दृष्टिकोण (Traditional View),
2. आधुनिक दृष्टिकोण (Modeern View)

1. परंपरागत दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण को मानने वालों का विचार है कि वित्तीय प्रशासन उत्पत्ति, विनियोजन तथा वित्तीय संसाधनों की खोज से सम्पादित क्रियाओं का योग है जो लोक संगठनों को जीवित रखने तथा उनके विकास के लिए आवश्यक होता है। वे इस बात पर बल देते हैं कि किसी भी लोक प्रशासन में एक प्रशासनिक ढांचा होता है, जो धन की आवाजाही को व्यवस्थित करने के साथ–साथ इसे नियंत्रित और व्यवस्थित भी करता है। इस व्यवस्था के कारण इन कोषों का सही और उत्पादक उपयोग हो पाता है। व्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में इस दृष्टिकोण पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सहभागिता व्यवस्था का ही एक रूप है। लोक वित्तीय संगठनों को कुशल ढंग से चलाने के लिए वित्तीय सहायता देना वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व है। इसका कार्य है लोक संगठनों में समस्त वित्तीय क्रियाओं को नियोजित करना, कार्यक्रम बनाना, संगठन एवं निर्देश देना ताकि लोकनीति का उचित अनुपालन हो

सके। इस व्यवस्था के भागीदारों को वित्तीय प्रबंधक समझा जाता है तथा वे वित्तीय प्रकृति के प्रबंधात्मक कार्यों को सम्पादित करते हैं। यह दृष्टिकोण लोक वित्त के विशेषज्ञ सेलिगमैन के दृष्टिकोण को दर्शाता है। सार्वजनिक वित्त के शुद्ध सिद्धांत की केन्द्रीय धारण यह है कि सार्वजनकि वित्त को सार्वजनिक आय, सार्वजनकि व्यय एवं सार्वजनिक ऋण की समस्याओं को वस्तुनिष्ठ ढंग से सम्पादित करना एवं सत्तारूढ़ राजनैतिक दलों के दृष्टिकोण के संबंध में बताना चाहिए। वित्तीय प्रशासन के विशेषज्ञ जो इस दृष्टिकोण को मानते हैं वे मूल्य की तटस्थता में विश्वास रखते हैं। उदाहरण के लिए जेज गैस्टन कहते हैं कि वित्तीय प्रशासन सरकारी संगठनों का वह भाग है जो लोक निधि का संग्रह, सुरक्षा तथा आबंटन को दर्शाता है तो उसके विचार में यही दृष्टिकोण दृष्टिगोचर प्रतीत होता है।

2. आधुनिक दृष्टिकोण (Modern View)

आधुनिक दृष्टिकोण वित्तीय प्रशासन को सार्वजनिक निधि बढ़ाने तथा व्यय करने के साधन के बजाय लोक संगठनों की सम्पूर्ण प्रबन्धकीय प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग मानता है। इसके अंतर्गत लोक प्रशासन में सम्मिलित समस्त व्यक्तियों की समस्त क्रियाएं आती हैं। इसका कारण है कि लगभग प्रत्येक लोक अधिकारी निर्णय लेता है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम वित्तीय पहलू से भी सम्बद्ध होता है। यह परम्परागत सिद्धांत के मूल्य तटस्थता के दृष्टिकोण को नकारता है। यह इसमें सार्वजनिक वित्त के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांतों को शामिल करता है जैसे–सामाजिक आर्थिक सिद्धांत, जिसके अग्रदूत वैगनर, एजर्थ तथा पिगोड हैं। केनेसियन परिप्रेक्ष्य के प्राकार्यात्मक सिद्धांत तथा आधुनिक वित्त विशेषज्ञों के कार्यात्मक दृष्टिकोण। इनके दृष्टिकोण के अनुसार वित्त प्रशासन की निम्नलिखित भूमिकाएँ हैं–

(क) **समानता लाने वाली भूमिका** – इस भूमिका के अंतर्गत वित्त प्रशासन धन संबंधी असमानताओं को दूर करने का प्रयास करता है। राजकोषीय नीतियों के द्वारा आय को सम्पन्न से निर्धन को हस्तांतरित करने का प्रयास करता है।

(ख) **प्रकार्यात्मक भूमिकाः** सामान्य परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था स्वयं कार्य नहीं कर सकती है। इस भूमिका के अंतर्गत वित्त प्रशासन कराधान सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण के द्वारा अर्थव्यवस्था के उचित कार्यान्वयन का प्रयास करता है।

(ग) **कार्यात्मक भूमिका :** इस भूमिका के अंतर्गत वित्त प्रशासन उन नीतियों का अध्ययन करता है जो निवेश के तीव्र प्रवाह को आसान तथा तीव्रता से बढ़ने तथा राष्ट्रीय आय के विस्तार को बढ़ाने के लिए सही आबंटन करता है।

(घ) **स्थायित्व संबंधी भूमिका :** इस भूमिका के अंतर्गत वित्त प्रशासन का उद्देश्य है राकोषीय तथा वित्त नितियों द्वारा मूल्य स्तर एवं मुद्रास्फीति की प्रवृति में स्थायित्व को बनाए रखना जाए।

(ङ) **सहभागी भूमिका :** इस दृष्टिकोण के अनुसार वित्त प्रशासन समुदाय के सामाजिक कल्याण को बढ़ाने के उद्देश्य से राज्य को लोक तथा निजी उत्पादनकर्ता के रूप में लाने के लिए नीतियों का निर्धारण तथा क्रियान्वयन करता है। यह राज्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भागीदारी द्वारा आर्थिक विकास को बढ़ाने का प्रयास भी करता है।

इस प्रकार वित्त प्रशासन साध्य तथा साधन के मामले में विकल्प का ढांचा प्रदान करता है जो राज्य की प्रकृति, चरित्र तथा इसके वैचारिक मूल्यों के आधार को दर्शाता है। उदाहरण के लिए समाजवादी देशों में वित्त प्रशासन लोकतांत्रिक देशों से भिन्न होते हैं। इस प्रकार वित्त प्रशासन की आत्मा भिन्न सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में भिन्न होगी क्योंकि यह सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक शक्तियों के संचालन के विशेष साधनों पर निर्भर करता है।

वित्तीय प्रशासन का कार्यक्षेत्र
(Scope of Financial Administration)

वित्त प्रशासन उन क्रियाओं से निर्मित है जिनका उद्देश्य सरकारी गतिविधियों को धन उपलब्ध करना तथा इस धन का वैध तथा कुशल उपयोग सुनिश्चित बनाना है। व्हाइट के अनुसार, ''राजस्व व्यवस्था में इसके मुख्य उप–खण्डों के रूप में, बजट का बनाना तथा इसके पश्चात् विनियोग की औपचारिक क्रिया, व्यय का कार्यकारिणी द्वारा पर्यवेक्षण (बजट कार्यान्वयन), लेखा विधि तथा प्रतिवेदन प्रणाली पर नियंत्रण, कोष की व्यवस्था, राजस्व एकत्रित करना तथा अंकेक्षण सम्मिलित है।'' प्रशासन के प्रमुख वित्तीय क्षेत्रों की अभिव्यक्ति निम्न रूपों में की जा सकती हैः

1. बजट बनाना (Budgeting)– यह वित्त प्रशासन का एक मुख्य यन्त्र है। बजट प्रणाली एक साधन है जिसके माध्यम से वित्त प्रशासन को मोटे तौर पर अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। इसलिए एक अच्छे वित्त प्रशासन की प्रणाली की विशेषताओं के संबंध में जो कुछ कहा गया है वह समूचे रूप से बजट प्रणाली पर भी लागू होता है। वास्तव में किसी देश की अर्थ–व्यवस्था उसकी सरकार की बजटीय क्रियाओं से बहुत अधिक प्रभावित होती है। सरकारी बजट बनाना इन मुख्य प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक साधनों का नियोजन किया जाता है तथा उन पर नियंत्रण किया जाता है। यह बजट के माध्यम से ही है कि सरकारी कार्यक्रमों को नागरिकों की सेवाओं में बढ़ते क्रम से प्रस्तुत किया जाता है जिससे उनका भौतिक स्तर उच्च होता है। सरकार अपना कार्य बजट की सहायता से तथा बजट द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर रह कर ही करती है। बजट, सरकार के विशेष उपकरणों में शीर्ष स्थान रखता है लोकि राष्ट्र के मामलों के निर्देशन तथा नियंत्रण के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

   बजट राजस्व उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया तथा वित्तीय एवं राजस्व पर नियंत्रण करने की क्रिया की शैली दोनों है। यह देश के वित्त प्रशासन का उत्तरदायित्व है कि बजट का संतुलन इस प्रकार प्रभावपूर्ण ढंग से करे कि आय तथा व्यय दोनों ही समान हों। बजट प्रणाली का वास्तविक महत्व इस बात में है कि किसी सरकार के वित्तीय मामलों को सुव्यवस्थित विधि से प्रशासित किया जाए। इस प्रकार के मामलों का संचालन अनवरत क्रियाओं की श्रृंखला में आबद्ध है जिसकी अनेक कड़ियाँ हैं। राजस्व तथा व्यय की आवश्यकताओं का अनुमान, राजस्व तथा विनियोग ऐक्ट, लेखा, अंकेक्षण तथा प्रतिवेदन कुछ निश्चित अवधि के लिए, जोकि प्रायः एक वर्ष होती है, सरकार को ठीक प्रकार से चलाने के लिए जो व्यय की आवश्यकता है। पहले उसका अनुमान लगाया जाता है तथा इसके साथ ही इस व्यय को करने के लिए धन प्राप्त करने की व्यवस्था की जाती है।

2. बजट अधिनियम तथा कार्यान्वयन (Budget Enactment and Execution)– बजट की तैयारी के बाद अर्थात् वार्षिक राजस्व तथा व्यय के विषय में अनुमान लगाने के उपरांत इसे कानूनी स्वीकृति प्राप्त करनी होती है। सर्वप्रथम बजट कार्याकारिणी द्वारा स्वीकार किया जाता है जो इसे विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत करती है ताकि इसे कानूनी दस्तावेज बनाया जा सके। कार्यकारी सरकार का प्रतिनिधित्व करता कोई व्यक्ति प्रायः वित्त मंत्री विधानमण्डल के सम्मुख बजट प्रस्तुत करता है। बजट के तैयार करने तथा इसके प्रस्तुत करने में कार्यकारिणी का केन्द्रीभूत दायित्व विधानमण्डल द्वारा बजट को अधिकृत करने में सुगमता प्रदान करता है तथा इस कार्य के पुनर्वलोकन तथा नीति संबंधी मनन पर ध्यान केन्द्रित करने के योग्य बनाता है। कार्यकारी सरकार द्वारा तैयार एवं प्रस्तुत किए गए बजट का विधानसभा द्वारा पुनर्निरीक्षण एक मुख्य अवसर प्रदान करता है बल्कि यह एक अति महत्वपूर्ण अवसर होता है जबकि प्रशासनिक कृत्यों की विशेषता तथा गुणवत्ता का परीक्षण किया जा सकता है। इस प्रकार का परीक्षण एक संसदात्मक लोकतंत्र में निहित होता है तथा प्रत्येक विधानसभा का एक रखवाले का दायित्व होता है।

बजट का कार्यान्वयन कार्यकारी सरकार का दायित्व है तथा इस प्रकार कार्यकारी सरकार में शक्तियों का विभाजन बजट के कार्यान्वयन की कार्य प्रणाली को निर्धारित करता है। बजट का कुशलतापूर्ण कार्यान्वयन इसलिए शक्तिशाली केन्द्रीय निर्देश तथा नियंत्रण की पूर्ण कल्पना करता है। ''यदि ऐसा नहीं किया जाता तो बजट बहुत सीमा तक अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल होगा जोकि सरकारी वित्त में दोनों छोरों को मिलाने से संतुलन प्राप्त करना है।'' बजट के कार्यान्वयन में सम्मिलित पद निम्नलिखित है –

a) निधि को उचित रीति से एकत्रित करना ii) एकत्रित निधि का उचित रक्षण तथा iii) निधि का उचित बंटवारा। यह कार्यकारिणी का उत्तरदायित्व है कि वह राजस्व/कर तथा बिना कर आय एकत्रित करने के लिए समुचित तथा कार्य प्रणाली के नियमों का निर्माण करे। संचित किए गए धन की संभाल खजानों (राजकोषों) का उत्तरदायित्व है। अनेक देशों में एक अथवा दूसरे रूप में राजकोषों का जाल–सा बिछा हुआ है। संघीय, प्रादेशिक अथवा स्थानीय सरकार से संबंधित लेन–देन, धन की प्राप्ति तथा वितरण राजकोषों अथवा उनकी शाखाओं में प्रतिदिन होता रहता है। राजकोषों तथा बैंकों के मध्य बड़ी निकटता का समन्वय होता रहता है। कोष के वितरण के लिए प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर अनेक अधिकारियों को प्राधिकार सौंपे जाने चाहिएँ जो राजकोषों से धन निकलवा सकें और जिन्हें निन्दनीय अवहेलना के लए जब कोई हानि हो जाए तो दोषी ठहराया जा सके। यह राजकोषीय प्रबंध का दायित्व है कि वह इस बात को निश्चित बनाए कि अदायगी अधिकृत व्यक्ति को की जा रही है तथा कोष का पूर्ण लेखा रखे।

3. कर–प्रशासन (Tax Administration)– एक समय ऐसा था जब कराधान को एक बुराई समझा जाता था, अब यह एक सामाजिक आवश्यकता है। राज्य की प्रकृति तथा गतिविधियों में परिवर्तन के कारण तथा कल्याणाकरी राज्य की अवधारणा से उत्पन्न हो जाने के कारण लोगों को सेवाएँ उपलब्ध करवाने के लिए उनकी सदा बढ़ रही मांगों की पूर्ति के लिए तथा आधुनिक राष्ट्र राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कराधान अपरिहार्य हो गया है। तथापि केवल कर लगाना ही यथेष्ट नहीं है, वास्तविक बोझ तो इसके एकत्र करने पर पड़ता है। प्रत्येक समाज मं कर चोरी तथा कर न देने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं, जैसा कि कर नियमों में जटिलता, लोगों के सहयोग में कमी; आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याएं, कर अधिकारियों का दृष्टिकोण; कराधान प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता इत्यादि। इसके लिए प्रशिक्षित, दक्ष तथा ईमानदार पदाधिकारियों के एक विशाल कर प्रशासन तन्त्र की आवश्यकता है। इसके साथ ही बहुत से देशों में परीक्षण अथवा सतर्कता के लिए पथक् संगठन हैं। कर–प्रशासन उस तंत्र के एक भाग के रूप में कार्य करता है जोकि राजस्व नीति तथा वार्षिक बजटों के कार्यान्वयन की दिशा में कार्य करता है।

4. लोक लेखों का प्रतिपादन (Maintaining Public Account)– वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष सरकारी लेखों को जारी रखना है। विभिन्न प्रकार के संगठन ऐसे हैं जो सरकारी वित्तीय क्रियाओं को जारी रखने में रुचि रखते हैं यानि कि करदाता, विधानसभा तथा निदेशक अधिकारी। करदाता सरकार को उत्तरदायी ठहराने में रुचि रखता है। विधानमण्डल की आंशिक रुचि उत्तरदायित्व लागू करने में होती है तथा आंशिक रूचि भविष्य की नीति निर्माण के लिए सूचना एकत्रित करने में होती है। निर्देशक अधिकारी अधीक्षण तथा नियंत्रण की आवश्यकता से प्रभावित होते हैं। इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए सरकार को लेखों की तैयारी करनी होती है तथा उनका प्रतिपादन करना होता है। सरकारी लेखों के मुख्य प्रकार हैं– नियत्रण लेखे (Control Accunts), मर्यादा लेखे (Propriety Accounts), संपूरक विस्तृत लेखे (Supplementary Detailed Accounts)।

नियंत्रण लेखे मुख्य रूप से इसलिए रखे जाते हैं कि आंतरिक प्रशासन को सुविधा रहे। जिस अधिकारी को कर एकत्रित करने, अभिरक्षा तथा वितरण का भार सौंपा गया उसकी ओर से पूर्ण निष्ठा होनी आवश्यक है

तथा कर लगाते समय, एकत्र करते समय अथवा कोष को व्यय करते समय संपूर्ण नियमों तथा उपबंधों का कठोरता से पालन करना चाहिए। इसके लिए नियंत्रण लेखों की आवश्यकता है। नियंत्रण लेखे विधानमण्डल अथवा जनता के लिए लाभदायक नहीं होते जोकि सरकारी लेखा विधि में रूचि लेने वाले पक्ष होते हैं। इस आशय के लिए मर्यादा लेखे Propriety Accojnts) तैयार किए जाते हैं। इस प्रकार के लेखे में केवल जमा लेखा (Credit Account) तथा नामे लेखा (Debit Account) तथा वाउचर (Voucher) का ही प्रतिपादन नहीं होता किंतु यह दर्शाने के लिए कि जो व्यय किया गया है वह विधानमण्डल की इच्छानुसार हुआ है तथा इससे संबद्ध अधिकारी का कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अपना निहित स्वार्थ न था। इसके अतिरिक्त विस्तृत लेखा, सरकार के देयादेय; आय तथा व्यय अनेक दृष्टिकोण के लिहाज से तैयार किया जाना चाहिए। लेखा विधि (Accounting) सरकारी एजेन्सियों की एक रोजमर्रा क्रिया है किंतु है यह अति महत्वपूर्ण, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र के प्रतिवेदन के अनुसार सरकारी लेखे बजट बनाने तथा अपनाने की प्रक्रिया को सरल बनाने में सहायक होने चाहिए। उन्हें प्रोग्राम के नियोजन, प्रशासन तथा नियंत्रण के लाभप्रद उपकरण होना चाहिए तथा साथ ही सरकार के आर्थिक कार्यक्रम के निर्माण करने तथा मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक सूचना को व्यक्त करना चाहिए।

5. अंकेक्षण (Audit)— किसी भी वित्तीय प्रशासन का यह एक अभिन्न अंग है। लोक वित्त के संसदीय नियंत्रण का यह एक अपरिहार्य भाग है। यह लेखों के स्वतंत्र परीक्षण से संबंधित है अथवा वित्तीय स्थिति के विवरण की सत्यता तथा किसी संगठन में संपूर्ण वित्तीय लेन–देन की जांच से संबंधित है। चार्ल्स वर्थ के अनुसार, ''अंकेक्षण का अर्थ वह प्रक्रिया है, जिससे यह जानकारी प्राप्त की जाती है'' कि प्रशासन ने धन का उपयोग वैधानिक निर्देशों के अनुसार किया है जिसके द्वारा धन विनियोजित किया गया था।'' अंकेक्षण के महत्त्व को निम्नलिखित शब्दों में भी विस्तार से कहा गया है। अंकेक्षण, न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधानपालिका के समान लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसका मूलभूत प्रयोजन इस बात को सुनिश्चित बनाना है कि सरकारी कोष का व्यय करते समय, प्रत्येक प्रकार की वित्तीय परंपरा का पालन किया गया है कि नियम तथा उपबंध, जोकि व्यय से संबंधत है उनका ध्यान रखा गया है, कि व्यय उसी मद पर किया गया है जिसके लिए संसद ने इसका विनियोजन किया था। अंकेक्षण कार्यकारिणी तथा संसद के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी उपलब्ध करता है तथा उस सीमा तक क्रियाओं की व्याख्या करता है जहाँ तक कि पूर्वोक्त की निम्न पर वित्तीय वहन शक्ति होती है। अंकेक्षण, की चार स्थितियाँ हैं।

(1) विनियोजित अंकेक्षण (Appropriation Audit) — सरकार लेखों से संबंधित यह प्राथमिक तथा परंपरागत अंकेक्षण का कार्य है। इसका उद्देश्य इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि जो धन सरकार द्वारा व्यय किया गया है क्या वह उन्हीं सीमाओं के भीतर किया गया है जो संसद ने अनुदान तथा विनियोग करते समय निर्धारित की थी।

(2) नियामक अंकेक्षण (Regulatory Audit) यह इस बात से संबंधित है कि संपूर्ण नियमों तथा अधिनियमों का पालन किया गया है अथवा नहीं।

(3) मर्यादा अंकेक्षण (Propriety Audit) — इसे उच्चत्तर अंकेक्षण भी कहा जाता है। यह हाल ही की उपज है। यह व्यय की औपचारिकता से आगे इसकी 'बुद्धिमता' (Wisdom), निष्ठा (Faithfulness) तथा आर्थिकता (Economy) का ध्यान रखता है जोकि अंकेक्षण के वास्तविक उद्देश्यों से अधिक नहीं तो उसके समकक्ष तो अवश्य है।

(4) कुशल अंकेक्षण (Efficiency Audit)— यह अन्य प्रकार के संवीक्षण से परे अंकेक्षण का विस्तार है जोकि अंकेक्षण में लगी एजेंसी अथवा प्राधिकरण की कुशलता की परीक्षा करता है। इस प्रकार का अंकेक्षण हाल ही की

उपज है तथा इसके महत्व तथा निहितार्थों पर अभी वाद–विवाद, विश्लेषण तथा इसको परिभाषित किया जा रहा है। अंकेक्षण भी एक प्रतिदिन की क्रिया है; जहाँ तक नियामक तथा मर्यादित अंकेक्षण का संबंध है, यह प्रतिदिन की वित्तीय कार्रवाई तथा लेखों की तैयारी के साथ घटित होता है। इसलिए प्रत्येक राज्य में अंकेक्षण का एक समानान्तर तंत्र स्थापित किया जाता है। यह केवल स्वतंत्र अंकेक्षण की संस्था द्वारा ही संभव बनाया जा सकता है कि लोक व्यय पर संसद का प्रभावी नियंत्रण हो सके तथा इस बात को सुनिश्चित बनाया जा सके कि शेष का उचित व्यय किया गया है जिसमें मिव्ययिता तथा कुशलता का उचित ध्यान भी रखा गया है।

उपर्युक्त विचार–विमर्श किए गए वित्तीय प्रशासन के क्षेत्रों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण तथा विषय क्षेत्र है संघ–राज्यीय वित्तीय संबंध एक संघ में संघीय सरकार को ऐसे कार्य सौंपे जाते हैं जोकि संपूर्ण देश से संबंधित होते हैं। प्रायः समस्त संघों में सुरक्षा, विदेशी मामले, संचार, रेल विभाग आदि केन्द्रीय विषय होते हैं। वे समस्त कार्य, जो राज्य को प्रभावित करते हैं तथा वे कार्य जिनमें बड़े स्तर पर अन्तः राज्यीय समन्वय की आवश्यकता है, वे संघीय सरकार के पास होते हैं। प्रादेशिक अथवा राज्य सरकार को वही मामले सौंपे जाते हैं जोकि रथानीय अथवा मूलभूत विशेषता के होते हैं इसके साथ ही संघ सरकार तथा राज्यों में मध्य साधनों के विभाजन की व्यवस्था भी होनी चाहिए तथापि यह एक सरल कार्य नहीं है। राज्यों के कार्य कम होते हैं तथा कमोवेश स्थानीय प्रकृति के होते हैं किंतु राज्यों की संघ सरकार पर अधिक से अधिक साधनों के निर्धारण की मांग बढ़ती ही रहती है। इस प्रकार किसी देश के वित्तीय प्रशासन में वित्तीय साधनों का विभान तथा केन्द्र एवं राज्यों में समन्वय एक जटिल क्षेत्र होता है।

वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य एवं महत्त्व

वित्तीय प्रशासन की सफलता सरकार की राजस्व नीति को इसकी सही भावना तथा निर्धारित अवधि एवं साधनों में पूर्ण करने में निहित है। इसे इन सीमाओं के अंदर रह कर, किसी प्रकार की हानि से बचा कर, दायित्व निश्चित कर लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। वित्तीय प्रशासन के इन कार्यों का विस्तृत वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है।

1. वित्तीय प्रशासन का प्रथम व मूलभूत राजस्व नीति को कार्यान्वित करना होता है। अन्य नीतियों की भांति राजस्व नीति का निर्धारण भी राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा किया जाता है किंतु साथ ही यह कार्यकारिणी का ही दायित्व है कि वह अपनी स्थिति तथा कार्यपालिका की विशिष्टता के कारण नीति निर्धारण में सहायता करे। जहाँ तक कार्यान्वयन का संबंध है, यह प्रशासन का मूलभूत कर्त्तव्य है तथापित कुछ लेखकों के अनुसार, राजस्व नीति का कार्य क्षेत्र वित्तीय प्रशासन के अधिकार क्षेत्र से बाहर है तथा इसमें एक प्रकार के प्रश्न जुड़े हैं जोकि अर्थशास्त्रियों की वित्त से संबंधित है।
2. वित्तीय प्रशासन का एक और आधारभूत कार्य वित्तीय नियंत्रण से संबंधित है। इस मामलें में वित्तीय प्रशासन वित्तीय रखवाले का कार्य निभाता है। यह इस बात को सुनिश्चित बनाता है कि उन वित्तीय साधनों का सही उपयोग हो जो कि समस्त प्रशासनिक अभिकरणों को निर्धारित किए गए हैं।
3. वित्तीय प्रशासन में जिम्मेदारी को बड़ा महत्त्व प्राप्त है क्योंकि प्रथम तो वह, जिसके पास वित्त का नियंत्रण होता है, उसी का बोलबाला होता है तथा दूसरे लोकतंत्र की यह आवश्यकता है कि उसके अफसर न केवल ईमानदारी से कार्य करें अपितु ऐसा दिखाई दे कि उन्होंने ईमानदारी से अपना दायित्व पूर्ण किया है। प्राचीन भारत के विख्यात राजनेता कौटिल्य का कथन है, ''जैसा कि यदि किसी की जिह्वा की नोक पर मधु पड़ा हो तो यह असंभव है कि वह उसका स्वाद न ले वैसे ही सरकारी कर्मचारियों के लिए यह असंभव है कि जो धन उनके हाथों से होकर जाता है उसका आनन्द वे न भोगें।'' लोकतन्त्र में सब प्रकार के यान्त्रिक तथा मानवीय साधनों का उपयोग करना होता है ताकि इसे अपने कर्मचारियों की इस अतिसंवेदनशीलता से लोक सम्पत्ति (धन) की रक्षा की जा सके।

4. वित्तीय जिम्मेवारी न केवल संविधि के तथा अन्य कार्यकारिणी तथा विभागीय नियमों तथा कार्यप्रणाली के अनुरूप होनी चाहिए अपितु अन्य सामान्य 'बुद्धिमता', स्वामीभक्ति तथा आर्थिकता'' के सिद्धांतों के अनुरूप भी होनी चाहिए। अतः लोक प्रशासन में जिम्मेदारी केवल पारस्परिक उपकरणों जैसे बंधक (bonding), हिसाब–किताब (Bookkeeping), लेखा विधि, लेखा विधि (accounting) तथा प्रतिवेदन (reporting) से ही नहीं लाई जा सकती। यह 'परिरक्षा तथा प्रबंधनकर्त्ता से आगे जाता है तथा व्यवस्था के सक्रिय नीति निर्धारण गुणों की सहायता प्राप्त करना है।'[२] इसलिए इसकी प्रभाविकता इस बात में नहीं है कि कुछ बाह्य तथा आन्तरिक नियंत्रणों का विकास किए जाएं अपितु एक एकीकृत तन्त्र का आविष्कार किया जाए जोकि सामान्य तंत्र के सहयोग से कार्य की योजना को इस प्रकार तैयार करे ताकि वित्त का इस प्रकार नियंत्रण किया जा सके कि निर्धारित समय की सीमा के अंतर्गत कम धन तथा शक्ति का व्यय किए बिना योजना के लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन के मूल में एक सुदृढ वित्तीय व्यवस्था कार्यरत होती है। एक कल्याणकारी राज्य में यह केवल एक प्रशासन के नियंत्रण के उपकरण के रूप में ही कार्य नहीं करता अपितु आर्थिक तथा सामाजिक गतिविधि के सशक्त केन्द्रों को धन के बहाव में नियंत्रण का कार्य करता है। यह कार्यशील अभिकरणों की गतिविधियों में समन्वय करने तथा लोक गतिविधियों में प्राथमिकताओं के निर्धारण में भी साधन का कार्य करता है। राज्य को संतुलन में रखने के लिए सुगठित वित्तीय प्रणाली की आवश्यकता ही नहीं अपितु देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए इसको गति, दिशा तथा ढांचे के निर्धारण की आवश्यकता भी है। वित्तीय प्रशासन से संबंधित राजस्व व्यवस्था का एक अन्य कार्य भी है जोकि एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें क्रियाओं की अनवरत कड़ियाँ जुड़ी हुई हैं जिनको कि इस प्रकार निर्दिष्ट किया जा सकता है।

   (क) राजस्व तथा व्यय की आवश्यकताओं के अनुमानों के लिए तकनीकी रूप से कहे जाने वाले बजट की तैयारी की आवश्यकता है।

   (ख) इन अनुमानों के लिए वैधानिक स्वीकृति प्राप्त करना जिन्हें तकनीकी रूप से बजट का वैधानीकरण कहा जाता है।

   (ग) राजस्व तथा 'व्य क्रियाओं' का कार्यान्वयन जिसे 'बजट का कार्यान्वयन' कहा जाता है।

   (घ) इन प्रक्रियाओं की वैधानिक जिम्मेवारी जिसे अंकेक्षण कहा जाता है।

व्हाइट के अनुसार, ''राजस्व व्यवस्था में इसके मुख्य उप–खण्डों के रूप में, बजट का बनाना तथा इसके पश्चात् विनियोग की औपचारिक क्रिया, व्यय का कार्यकारिणी द्वारा पर्यवेक्षण (बजट कार्यान्वयन), लेखा विधि तथा प्रतिवेदन प्रणाली पर नियंत्रण, कोष की व्यवस्था, राजस्व एकत्रित करना तथा अंकेक्षण, सम्मिलित हैं।'' एक युक्तियुक्त वित्तीय प्रशासन की प्रणाली से तात्पर्य है कि संस्था की एकता। सरकार की विभिन्न एजेंसियों में जितनी अधिक एकता होगी तथा कर्मचारियों के पदसोपान के दायित्व में जितना अधिक केन्द्रीकरण होगा, प्रशासन उतना ही कुशल होगा। इस केन्द्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि सब कुछ शीर्ष के कुछ लोगों द्वारा किया जाता है, विवरण अीनस्थ अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए। किंतु इसका यह अर्थ अवश्य है कि विभिन्न अभिकरणों के कार्यों में समन्वय किया जाए तथा सरकार की किसी भी वित्तीय योजना में इसका सही मूल्यांकन किया जाना चाहिए। संसदात्मक लोकतंत्र के ढांचे में, वित्तीय प्रशासन की प्रणाली की व्यवस्था तथा क्रियान्वयन इस भांति किया जाए कि विधान सभा की इच्छा की पूर्ति की प्राप्ति की जा सके जैसा कि विनियोग एक्ट तथा वित्तीय एक्ट के माध्यम से उस द्वारा व्यक्त की गई है। कार्यकारी सरकार को उन उद्देश्यों के लिए राजस्व एकत्रित करना चाहिए, धन ऋण रूप में प्राप्त करना चाहिए तथा व्यय करना चाहिए जिन्हें विधान सभा ने विशेष रूप से अभिव्यक्त किया है। कार्यकारी सरकार द्वारा इन वित्तीय कार्यों पर नियंत्रण करने के लिए विधान

सभा इन गतिविधियों का मूल्यांकन एक संवैधानिक अंकेक्षण संस्था द्वारा करवाती है जोकि कार्यकारी सरकार के नियंत्रण में नहीं होती।

आधुनिक युगों में वित्तीय प्रशासन की महत्ता के कारण
(Reasons for the Significance of Financial Administration in Modern Age)

डॉ0 व्हाइट के अनुसार, ''प्रत्येक प्रशासनिक कृत्य अपनी वित्तीय विविक्षायें भी लिए होता है, या तो खजाने पर बोझ डालता है अथवा इसमें योगदान देता है। धन के व्यय के बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता, कम से कम उस कर्मचारी का वेतन अथवा उस पदाधिकारी को पारीश्रमिक देना होता है जो कार्य करता है। उपलब्ध वित्तीय साधन समूचे रूप से अथवा इसके आंशिक भागों में प्रशासनिक गतिविधियों पर एक सीमा लगा देते हैं। इसलिए वित्तीय प्रबंध प्रशासकों का प्रथम तथा अपरिहार्य दायित्व है।– आजकल वित्तीय प्रशासन बड़ा महत्त्वपूर्ण हो गया है क्योंकि इसका कारण मात्र है कि हमारी सरकार से मांगों की कोई सीमा नहीं है किन्तु उपलब्ध राशि की सीमा हाती है। शांतिकाल में प्राथमिकताओं का निर्धारण करना जिन पर व्यय किया जा सके तथा धन की प्राप्ति, दोनों ही कदाचित कठिन कार्य हैं, विशेष कर उस समय जबकि घरेलू युद्ध जैसा कि निर्धनता के विरूद्ध चलाया जा जा रहा हो। शीघ्रता से आवश्यक परियोजनाओं का संचय होना, लोगों की बढ़ रही आशाओं के कारण पड़ रहा दबाव, वृहदृ योजनाओं तथा तत्काल परिणामों की इच्छा, इन सबका दबाव प्रशासन पर पड़ रहा होता है।

आधुनिक काल में वित्तीय प्रशासन ने और अधिक महत्ता प्राप्त कर ली है। इसके मुख्य कारणों की व्याख्या निम्नलिखित अनुच्छेद में दी जा रही है।

प्रथम, एक कल्याणकारी राज की अवधारणा ने राज्य की सदा बढ़ रही गतिविधियों का श्रीगणेश कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप लोक व्यय में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है तथा निष्कर्ष यह निकला कि राजस्व की भी आवश्यकता बढ़ गई प्राकृतिक रूप से इसके कारण राज्य की वित्तीय प्रबंध में जटिल प्रणाली आरंभ हुई। इसलिए लोक प्रशासन के इस भाग को उन विशेषज्ञों द्वारा संचालित किया जाना चाहिए जोकि राज्यीय वित्त से संबंधित प्रशासकीय जटिलताओं, विवरणों के अम्बादों और पेचीदगियों से पार पा सकने में सक्षम हों।

दूसरे, भारत जैसे लोकतन्त्रीय ढांचे में, जिसमें राज्य के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा राज्य के कार्यों को चलाना होता है, वित्तीय प्रशासन का इस प्रकार अनुकूलन किया जाना चाहिए कि वह लोकतन्त्रीय संस्थाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप हो सके। इसलिए इस प्रकार की लोकतंत्रीय संस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वित्तीय प्रशासन की कार्य प्रणाली सरल तथा सुव्यवस्थित होनी चाहिए ताकि यह सुगमतापूर्वक साधारण बुद्धि के नागरिक की समझ में आ सके तथा बोधगम्य हो। कम से कम इतना तो हो कि विषय का जहाँ तक संबंध है उसकी रूप–रेखा समझ में आ जाए। एक वित्तीय प्रणाली को किस प्रकार से प्रतिपादित किया जा सके कि एक ओर तो कार्यक्षमता तथा इष्टसिद्धि को बनाया रखा जा सके तथा दूसरी ओर विभिन्न लोक तांत्रिक संस्थाओं पर लोक नियंत्रण को बनाए रखा जा सके। कार्य का समन्वय किस प्रकार से किया जाए कि कार्य को सामान्य रूप से बोधगम्य बनाया जा सके तथा इसकी आवश्यक तकनीकियों की बलि भी न दी जाए ताकि राज्य के राजस्व का अत्यंत कुशलतापूर्वक तथा उपयोग किया जा सके। हाल ही में यह लोक प्रशासन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण समस्या बन गई है।

तीसरे, प्रबंध कौशल में विस्मयकारी प्रगति के प्रभाव ने प्राकृतिक रूप से वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र तक अपना विस्तार कर लिया है। ''विज्ञान व्यवस्था तथा सरलता को जन्म देता है, इसलिए वित्त में भी अधिक सरल तथा यौक्तिक कार्य प्रणाली की खोज जारी है। यह भी शंका उत्पन्न होती है कि लोग, जो कि उत्तरोतर बड़ी तीव्र गति से यंत्रों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, इस प्रकार की वस्तु की इच्छा करते हैं जो स्वमेव कार्य करें। कोई भी सामाजिक विज्ञापन, यान्त्रिक विज्ञान के सटीकपन को प्राप्त नहीं कर सकता, अभिज्ञ तथा कुशल हो।'' लोग जितना

अधिक राज्य की जटिल क्रियाओं के तन्त्र को समझने का प्रयत्न करेंगे, राज्य के प्रशासन में उनकी उतनी ही अधिक रूचि उत्पन्न होगी तथा लोकतान्त्रिक संस्थाओं के विकास के लिए यह उतनी ही लाभदायक होगी।

इस प्रकार यह सरकारी गतिविधि की प्रकृति तथा कार्य क्षेत्र में परिवर्तन, विज्ञान तथा तकनॉलजी का प्रभाव, प्रशासन की विधियों तथा तकनीकों में प्रगति, बढ़ रहा लोकतान्त्रिक नियन्त्रण, बढ़ रही आशाएं तथा साधनों की कल्पना, ये कुछ मुख्य कारण है जिनसे वित्तीय प्रशासन ने आधुनिक समय में इतने महत्त्व को प्राप्त कर लिया है। ये महत्वपूर्ण समितियाँ ग्रेट ब्रिटेन, भारत तथा अधिकांश राष्ट्रमण्डलीय देशों में पाई जाती हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका में नहीं।

उपर्युक्त सभी साधनों अथवा उपकरणों द्वारा सार्वजनिक धन के व्यय पर आवश्यक नियन्त्रण रखा जाता है। वित्तीय नियन्त्रण का अन्तिम उद्देश्य शासन को जागरूकता, ईमानदारी और मितव्ययिता के साथ संचालित करना होता है ताकि सरकार को जो जन धन कर दाताओं से प्राप्त हुआ है, उसका दुरूपयोग न हो सके।

वित्तीय प्रशासन के अभिकरण

(Agencies of Financial Administration)

वित्तीय प्रशासन का गठन देश–विशेष के अनुरूप न्यूनाधिक भिन्न हो सकता है तथापि लोकतान्त्रिक राज्यों में सामान्यतः निम्नलिखित साधनों अथवा अधिकरणों द्वारा वित्त संबंधी क्रियाएं संपन्न की जाती हैं:

(1) विधान–मण्डल अथवा व्यवस्थापिका (The Legislature)

(2) कार्यपालिका (The Executive)

(3) वित्त विभाग (The Finance Department) या राजकोष (The Treasury)

(4) लेखा परीक्षा अथवा जांच विभाग (The Audit Department)

(5) संसदीय समितियाँ (Parliament Committees)

1. व्यवस्थापिका (The Legislature)

प्रजातन्त्र राज्यों में राजस्व पर व्यवस्थापिका का अधिकार होता है। व्यवस्थापिका ही आय–व्यय की मदों को निर्धारित करती है। संसद की सत्ता इस सिद्धान्त पर आधारित है कि बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर न लगाया जाए। वार्षिक बजट के माध्यम से सार्वजनिक धन का सरकारी क्रियाओं पर खर्च के लिए विनियोजन कर, करों की अनुमति देना करों की वर्तमान दरों में वृद्धि करना, वास्तविक ऋण की व्यवस्था करना, आदि कार्य व्यवस्थापिका के ही हैं। अधिकांश लोकतंत्रात्मक देशों में इन कार्यों का सम्पादन प्रायः निम्न सदन करता है जो कि एक निर्वाचित सदन होता है। उच्च सदन की वित्तीय शक्तियाँ विभिन्न देशों में भिन्न–भिनन हैं। भारत की संसदीय पद्धति ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित है। ब्रिटिश लोकसभा की भांति भारतीय लोकसभा भी वित्तीय संस्वीकृति तभी देती है जब धन के लिए मांगे उसके समक्ष बजट के रूप में प्रस्तुत की जाएं। लोकसभा की स्वीकृति के बिना बजट पारित नहीं हो सकता है। राज्यसभा यदि बजट को पारित नहीं करे तो भी सरकार को त्यागपत्र नहीं देना पड़ता है। कार्यपालिका अनुदानों की मांगों और करारोपण के प्रस्तावों को संसद के सम्मुख प्रस्तुत करती है और संसद इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। संसद को इनमं वृद्धि करने का अधिकार नहीं होता, वह केवल कटौती कर सकती है।

2. कार्यपालिका (The Executive)

वित्तीय प्रशासन का एक दूसरा मुख्य अभिकरण कार्यपालिका है जिसके द्वारा वित्तीय नीति का निर्धारण और वित्तीय मांगों का व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुतीकरण होता है। बजट–निर्माण का संपूर्ण उत्तरदायित्व

कार्यपालिका का होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार, ''राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सम्मुख वित्तीय वर्ष के लिए सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का एक विवरण प्रस्तुत करता है।'' राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना केन्द्रीय वित्तमंत्री संसद में बजट प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

3. **वित्त विभाग (The Finance Department)**

वित्तीय मामलों की देख–रेख करने वाला केन्द्रीय विभाग एक या एक से अधिक हो सकता है। यह विभाग विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों के साथ विचार–विमर्श करके वार्षिक वित्त–विवरण तैयार करता है। बजट पर संसदीय अनुमति प्राप्त हो जाने पर वित्त मंत्रालय ही सरकार के संपूर्ण व्यय को नियन्त्रित करता है और यह देखता है कि प्रशासकीय मंत्रालयों द्वारा सार्वजनिक व्यय में मित्तव्ययिता बरती जाए। वस्तुतः वित्तीय प्रशासन के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन में यह दायित्व राजकोष पर और भारत तथा अधिकांश राष्ट्रमण्डलीय देशों के वित्त–मंत्रालय पर है। संयुक्त राज्य वित्तीय मामलों की देख–रेख करने वाला केन्द्रीय विभाग एक या एक से अधिक हो सकता है। यह विभाग विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों के साथ विचार–विमर्श करके वार्षिक वित्त–विवरण तैयार करता है। बजट पर संसदीय अनुमति प्राप्त हो जाने पर वित्त मंत्रालय ही सरकार के संपूर्ण व्यय को नियंत्रित करता है ओर यह देखता है कि प्रशासकीय मंत्रालयों द्वारा सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता बरती जाए। वस्तुतः वित्तीय प्रशासन के संपूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन में यह दायित्व राजकोष पर और भारत तथा अधिकांश राष्ट्रमण्डलीय देशों के वित्त–मंत्रालय पर है। संयुक्त राज्य अमेरिका में वित्तीय व्यवस्था का संचालन करने के लिए ऐसी कोई एकीकृत व्यवस्था नहीं हैं वहाँ अनेक पृथक विभाग और अभिकरण वित्तीय प्रशासन के विभिन्न पहलुओं का संचालन करते हैं।

4. **लेखा–परीक्षा विभाग (The Audit Department)**

यह विभाग देखता है कि व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत धन का व्यय व्यवस्थापिका के आदेशानुसार ही हुआ है या नहीं। लेखा परीक्षा विभाग कार्यपालिका के अधीन न होकर एक स्वतंत्र निकाय होता है। धन व्यय हो चुकने के उपरांत लेखा परीक्षा द्वारा संपूर्ण व्यय पर 'अन्वेषी प्रकाश' डाला जाता है अर्थात् उसकी बारीकी से जांच की जाती है ताकि व्यय की वैधता और औचित्य का निश्चय हो जाए। भारत में 1973 से ही लेखा परीक्षा की स्वतंत्रता सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त कर चुकी है और वर्तमान संविधान के अनुच्छेद 148 से 151 लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के कार्यों एवं स्थिति पर प्रकाश डालते हैं और उसे केवल संसद के समक्ष उत्तरदायी ठहराते हैं इस विभाग का वित्त–प्रशासन में भारी महत्त्व है।

5. **संसदीय समितियाँ (Parliamentary Committees)**

संसद की दो महत्त्वपूर्ण समितियाँ–अनुमान समिति **(Estimates Committee)** तथा सार्वजनिक लेखा समिति **(Public Accounts Committee)** देश के वित्तीय संगठन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखती है अनुमान समिति सरकार के विभागों के व्यय में मिव्ययता लाने के सुझाव देती है। सार्वजनिक लेखा समिति नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन को ध्यान में रखते हुए विनियोजन लेखा की जांच करती है और उनमें पाई जाने वाली वित्तीय अनियमितताओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करती है।

सारांश

इस प्रकार वित्त प्रशासन की व्यवस्था सभी देशों में की गई जिनमें भारत भी शामिल है। वर्तमान में इसका कार्यक्षेत्र काफी बढ़ गया है विशेष कर विकासशील देशों में क्योंकि वहाँ यह साधन तथा साधनों में विकल्प प्रदान करता है। यह वित्तीय नियोजन, बजट, निवेश प्रक्रिया तथा व्यय प्रक्रिया पर अपनी नजर रखता है।

कुछ प्रश्न :

- वित्त प्रशासन की प्रकृति का वर्णन करो?
- वित्त प्रशासन के कार्यक्षेत्र का वर्णन करो?
- वित्त प्रशासन के उद्देश्य बताएँ?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- आर0 एन भार्गव, भारतीय लोक वित्त, भार्गव एण्ड संस, चंदौसी, 1977
- जी0 एस. लाल, भारत में लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन, एच0 पी0 कपूर, नई दिल्ली, 1976

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- एस0 एल0 गोयल, पब्लिक वित्तीय प्रशासन, नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप प्रकाशन, 2002
- एम. जे0 के0 थावराज, फानेन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, नई दिल्ली, सुलतान चन्द एण्ड सन्सज, 2003

कुछ प्रश्न :

- वित्त प्रशासन का अर्थ बताएँ। इसकी प्रकृति का वर्णन करो।
- वित्त प्रशासन के महत्त्व तथा क्षेत्र का वर्णन करो।

अध्याय –2

लोक वित्त का अर्थ एवं क्षेत्र

प्रस्तावना

लोक वित्त अपने आपमें नया विषय नहीं है और इसका अध्ययन प्राचीनकाल से होता आया है किंतु वैज्ञानिक ढंग से इसका अध्ययन वर्तमान में ही सम्भव हो पाया है। प्राचीनकाल में इस विषय का क्षेत्र संकुचित था किंतु आज इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो चुका है। यद्यपि प्राचीन एकतन्त्रीय प्रणाली में भी आय–व्यय का ब्योरा रखा जाता था किन्तु उसका प्रारूप छोटा होता था क्योंकि राज्य के कार्य अत्यधिक सीमित थे। इसके विपरीत आधुनिक राज्यों के कार्यों में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। विशेषकर कल्याणकारी राज्यों की स्थापना के पश्चात् तो राज्य लोगों के आर्थिक जीवन में इतनी गहनता से प्रवेश कर चुका है कि वर्तमान में उसकी अनुपस्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वर्तमान में राज्य का कार्य केवल सुरक्षा का प्रबंध करना तथा कानून और न्याय की व्यवस्था तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसे अनेक कल्याणकारी कार्य भी करने होत हैं उदाहरणार्थ, भारत तथा विश्व के अनेक राज्यों को अनेक कार्य, जैसे–सामाजिक सुरक्षा, जनता का संरक्षण, न्याय, रेलवे, भारी विद्युत संयन्त्रण व अणु–शक्ति जैसी अन्य जनोपयोगी सेवाएँ आदि सम्पन्न करने होते हैं। आर्थिक नियोजन तथा नियोजित विकास की लहर ने जो राज्यों के कार्यों की रूपरेखा से पूर्णतया परिवर्तन कर दिया है। स्वाभाविक है कि राज्यों के कार्यों में निरंतर वृद्धि होने से आय और व्यय के ढाँचे में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार यह कहना कठिन होगा कि राज्य जिसका आरम्भ मात्र जीवन के लिए हुआ था, वह आज अच्छे मानव–जीवन के लिए कार्यरत है। स्पष्ट है कि राज्यों के बढ़ते हुए कार्यकलापों के फलस्वरूप राज्य की आय तथा व्यय के लिए उचित प्रबन्ध की आवश्यकता अनुभव हुई और उसका परिणाम यह हुआ कि आज लोक वित्त और उसकी समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाने लगा।

लोक वित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)

लोक वित्त का संबंध लोक–सत्ताओं या सरकारी सत्ताओं (Public authorities) की आय तथा व्यय से होता है। 'लोक' (Public) शब्द का प्रयोग साधारणतः सरकार (Government) या राज्य (State) के लिए ही किया जाता है। लोक–सत्ताओं में सभी प्रकार की सरकारें सम्मिलित की जाती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक वित्त का संबंध केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय–सभी प्रकार की सरकारों के आय–व्यय से होता है और लोक वित्त के अंतर्गत इन सभी प्रकार की सरकारों के आय–व्यय का अध्ययन किया जाता है। लोक वित्त को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है। कुछ मुख्य–मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

डाल्टन के शदों में, ''लोक वित्त का सम्बन्ध लोक–सत्ताओं की आय व व्यय से तगाि इन दोनों के परस्पर समायोजन से है।''[1]

फिण्डले शिराज के अनुसार, ''सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा साधनों की प्राप्ति एवं व्यय से संबंधित सिद्धांतों का अध्ययन ही राजस्व कहलाता है।''[2]

---

[1] Dalton, "It deals with the income and expenditure of public authorities and with the adjustment of one to another."
[2] Findlay Shirras, "The study of the principles underlying the spending and raising of funds public authorities."

बेस्टेबल ने इसको परिभाषित करते हुए कहा है, ''राजकीय साधनों की पूर्ति एवं उनका उपयोग ही अध्ययन की सामग्री है जिसे राजस्व कहा जाता है।''[3]

मेहता के शब्दों में, ''राजस्व राज्य के मौद्रिक तथा साख सम्बन्धी साधनों का अध्ययन है।''[4]

विश्लेषण – विभिन्न विद्वानों द्वारा लोक वित्त की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक वित्त का मूल अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन–सत्ताओं के आय तथा व्यय से है। लेकिन वर्तमान समय में यह अर्थ और अधिक विस्तृत और व्यापक हो गया है। अब लोक वित्त का अध्ययन केवल सरकारी आय–व्यय से संबंधित नहीं अपितु इसके अंतर्गत वित्तीय प्रशासन, लेखा परीक्षण व वित्तीय नियंत्रण भी सम्मिलित किया जाता है।

अतः लोक वित्त की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं – यह वह विज्ञान है जो सार्वजनिक आय–व्यय, ऋण तथा वित्तीय प्रशासन, लेखा परीक्षण व वित्तीय नियंत्रण के मूल सिद्धांतों का तथा राजकोषीय क्रियाओं व राजकोषीय नीतियों का समाज और आर्थिक–व्यवस्था पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है।

सैन्डफोर्ड ने लोक वित्त को निम्न प्रकार परिभाषित किया है, ''लोक वित्त का अर्थशास्त्र विशेष रूप से सामूहिक आवश्यकताओं की संतुष्टि से संबंधित है। इसमें हम उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो राज्य अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उठती हैं, जैसे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच साधनों का विभाजन किस प्रकार किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत सरकारी व्यय के विभिन्न साध्यों की संतुष्टि के लिए साधनों का आबंटन कैसे किया जाता है।''

स्पष्ट है कि लोक वित्त या राज्य वित्त (Public Finance) विभिन्न सरकारों की आय एवं व्यय के तरीकों एवं समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करता है। लोक निकाय (Public bodies) जिन रीतियों से अपना धन खर्च करते हैं तथा जिन उपायों से आय तथा ऋण प्राप्त करते हैं, उन उपायों व रीतियों को ही लोक वित्त की क्रियाओं का नाम दिया जाता है। ये उपाय चूँकि राजकोष (foscal or public treasury) की क्रियाओं संबंध रखते हैं, अतः उन्हें राजकोषीय क्रियाएं (fiscal operations) भी कहा जाता है। इस प्रकार राजकोषीय क्रियाएँ तथा राजकोषीय नीतियाँ (fiscal policies) लोक वित्त के अभिन्न अंग बन गये हैं। राजकोषीय क्रियाओं तथा राजकोषीय नीतियों का प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय, देश के जीवन–स्तर (standard of living), धन तथा आय के वितरण तथा मुद्रा बाजार (money market) आदि पर पड़ता है और उससे देश का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन प्रभावित होता है। इस प्रकार, देश का हर व्यक्ति लोक वित्त के उपायों से संबंधित होता है।

लोक वित्त का महत्त्व एवं क्षेत्र (Importance and Scope of Public Finance)

लोक वित्त के महत्व एवं क्षेत्र का अध्ययन हम निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे–

1. राज्य के कार्य,
2. आर्थिक जीवन पर राजकोषीय क्रियाओं का प्रभाव, तथा
3. लोक वित्त की विषय सामग्री।

1. **राज्य के कार्य** (Functions of the State)– प्राचीन अर्थशास्त्री चूँकि हस्तक्षेप न करने की अबन्ध नीति (Laissez faire) में विश्वास करते थे, अतः उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि सरकार के कार्यों की संख्या कम से कम होनी चाहिए। सन् 1776 में एडम स्मिथ ने ''वेल्थ ऑफ नेशन्स'' (Wealth of Nations) नामक अपनी पुस्तक में राज्य

[3] C.F. Bastable, "Public Finance deals with the expenditure and income of public authorities of the State and their mutual relation as also with the financial administration and control."
[4] J.K. Mehta, "Public Finance then constitutes a study of the monetary and credit resources of the State."

के कार्यों के संबंध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा। **एडम स्मिथ** के अनुसार, ''एक पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न राष्ट्र'' के कर्त्तव्यों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है –

(क) अन्य राष्ट्रों के आक्रमण तथा अन्याय के विरूद्ध राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करना,

(ख) नागरिकों के बीच आन्तरिक शांति, न्याय व व्यवस्था बनाये रखना, तथा

(ग) कुछ ऐसे सार्वजनिक कार्यों एवं सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना करना एवं उनका संचालन करना, जो यद्यपि सम्पूर्ण समाज के लिए अत्यधिक लाभदायक हों, परंतु जिनको निजी व्यक्तियों द्वारा प्रारंभ करने तथा चलाने में उन्हें मुनाफा न हो। उनका मत था कि ऐसे सार्वजनिक कार्यों में उन कार्यों को मुख्य माना जाना चाहिए जिनके द्वारा राज्य में व्यापार व वाणिज्य की सुविधाजनक स्थितियाँ उत्पन्न हों। यह तो स्पष्ट ही है कि ये तीनों कार्य किसी भी सरकार के प्रारम्भिक कार्य हैं। किसी ऐसी स्थिर राजनैतिक व्यवस्था की कल्पना करना भी असम्भव है जिसमें कि इन कार्यों को मूलभूत कार्य न माना जाता हो। वर्तमान समय में सरकार आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जो कार्य करती है उन्हें एडम स्मिथ के तृतीय वर्ग के कार्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि 18वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड में एडम स्मिथ ने भी सरकारी खर्च की इन दो शाखाओं (अर्थात् आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों) के विकास पर जोर दिया था।

किन्तु अनेक अर्थशास्त्रियों, जैसे–इंग्लैण्ड में **रोबर्ट ओविन (Robert Owen)** और **जॉन स्टुआर्ट मिल** ने जो कि संस्थापक सम्प्रदाय (classical School) के अनुयायी थे, अबन्ध नीति के दोषों की ओर लोगों का ध्यान दिलाया और सरकारी हस्तक्षेप की वकालत की। फ्रांस में **सिसोमण्डी (Sisomandi)** ने भी अबन्ध नीति (Laissez faire) के सिद्धांत की आलोचना की और गरीबों के हितों की रक्षा के लिए राजकीय नियंत्रण का सुझाव दिया। विभिन्न देशों के समाजवादियों (socialists) ने किसी न किसी रूप में उत्पादन के साधनों के सामाजीकरण (socialization) का इसलिए सुझाव दिया, जिससे श्रमिक वर्ग को प्रचलित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के शोषण से बचाया जा सके। सन् 1930 की गंभीर आर्थिक मन्दी (Economic depression) तथा कीन्स द्वारा रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन तो अबन्ध नीति के लिए मौत की घण्टी ही बन गई। कीन्स ने बताया कि राज्य को राजकोषीय क्रियाओं के द्वारा रोजगार में वृद्धि करना और उसे उच्च स्तर पर बनाये रखना संभव है। इस प्रकार आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप तथा प्रवेश का समर्थन बराबर बढ़ता गया और यह क्रम आज भी चालू है।

किन्तु राज्य की धारणा (concept) तथा राज्य के कार्यों की रूपरेखा में शनैः शनैः परिवर्तन होता रहा है। यह बात अब अत्यंत व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है कि राज्य का उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का कल्याण अधिक से अधिक करना है। राज्य की इसी धारणा के फलस्वरूप राज्य के कार्यों का विस्तार हुआ है और इसीलिए उसे चिकित्सा सुविधाओं, शिक्षा, निर्धन–सहायता व स्वास्थ्य रक्षा तथा अन्य अनेक जनोपयोगी सेवाओं की व्यवस्था करनी होती है, जिससे सम्पूर्ण समाज के ही कल्याण (Welfare) में वृद्धि की जा सके। वर्तमान समय में, राज्य कई प्रकार से अपनी जनता की सहायता करता है। उदाहरणार्थ वह रेलों, सड़कों, बिजली तथा डाक व तार जैसी मूलभूत सेवाओं की व्यवस्था करके देश की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करता है, वह आय के वितरण में पाई जाने वाली असमानताओं को कम करने के लिए आवश्यक पग उठाता है, वह कमी वाली वस्तु के उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण लगाता है, वह आवश्यक पदार्थों की कीमतों को नियन्त्रित करता है और मुद्रा–स्फीति (inflation) तथा मन्दी (depression) को रोकने के लिए तथा उनके प्रतिकार के लिए यथोचित पग उठाता है। युद्धकाल में, राज्य देश के सम्पूर्ण साधनों पर अपना नियन्त्रण रखता है तथा उन्हें विशेष दिशा में इसलिए गतिशील करता है ताकि युद्ध का मुकाबला सफलतापूर्वक किया जा सके।

उन्नत एवं विकसित देशों (advanced countries) की सरकारें इस बात के लिए प्रतिबद्ध अथवा वचनबद्ध होती

हैं कि वे देश के रोजगार का एक स्थिर एवं व्यापक स्तर बनाये रखें। उनका लक्ष्य ही यह होता है कि देश की अर्थव्यवस्था (economy) यथासम्भव पूर्ण रोजगार के स्तर पर कार्यशील रहे। वे ऐसे कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं जिनके द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर रहे। जहाँ तक अल्पविकसित अथवा विकासशील देशों (underdeveloped or developing countries) की सरकारों का प्रश्न है, वे भी प्रगतिशील आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के लिए वचनबद्ध (committed) होती हैं। अतः हो सकता है कि ऐसे देश अपने सम्पूर्ण साधनों का ही योजनाबद्ध विकास करें। स्पष्ट है कि विकसित, अल्पविकसित एवं जिम्मेदारियों में ज्यों–ज्यों वृद्धि होगी, वैसे–वैसे राज्य के कार्यों में और विस्तार होगा। हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियाँ इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। हमारा देश एक अल्पविकसित देश हैं। अतः विकास–योजनाओं को लागू करने के लिए सरकार ज्यों–ज्यों नये–नये दायित्व अपने ऊपर ले रही हैं, त्यों–त्यों आर्थिक जीवन में उसका प्रवेश बढ़ता जा रहा है और उसके कार्यों की संख्या बढ़ती जा रही है।

आधुनिक राज्य के बढ़ते कार्य (Increasing Functions of Modern States)

इन बढ़े हुए कार्यों को पूरा करने के लिए राज्य को अपना खर्च बढ़ाना होता है और खर्च की पूर्ति के लिए उसे लोक वित्त में दिये गये तरीकों को अपनाकर विभिन्न स्रोतों से धन प्राप्त करना होता है। अतः राज्य के कार्यों व उत्तरदायित्वों का विस्तार होने के साथ ही साथ आजकल लोक वित्त के अध्ययन का महत्व एवं क्षेत्र भी निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। आधुनिक राज्य के कार्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि जन–कल्याण (welfare) के लिए निम्नलिखित सेवाओं की आवश्यकता होती है –

(a) आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा (security) तथा सैनिक, पुलिस तथा अन्य सुरक्षात्मक सेवाओं के लिए व्यय की व्यवस्था करना।

(b) न्याय (justice) अथवा विवादों का निपटारा।

(c) आर्थिक उद्यमों तथा अन्य ऐसी सेवाओं का नियमन व नियंत्रण जैसे कि सिक्का ढलाई (coinage), बाट तथा माप (weight and measures) व्यावसायिक गतिविधियों का नियमन (regulation) तथा कुछ उद्यमों (enterprises) की सरकारी स्वामित्व व संचालन।

(d) शिक्षा, सामाजिक सहायता, सामाजिक बीमा, स्वास्थ्य नियन्त्रण तथा ऐसी ही अन्य क्रियाओं के द्वारा सामाजिक तथा सांस्कृतिक कल्याण में वृद्धि करना।

(e) औषधियों का निर्माण व बिक्री, मद्य की बिक्री, जुआ तथा अन्य समाज विरोधी कार्यवाहियों पर नियन्त्रण लगाकर नैतिक स्तरों का अनियमन करना।

(f) प्राकृतिक साधनों का संरक्षण।

(g) परिवहन तथा संचार के साधनों पर नियंत्रण रखकर तथा ऐसे ही अन्य उपायों द्वारा राज्य की एकता को न केवल बनाये रखना अपितु उसमें और वृद्धि करना।

(h) सरकार का प्रशासन तथा सरकारी अधिकारियों की सहायता।

(i) सरकार की वित्तीय व्यवस्था और राजकोषीय नियन्त्रण का प्रशासन।

(j) समय–समय पर धर्म से सम्बन्धित कार्य।

राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव (Effect of Fiscal Operations) – आर्थिक विश्लेषण (economic analysis) से पता चलता है कि लोक वित्त की कार्यवाहियाँ निवेश (investment) तथा उपभोग पर ठोस प्रभाव डालती हैं। अतः इनका उपयोग कुल मांग को नियन्त्रित करने तथा अर्थव्यवस्था को स्थिर करने में सरलता से किया जा सकता है। सरकारी व्यय अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने वाली राजकोषीय नीति (Fiscal policy) का मुख्य आधार होता है और

उसमें परिवर्तन लाकर देश के कुल व्यय को नियन्त्रित किया जा सकता है। किन्तु इस दिशा में सरकारी व्यय केवल तभी सक्रिय होता है तब सरकार किसी निश्चित अवधि में अपनी राय से अधिक या कम खर्च करती है। अतः उन्नत देश अपनी अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए सदा अच्छी राजकोषीय नीति का ही आश्रय लेते हैं और आर्थिक नियोजन के अन्य सभी उपयों में इसे ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय मानते हैं। यद्यपि ऊपर के वक्तव्य की भी कुछ सीमाएँ हैं, फिर भी राष्ट्रीय आय व उत्पादन में स्थायित्व लाने तथा कुछ सीमाओं के अंतर्गत उसमें वृद्धि करने का यह सर्वाधिक शक्तिशाली तथा एकमात्र अस्त्र रहा है। एक उन्नत अर्थव्यवस्था (advanced economy) में, जहाँ कि प्रति व्यक्ति आय (per capita income) का काफी अच्छा स्तर होता है, राष्ट्रीय आय की वृद्धि के मार्ग की एक मुख्य बाधा यह होती है कि साधनों में होने वाली वृद्धि की तुलना में मांग नहीं बढ़ती, अतः निवेश के अवसर कम हो जाते है।। मांग होने का कारण यह होता है कि आय बढ़ने के साथ–साथ सीमान्त उपभोग–प्रवृत्ति (Marginal propensity to consume) घटती जाती है। अतः राष्ट्रीय आय के वितरण में यदि अधिक समानता लाई जाए तो उससे उपभोग कार्य को बल मिलता है और निवेश तथा कुल उत्पादन में वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार उच्च आय वाले औद्योगिक देश 'ऊँची मजदूरी व कम लाभ' वाली अर्थव्यवस्था को अपनाकर तथा ऐसी ही अन्य राजकोषीय कार्यवाहियों के द्वारा आय से वितरण में अधिकाधिक समानता लाकर अपनी आय तथा लोगों के जीवन स्तर को काफी ऊँठा सकते हैं। अतः उन्नत देशों में आर्थिक स्थिरता लाने तथा राष्ट्रीय आय व उत्पादन के समान एवं न्यायपूर्ण वितरण के लिए लोक वित्त की कार्यवाहियों को बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है।

अल्पविकसित देशों में भी सरकार का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हो तथा राष्ट्रीय उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) हो, और राजकोषीय नीति (Fiscal policy) इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महत्वर्पूा अस्त्र बन सकती है। राजकोषीय नीति देष की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डाल सकती है, एक ओर तो यह सरकारी आय (Public income) की मात्रा में वृद्धि करके ऐसा कर सकती है और दूसरी ओर सरकारी खर्च (public expenditure) की मात्राा तथा उसकी दिशा–परिवर्तन करके। तीन महत्वपूर्ण राजकोषीय उपाय, जिनके द्वारा कि सरकारी खजाने अथवा राजकोष के साधनों में वृद्धि की जा सकती है, ये हैं – कराधान या करारोपण (taxation) जनता के उधार तथा ऋण–प्राप्ति अथवा साख–निर्माण। यह आवश्यक है कि राजकोषीय उपायों का उपभोग इनमें परस्पर पूर्ण तालमेल रखते हुए किया जाए, ताकि लोगों के आर्थिक जीवन पर सामाजिक कल्याण एवं आर्थिक प्रगति के रूप में इनके सर्वोत्तम तथा व्यापक प्रभाव पड़ें।

यह भी स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि इन तीनों उपायों में कराधान ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यदि करों का निर्धारण बुद्धिमता के साथ किया जाए और उनको सावधानी के साथ लागू किया जाए तो कराधान राजकोषीय नीति का अत्यंत प्रभावशाली अस्त्र बन सकता है। विकास के सामान्य कार्यक्रम के एक अंग के रूप में, कराधान का उपभोग निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है –

(क) उपभोग पर रोक लगाकर या उसमें कटौती करके उत्पत्ति के साधनों को उपभोग के निवेश की ओर स्थानान्तरित करना।

(ख) बचत तथा निवेश करने के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन देना।

(ग) साधनों को जनता के हाथों में से राज्यों के हाथों में देना, जिससे सार्वजनिक निवेश करना सम्भव हो सके।

(घ) आर्थिक असमानताओं में कमी करना।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये सभी लक्ष्य राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि तथा उसके वितरण में सुधार के अंतिम लक्ष्यों से मेल खाते हैं। अतः अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास तथा कल्याण की दृष्टि से भी लोक वित्त की कार्यवाहियों का भारी महत्व है।

लोक वित्त की विषय–सामग्री (Subject-matter of Public Finance)

लोक वित्त एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध सरकार की आय तथा व्यय से है किन्तु वर्तमान समय में इसका क्षेत्र एवं महत्त्व और विस्तृत हो गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसको निम्नलिखित विभागों में बँटा है सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण और सम्पूर्ण रूप में राजकोषीय व्यवस्था की समस्याएँ, जैसे कि वित्तीय प्रशासन इन विभगों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है –

1. **सार्वजनिक आय या लोक राजस्व (Public Revenue)** – इन विभागों में सरकारी आय की प्राप्ति एवं उसमें वृद्धि के उपायों, कराधान के सिद्धांतों तथा उनसे सम्बन्धित अन्य समस्याओं का विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है। इस विभाग के अन्तर्गत निम्न कार्य किये जाते हैं –

(a) सार्वजनिक आय के कौन–कौन से साधन हैं अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण।

(b) कर जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कर कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् कर का वर्गीकरण।

(c) कर लगाने में किन–किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् करोरोपण के सिद्धांत।

(d) जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य है और यह किन–किन बातों पर निर्भर करती है अर्थात् कर देय क्षमता तथा उसके निर्धारक तत्व।

(e) सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।

(f) किन–किन कारणों से एक कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में, सफल होता है? अर्थात् कर के विवर्तन के तत्व।

2. **सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)** –लोक वित्त का यह विभाग सरकारी व्यय के सिद्धांतों तथा देश के आर्थिक जीवन पर अर्थात् उत्पादन, वितरण तथा विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाले उसके प्रभावों का अध्ययन करता है। इस विभाग के अन्तर्गत निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है –

(a) सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण।

(b) किन–किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन–किन पर नहीं? अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र।

(c) सार्वजनिक व्यय करते समय किन–किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत।

(d) सार्वजनिक व्ययका देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव।

3. **सार्वजनिक ऋण (Public Debt)** – इस विभाग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सरकारी ऋण क्यों लिये जाते हैं, कैसे लिए जाते हैं, उनका भुगतान किस प्रकार किया जाता है तथा उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है –

(a) किन–किन परिस्थितियों में सरकार के लिए ऋण लेना वांछनीय होगा अर्थात् सार्वजनिक ऋण का क्षेत्र।

(b) सार्वजनिक ऋण कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण।

(c) किन दशाओं में ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन दशाओं में कर लगाना अर्थात् ऋण और कर का तुलनात्मक अध्ययन।

(d) किन दशाओं में देश के भीतर से ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन में विदेशों से अर्थात् आन्तरिक तथा बाह्य ऋण की तुलना।

(e) घाटे का वित्त प्रबन्ध क्या होता है, किस सीमा तक घाटे का वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और उसके क्या प्रभाव होते हैं अर्थात् घाटे के वित्त प्रबन्ध का अर्थ, सीमा तथा प्रभाव।

(f) ऋण की वापसी के कौन–कौन से तरीके और उनमें से हर एक के क्या गुण व दोष हैं अर्थात् सार्वजनिक ऋण के शोधन के सिद्धांत।

(g) ऋण के क्या प्रभाव होते हैं?

4. **वित्तीय प्रशासन (Financial Administration)** – लोक वित्त की इस शाखा के अन्तर्गत प्रशासनिक नियन्त्रण के उपायों तथा बजट की तैयारी से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है। वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है –

(a) बजट किस प्रकार तैयार, पास तथा कार्यान्वित किया जाता है?

(b) विभिन्न करों का एकत्रीकरण किन–किन अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा होता है?

(c) व्यय विभागों का संचालन किस प्रकार होता है?

(d) सार्वजनिक लेखों के लिखने तथा उनके ऑडिट के लिए कौन–कौन से विभाग तथा अधिकारी होते हैं तथा उनके क्या–क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं?

बेस्टेबल ने राजस्व के इस विभाग की आवश्यकता तथा महत्त्व पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार कोई भी वित्त की पुस्तक पूर्ण नहीं कही जा सकती है जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।

विषय–सामग्री सम्बन्धी आधुनिक मत (Modern View Relating to Subject Matter)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार लोक वित्त की विषय–सामग्री के उपरोक्त चार भागों के अतिरिक्त निम्न दो भागों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए –

1. **आर्थिक स्थिरता** (Economic Stabilisation) –इस विभाग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वर्तमान में सभी अर्थव्यवस्थाओं का, आर्थिक स्थिरता, एक मुख्य उद्देश्य होता है, इसको बनाये रखने के लिए राजकोषीय नीति (Fiscal policy) को किस प्रकार से उपभोग में लाया जाए? देश की राष्ट्रीय आय में न्यायोचित वितरण, कीमत स्थिरता को बनाये रखने के लिए राजकोषीय नीति एक महत्वपूर्ण अस्त्र माना जाने लगा है। इसी सहायता से देश की उत्पादन क्रियाओं का नियमन करके आर्थिक स्थिरता स्थापित की जा सकतती है।

2. **आर्थिक वृद्धि** (Economic Growth) – कुछ विद्वानों का कहना है कि आर्थिक स्थिरता की समस्या मूलभूत रूप से विकसित देशों की होती है। विकासशील देशों में तो मुख्य समस्या आर्थिक वृद्धि की होती है। ऐसी स्थिति में इन देशों में आय, बचत, निवेश एवं पूँजी–निर्माण में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है

जो राजकोषीय उपकरणों के प्रयोग से ही सम्भव हो सकता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो0 रैगनर नर्कसे** (R. Nurkse) का कहना ठीक प्रतीत होता है, ''मेरा अटूट विश्वास हो चुका है अल्प–विकसित देशों में पूँजी–निर्माण की समस्या को हल करने के लिए लोक वित्त को एक नायक का स्थान प्राप्त हुआ है।'' इस प्रकार स्पष्ट है कि नियोजित विकास में राजकोषीय नीति, जोकि लोक वित्त की विषय–सामग्री का अंग है, का अध्ययन आवश्यक है। लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय–सामग्री स्थिर नहीं है, क्योंकि राज्य की धारणा (cpmcept) राज्य के कार्यों तथा अर्थशास्त्र की समस्याओं में परिवर्तन होने के साथ ही साथ इसका भी निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।

उदाहरणतया – सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी तथा 'रोजगार का सामान्य सिद्धांत' नामक कीन्स के लेख ने इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि देश में आर्थिक स्थिरता लाने व उसे बनाये राने में राजकोषीय कार्यवाहियों का कितना अधिक महत्व है। आजकल सरकारी आय, सरकारी खर्च तथा सरकारी उधार में वृद्धि तथा राज्य के आर्थिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रतिरक्षा एवं लोक–प्रशासन की नित्य नई–नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन सभी तत्वों के कारण लोक वित्त का क्षेत्र भी बराबर विस्तृत होता जा रहा है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त का महत्त्व (Role of Public Finance in National Economy)

वर्तमान समय में लोक वित्त का महत्त्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यद्यपि प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार राज्य को प्रजा के कार्यों में कम–से–कम हस्तक्षेप करना चाहिए। एडम स्मिथ ने तो केवल सुरक्षा, पुलिस और शांति व्यवस्था आदि जैसे कार्यों में ही राजकीय हस्तक्षेप को आवश्यक बताया। इसी प्रकार व्यक्तियों द्वारा किया गया व्यय उत्पादक तथा सरकार द्वारा किया गया व्यय अनुत्पादक होता है। 19वीं शताब्दी में प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर (Wagner) ने राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का प्रतिपादन किया और तब से राज्य के कार्यों में तीव्रता से वृद्धि हुई है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में विशेष रूप से 1930 की महामन्दी के कारण लोक वित्त को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। वर्तमान समय में राज्य को एक कल्याणकारी संस्था माना जाता है। निर्धनता, आर्थिक विषमता, व्यावसायिक उच्चावचन आदि परिस्थितियों के कारण मानव जीवन में राजकीय हस्तक्षेप को अपरिहार्य बना दिया है।

कार्ल मार्क्स, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ तथा सिडनी वेब ने व्यक्तिगत प्रयासों के स्थान पर राजकीय प्रयास व हस्तक्षेप को महत्व प्रदान किया है। लोक वित्त के अध्ययन के महत्व में वृद्धि का एक कारण यह भी है कि देश की सार्वजनिक वित्त व्यवस्था का प्रत्येक अंग पर प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक वित्त का कार्य सरकार के लिए केवल वित्त एकत्रित करना ही नहीं है– अब उसे सामाजिक न्याय दिलाने, आर्थिक स्थिरता बनाये रखने, पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने का भी एक शक्तिशाली साधन समझा जाता है। विकासशील देशों के आर्थिक विकास में भी लोक वित्त का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः स्पष्ट है कि अब सरकार आर्थिक विषयों में अत्यधिक हस्तक्षेप करने लगी है।

हम लोक वित्त के महत्त्व का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं–

1. साधनों के वितरण में महत्त्व,
2. आय और सम्पत्ति के वितरण में महत्त्व,
3. आर्थिक स्थिरता के संदर्भ में महत्त्व तथा
4. आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में महत्त्व।

1. **साधनों के वितरण में महत्त्व (Importance of Public Finance in Allocation of Resources)** साधनों के वितरण से आशय इनके सर्वश्रेष्ठ चुनाव से है जिससे स्पष्ट होता है कि समाज की भूमि, श्रम, पूँजीगत वस्तुओं व अन्य साधनों का किस प्रकार प्रयोग किया जाए–किन वस्तुओं का उत्पादन कितनी मात्रा में किया

जाए तथा उत्पादन की किन–किन रीतियों का प्रयोग किया जाए, इत्यादि। प्रत्येक देश के पास निश्चित मात्रा में आर्थिक साधन उपलब्ध होते हैं। इनमें प्राकृतिक साधन, जैसे–भूमि, वन, खनिज सम्पदा व शक्ति स्रोत आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं। प्राकृतिक साधनों के विषय में यह उल्लेखनीय है कि इनकी उपलब्धि मात्र से ही किसी देश के आर्थिक विकास का स्तर ऊँचा नहीं हो जाता अपितु आर्थिक विकास हेतु इन साधनों का विदोहन भी आवश्यक है। इनके अतिरिक्त किसी देश के प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों के द्वारा कृषि उद्योग, यातायात व व्यापार आदि आर्थिक क्रियाओं का संचालन होता है। यही देश की अर्थव्यवस्था के अंग हैं। इन्हीं पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। स्पष्ट है कि आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य उपलब्ध साधनों का बुद्धिमतापूर्ण तरीके से उचित विदोहन करना है। इसका ज्ञान निम्न विवरण से भी हो सकता है –

(i) **आर्थिक संरचना का विकास (Development of Economic Structure)** –सरकार अपनी बजट नीति द्वारा आर्थिक संरचना के विकास हेतु धन की व्यवस्था कर सकती है। इसके अन्तर्गत रेलवे, विद्युत, सड़क, यातायात, स्कूल, अस्पताल, बहुउद्देशीय योजनाओं आदि का विकास आता है। इसके अभाव में आर्थिक प्रगति व्यवस्थित रूप से नहीं हो सकती परन्तु इन योजनाओं पर बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। परन्तु इसके शीघ्र व प्रत्यक्ष प्रतिफल की भी आशा नहीं की जा सकती। अतः व्यक्तिगत उद्यमी इस प्रकार के विनियोगों में रूचि नहीं रखते। अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि वह आर्थिक संरचना के भार को वहन करे, पूँजी निर्माण की दर को तीव्र करे व भार मितव्ययिताओं को उत्पन्न करे।

(ii) **जनसंख्या वृद्धि की दर (Rate of Population Growth)** –द्रुत आर्थिक विकास तभी संभव हो सकता है जब जनसंख्या वृद्धि दर की अपेक्षा रोजगार के अवसरों और आय में वृद्धि की दर बहुत अधिक हो। अतः सरकार अपनी राजकोषीय नीति में परिवार नियोजन पर अधिक महत्व देते हुए जनसंख्या को नियन्त्रित करती है।

(iii) **पिछड़े क्षेत्रों का विकास (Development of Backward Areas)** –यदि पिछड़े क्षेत्रों में कर संबंधी छूटें एवं रियायतें प्रदान की जाएँ तो घने बसे क्षेत्रों में लगे आर्थिक साधनों को पिछड़े क्षेत्रों की ओर मोड़ा जा सकता है। इसमें जहाँ पिछड़े क्षेत्रों की उन्नति और विकास में सहायता मिलेगी वहाँ संतुलित आर्थिक विकास भी संभव हो सकेगा।

(iv) **सार्वजनिक व निजी उद्योग का विकास (Development of Public and Private Industries)** –वर्तमान समय में राज्य देश में सुदृढ़ औद्योगिक ढाँचा तैयार करने हेतु स्वयं आधारभूत उद्योगों की स्थापना व उनका विकास करता है। इसके अतिरिक्त सरकार व्यक्तिगत विनियोगों को भी अपनी राजस्व नीति द्वारा प्रोत्साहित कर सकती है, जैसे– (A) व्यक्तिगत उद्योगों पर कर भार कम करना, (B) इनको विभिन्न औद्योगिक सुविधाएँ प्रदान करना, (C) व्यक्तिगत उद्योगों को सस्ती ऋण सुविधाएँ मिलना व इस हेतु विशिष्ट वितीय संस्थाएँ खोलना आदि।

(v) **सामाजिक सुरक्षा संबंधी गतिविधियाँ (Social Security Activities)** –अनेक विकसित देशों में क्रमिक सुरक्षा, उदाहरणार्थ–स्वास्थ्य बीमा, बेकारी बीमा योजना, वृद्धावस्था पेन्शन, मातृत्व लाभ आदि कार्यक्रमों पर बहुत बड़ी माा में सार्वजनिक व्यय किया जाता है जिसका अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपलब्ध साधनों के पूर्ण उपयोग व उचित आवंटन के क्षेत्र में राजस्व का महत्वपूर्ण योगदान है।

2. **आय और सम्पत्ति के वितरण में महत्त्व (Importance of Public Finance in Distribution of income and Wealth)** –आज अधिकांश देशों में आय व सम्पत्ति के वितरण में असमानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं एक ओर तो कुछ

मुट्ठी भर लोग धन से परिपूर्ण रहते हैं और अनेक विलासितापूर्ण कार्यों में अपनी आय का दुरूपयोग करते हैं, जबकि दूसरी ओर जनसाधारण अथाह दरिद्रता व विपत्ति के नीचे दबे कराहते हैं। स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत यदि आर्थिक शक्तियों को नियन्त्रित न किया जाए तो आय व सम्पत्ति के वितरण की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। आय की असमानता नैतिक, सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से अवांछनीय है। धन के वितरण की असमानता को दूर करने से समाज को अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त हो सकेगा। आय की असमानता के कारण देश में उत्पादन का ढाँचा धनी वर्ग के अनुकूल हो जाता है। उत्पादन का अधिकांश भाग अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के बजाय विलासिता की वस्तुओं का होता है। अतः समाज को अधिकतम सामाजिक सन्तोष प्राप्त नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त आय की असमानता अन्ततः बेरोजगारी को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या के विशाल वर्ग के लिए आर्थिक असुरक्षा उत्पन्न हो जाती है, बचत व विनियोग का सन्तुलन सम्भव हनीं हो पाता और देश की अर्थव्यवस्था अनुकूलतम स्थिति में कार्य नहीं कर पाती। अब हमें यह अध्ययन करना होगा कि आय व सम्पत्ति के वितरण की विषमताओं को कम करने हेतु लोक वित्त कहाँ तक उपयोगी होगा। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री धन के वितरण के लिए करारोपण को सामान्यतः विरोध की दृष्टि से देखते थे। उनका कहना था कि करारोपण का एकमात्र उद्देश्य राज्य के लिए आय प्राप्त करना है। परन्तु वर्तमान समय में यह बात पूर्ण रूप से स्वीकार की जा रही है कि राजकोषीय नीतियाँ धन के वितरण की असमानताओं को दूर करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। सार्वजनिक व्यय द्वारा जहाँ गरीबों के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाकर वितरण की विषमताओं में कमी की जा सकती है वहाँ करारोपण द्वारा धनी व्यक्तियों को आय का स्तर नीचा करके भी इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार आज धन के वितरण में वांछित समानता लाने की दो मुख्य विधियाँ हैं –

(i) सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure) – यह आय को निर्धन व्यक्तियों के हित में पुनर्वितरित करने का साधन हो सकता है। यदि सरकार अपनी आय का अधिकतम भाग इस प्रकार व्यय करती है जिससे निर्धनों की अधिक सहायता होती है तो वास्तविक आयों में कम असमानता होगी। अतः सरकार को निम्न आय के लोगों पर अधिक व्यय करना चाहिए। इस विषय में सरकार को चाहिए कि वह – (अ) सामाजिक सेवाओं, जैसे–निःशुल्क शिक्षा, चिकित्सा व मकान की व्यवस्था आदि गरीबों के लिए करे। (ब) बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था की कठिनाइयों से गरीबों की रक्षा करें। (स) सरकार द्वारा अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हेतु विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए। (द) यदि सरकार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के संतुलित विकास कार्यक्रम को शुरू कर दे तो यह नीति जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और आय की असमानताओं को दूर करने में और भी सफल होगी।

(ii) करारोपण (Taxation) –करारोपण भी धन की असमानताओं को दूर करने का महत्वपूर्ण साधन है। सर्वप्रथम जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर ने करारोपण के माध्यम से धन की असमानताओं को दूर करने का जोरदार समर्थन किया है। आय–कर (Income tax) वेतन और मजदूरियों में अंतर के कारण आय की असमानता को कम करता है, जबकि उत्तराधिकार कर (Inheritance Tax) विशेष रूप से सम्पत्तियों के अंतर के कारण उत्पन्न असमानताओं को कम करता है। अतः प्रगतिशील व प्रत्यक्ष करों के द्वारा अपेक्षाकृत धनी वर्ग के लोगों से निर्धन वर्ग की ओर धन का हस्तान्तरण किया जा सकता है, क्योंकि धनी व्यक्तियों से कर वसूल करके उसे ऐसी सामाजिक सेवाओं पर व्यय किया जा सकता है जिसका वास्तविक लाभ निर्धन वर्ग के लोगों को हो। यद्यपि सार्वजनिक व्यय और करारोपण साथ–साथ चलते हैं, फिर भी धन के वितरण की असमानता को दूर करने में करारोपण का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि करारोपण केवल धनी व्यक्तियों की आय का स्तर नीचा करने के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु सरकारी व्यय के कार्यक्रमों के लिए धनराशि प्राप्त करने के लिए भी बहुत आवश्यक है। प्रगतिशील कर आय की असमानता को कम करते हैं जबकि प्रतिगामी कर आय की असमानता को बढ़ाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्व द्वारा आय और सम्पत्ति के समान वितरण की दिशा में जो प्रयास किये

जाते हैं उनका बचत और विनियोग पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और देश की अर्थव्यवस्था को समुचित ढंग से विकसित करने में सहायता मिलती है तथा देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

(3) आर्थिक स्थिरता के सन्दर्भ में महत्त्व (Importance of Economic Stability) –आर्थिक स्थिरता का तात्पर्य उत्पादन, रोजगार व मूल्य में होने वाले परिवर्तनों से है। उत्पादन, रोजगार और मूल्यों में होने वाली वृद्धि देश की अर्थव्यवस्था के ऊपर जाने के प्रतीक माने जाते हैं। इसके विपरीत उत्पादन में कमी, बेरोजगारी व मन्दी देश की अर्थव्यवस्था को मन्दी की ओर ले जाती है। अतः पूर्ण रोजगार अथवा आर्थिक स्थिरता हेतु लोक वित्त के महत्त्व की विवेचना हम इस प्रकार कर सकते हैं कि इसके द्वारा उत्पादन, मूल्यों व रोजगार पर किस प्रकार प्रभाव डाला जा सकता है ताकि निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

यहाँ पर पूर्ण रोजगार और मूल्य–स्थिरता के अर्थों को समझना आवश्यक हो जाता है। सर विलियम बेवरिज के अनुसार, ''रोजगार का विचार उस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें बेकार व्यक्तियों की संख्या की तुलना में काम करने के लिए अधिक खाली स्थान प्राप्त होते हैं।'' अमरीकी आर्थिक संघ के अनुसार, ''पूर्ण रोजगार का अर्थ यह है कि उन सभी योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को जो प्रचलित वेतन दरों पर काम चाहते हैं, बिना अधिक विलम्ब हुए उत्पादक कार्यों में काम प्राप्त हो सके।'' इसी प्रकार मूल्य स्थिरता का अर्थ यह है कि मूल्यों के सामान्य स्तर में तीव्र अल्पकालिक परिवर्तनों का न होना।

प्रतिष्ठित अर्थशासित्रयों का यह मत था कि समाज में सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है। उनका यह विचार जे. बी. से के प्रसिद्ध कथन ''पूर्ति स्वतः माँग की जननी होती है'' पर आधारित था। अतः अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी या अत्युपादन हो ही नहीं सकता क्योंकि जो कुछ भी पैदा होता है उसका मुद्रा द्वारा विनिमय अवश्य हो जाता है लेकिन आधुनिक अर्थशासित्रयों ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के उपरोक्त विचारों का जोरदार खण्डन किया है और यह स्पष्ट किया है कि देश में निजी उपक्रम के प्रयासों से ही सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पाई जाती। कीन्स के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे सदा ही उतार–चढ़ाव आया करते हैं। कभी अतिपूर्ण रोजगार की स्थिति आती है तो कभी अपूर्ण रोजगार की स्थिति। अगर किसी विशेष समय पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है तो यह एक संयोग की ही बात होती है।

पूर्ण रोजगार और उससे सम्बन्धित तथ्य अर्थात् उत्पादन रोजगार एवं मूल्य को प्रभावित करने वाला एक आधारभूत तत्त्व प्रभावपूर्ण माँग समाज में होने वाले कुल उत्पादन के मूल्य को सूचित करती है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय उत्पादन का कुल मुल्य और उद्योगपतियों द्वारा माल की बिक्री से प्राप्त होने वाली आय में कोई अन्तर नहीं होता। अर्थात् कुल उत्पादन राष्ट्रीय आय के बराबर होता है। अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक स्थिरता एक देश की अर्थव्यवस्था को काफी सीमा तक प्रभावित करती है।

4. आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में महत्त्व (Importance in Collection of resources for Economic Development) – आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में लोक वित्त का क्या महत्त्व है, इसे हम निमन विवरण से स्पष्ट कर सकते हैं–

(i) **पूँजी निर्माण** (Capital formation) – किसी देश के आर्थिक विकास में पूँजी निर्माण का केन्द्रीय महत्त्व होता है। वस्तुतः अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त निर्धनता के उचित चक्र को विनियोग के बिन्दु से टाला जा सकता है और जिसके कारण अनुकूल परिवर्तनों की संभावना हो जाती है। अन्ततः लोक वित्त की कार्यवाहियों का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उपभोग व अन्य गैर विकास कार्यों की ओर से पूँजी निर्माण अर्थात् बचत व विनियोग की ओर साधनों का अन्तरण हो। सरकार पूँजी निर्माण में वृद्धि करने के लिए कई प्रकार से सहायता कर सकती है। डॉ0 आर. एन. त्रिपाठी के अनुसार, चूँकि अर्द्धविकसित देशों में बचत की दर अत्यन्त कम होती है, अतः इन देशों में बढ़ती हुई बचत दर प्राप्त करने हेतु ताकि विनियोग अधिक से अधिक हो, सरकार निम्नलिखित ढंग अपना सकती है –

(अ) प्रत्यक्ष भौतिक नियंत्रण, (ब) वर्तमान करों की दर में वृद्धि करना,

(स) सार्वजनिक उद्योगों से बचत प्राप्त करना, (द) सार्वजनिक ऋण,

(य) घाटे का बजट।

(अ) प्रत्यक्ष भौतिक नियन्त्रण (Direct physical control)– यह विशिष्ट उपभोग व अनुत्पादक विनियोजन को घटाने में अत्यन्त प्रभावशाली होता है। यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में उसका प्रशासन असुविधाजनक होता है फिर भी प्रत्यक्ष भौतिक नियंत्रण राजकोषीय नीति का आवश्यक अंग होता है।

(ब) वर्तमान करों की दर में वृद्धि (Increase in the rate of present taxes) – करों को लगाना तथा वर्तमान करों की दर में वृद्धि जो स्पष्ट रूप से प्रगतिशील भी कही जा सकती है, अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कर की रचना निम्न प्रकार से हो सकती है– (क) धनी वर्ग के उन साधनों को जो निष्क्रिय पड़े हों अथवा जिनका राशि की दृष्टि से लाभप्रद उपभोग न होता हो– आय कर, सम्पत्ति कर आदि लगाकर प्राप्त किया जा सकता है, सरकारी वस्तुओं पर कर लगाया जा सके जिनकी मांग बेलोच हो, (ख) कृषक वर्ग की बढ़ती आय में से कर लगा देना आवश्यक होता है। इस हेतु भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्तियों पर करारोपण किया जा सकता है।

(स) सार्वजनिक उद्योगों से बचत प्राप्त करना (To collect the savings from public enterprises) –विकासशील देशों में अधिक लागत के कारण उद्योगों में कम बचत प्राप्त होती है फिर भी यदि सार्वजनिक उद्योगों को दक्षता व कुशलता से चलाया जाये तो उनसे भी अतिरेक प्राप्त किया जा सकता है।

(द) सावतकने ऋण (Public debt) –ऐच्छिक बचत को सरकार ऋण के रूप में प्राप्त कर सकती है। लोगों की बचत को बढ़ाने क लिए सरकारी ऋण पत्र कर सुरक्षित साधन है। संस्थाएँ भी अपने धन को सरकारी ऋण–पत्रों में लगा सकती है। चूँकि अर्द्धविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, इसलिए सार्वजनिक ऋणों का क्षेत्र अत्यधिक सीमित होता है, परंतु इसका यह आशय नहीं है कि सार्वजनिक ऋण–पत्रों को क्रय करने हेतु देश में किसी प्रकार की बचत नहीं होती। इन देशों में लघु बचतों का विशेष महत्व होता है। वर्तमान समय में बहुत–सी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे, विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ आदि भी विकासशील देशों को पर्याप्त ऋण प्रदान करती हैं।

(य) घाटे का बजट (Deficit Budget) – घाटे की वित्त व्यवस्था की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कि सरकार करों व जनता से लिए जाने वाले ऋणों व आय के अन्य साधनों द्वारा जितना प्राप्त करती है उससे अधिक व्यय करती है। सरकार को घाटे की वित्त व्यवस्था का उपभोग सतर्कता के साथ करना चाहिए। इस विधि का अत्यधिक उपयोग अर्थव्यवस्था में स्फीतिजनक स्थितियाँ उत्पन्न करके अर्थव्यवस्था को अस्त–व्यस्त कर सकता है।

(ii) **उत्पादन के स्वरूप में उत्पादन करके** (Change in the production structure) – सार्वजनिक क्षेत्र के लिए साधनों को गतिशील करने में राजकोषीय नीति बड़ी प्रेरक होती है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करके सरकार ऐसे उद्योगों का विस्तार कर सकती है जिन्हें वह राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझती है। इसके साथ ही लोक वित्त सम्बन्धी कार्यवाहियों का उद्देश्य व्यक्तिगत विनियोग को वांछित दिशाओं की ओर गतिशील करने के लिए भी किया जा सकता है।

(iii) **बेरोजगारी को दूर करना** (To remove the unemployment) – अल्प–विकसित देशों में बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी की समस्याएँ बहुत विकट होती हैं। पूर्ण विकसित देशों में प्रायः एक अल्पकालीन समस्या होती है जो व्यापार–चक्रों के प्रभाव से उत्पन्न होती है। परन्तु विकासशील देशों में बेरोजगारी एक सर्वव्यापी समस्या होती है,

जिसका समाधान एक दीर्घकालीन विकास नीति द्वारा ही हो सकता है। अतः देश में करारोपण, सार्वजनिक व्यय व ऋण सम्बन्धी नीतियों के द्वारा विनियोग में वृद्धि करके रोजगार के अवसरों का विस्तार किया जा सकता है।

सारांश (Summary)

- लोक वित्त का अर्थशास्त्र विशेष रूप से सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित है। इसमें हम उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो राज्य अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उठती हैं, जैसे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच साधनों का विभाजन किस प्रकार किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी व्यय के विभिन्न साध्यों की सन्तुष्टि के लिए साधनों का आबंटन कैसे किया जाता है।

- सन् 1930 की गंभीर आर्थिक मन्दी (Economic depression) तथा कीन्स द्वारा रोजगार के सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन जो अबन्ध नीति के लिए मौत की घंटी ही बन गई। कीन्स ने बताया कि राज्य को राजकोषीय क्रियाओं के द्वारा रोजगार में वृद्धि करना और उसे उच्च स्तर पर बनाये रखना सम्भव है।

- अल्पविकसित देशों में भी, सरकार का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हो तथा राष्ट्रीय उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) हो, ओर राजकोषीय नीति (fiscal policy) इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महत्वर्पूा अस्त्र बन सकती है।

- लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय–सामग्री स्थिर नहीं है, क्योंकि राज्य की धारणा (concept), राज्य के कार्यों तथा अर्थशास्त्र की समस्याओं में परिवर्तन होने के साथ ही साथ इसका भी निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।

- लोक वित्त तथा निजी वित्त के बीच कई मामलों में मौलिक अंतर पाया जाता है जैसे कि उद्देश्य, वित्त प्राप्ति के तरीके तथा साधनों की मात्रा आदि के मामलों में।

- लोक वित्त की प्राचीन विचारधारा संस्थापक आर्थिक सिद्धांत (Classical Economic Theory) पर आधारित थी परंतु बाद में इस सिद्धांत में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। अन्त में आधुनिक आर्थिक सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ जिसे 'कीन्स का पूर्ण रोजगार का सामान्य सिद्धांत (Keyne's General Theory of Full Employment) कहा जाता है। इस सिद्धांत के कारण लोक वित्त की प्राचीन धारणा मं भी परिवर्तन हो गया है।

- कीन्स का 'रोजगार सिद्धान्त' इस सामान्य धारणा पर टिका है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यय दूसरे व्यक्ति की आय है।

- रोजगार का विचार उस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें बेकार व्यक्तियों की संख्या की तुलना में काम करने के लिए अधिक खाली स्थान प्राप्त होते हैं।

कुछ प्रश्न (Some Questions)

- लोक वित्त से आपका क्या अभिप्राय है?
- आधुनिक राज्य के कार्यों का संक्षेप में वर्णन करें।
- कराधान से आप क्या समझते हैं?
- लोक वित्त एवं निजी वित्त में पाए जाने वाली समानताओं को लिखें।

कुछ पुस्तकें (Some Books)

- लोक वित्त–न्यू रॉयल बुक कंपनी।
- लोक वित्त–एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0।
- भारतीय लोक वित्त प्रशासन–मंजूषा शर्मा, ओ. पी. बोहरा, रवि बुक्स।
- मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस–सुंदरम वी, अल्फा पब्लिकेशन्स, 2009
- मनी बैंकिंग इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस–नी. थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004
- पब्लिक फाइनेंस–सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2021
- पब्लिक फाइनेंस–नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011

अध्याय–3

लोक आयः वर्गीकरण तथा स्त्रोत

(Public Revenue: Classification and Sourses)

Sem-1

Unit-1

रूपरेखाः

- प्रस्तावना
- अर्थ तथा महत्त्व
- लोक आय के स्त्रोत
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें

प्रस्तावना

आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्व अर्थशासत्र में है, वही महत्त्व लोक आगम का लोक वित्त में है। वर्तमान समय में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय की राशि भी बढ़ती जा रही है। लोक आगम के स्रोत में कर वे अनिवार्य भुगतान हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा।

अर्थ तथा महत्त्व (Meaning and Significance)

जिस प्रकार एक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु आय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सरकार को अपने कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए आय की आवश्यकता होती है। सरकार को प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की आय को सार्वजनिक आय कहा जाता है। लोक वित्त के अध्ययन में सरकारी आय को वही स्थान प्राप्त होता है जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में उत्पादन **(Production)** को प्राप्त होता है। जिस प्रकार उपभोग **(consumption)** की पूर्ति के लिए उत्पादन आवश्यक होता है, उसी प्रकार सरकारी खर्च की पूर्ति के लिए सरकारी आय आवश्यक होती है।

सरकार को विभिन्न स्रोतों से जो आय प्राप्त होती है उसे सरकारी आय या सरकारी राजस्व कहा जाता है, किंतु डाल्टन ने सरकारी आय का व्यापक तथा संकुचित, दोनों ही अर्थों में प्रयोग किया है। उसने व्यापक अर्थ में इसे सरकारी प्राप्तियों **(Public receipts)** का नाम दिया है और संकुचित अर्थ में सरकारी आय या सरकारी राजस्व **(public revenue)** की संज्ञा दी है। सरकारी राजस्व में करों **(taxes)** सरकारी उद्यमों द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों, फीस तथा जुर्माने जैसी प्रशासनिक क्रियाओं की आय तथा उपहारों व अनुदानों को सम्मिलित किया जाता है, किंतु सरकारी प्राप्तियों में सरकार की उन सभी आमदनियों को सम्मिलित किया जाता है जो कि किसी भी निश्चित अवधि में उसे प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, सरकारी प्राप्तियाँ **(public receipts)=**

सरकारी राजस्व **(public revenue)**+अन्य सभी स्रोतों की आय जैसे कि व्यक्तियों, बैंकों या केन्द्रीय बैंक से लिया जाने वाला उधार तथा नई पत्र–मुद्रा जारी करना।

आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्व लोक आगम का लोक वित्त में है। वर्तमान समय में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय की राशि भी बढ़ती जा रही है। इस बढ़ते हुए व्यय की पूर्ति हेतु सार्वजनिक आय में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। आधुनिक युग में आय संबंधी साधनों का उद्देश्य केवलन आय प्राप्त करना ही नहीं है, अपितु एक प्रभावकारी राजकोषीय यंत्र के रूप में उत्पादन, रोजगार, विनियोग एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं को भी प्रभावित करना हैं प्रत्येक अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण नीति के साथ–साथ सार्वजनिक आय के संबंध में भी निश्चित नीति का निर्धारण करके वांछित उद्देश्यों की पूर्ति करने हेतु एक शक्तिशाली साधन की व्यवस्था की जा सकती है। इसलिए वर्तमान युग में सार्वजनिक आय प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए, चाहे विकसित हो या अविकसित, महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। सरकार की लोकप्रियता एवं सफलता सम्पूर्ण सार्वजनिक आय पर निर्भर करती हैं इस प्रकार निजी व्यक्तियों तथा सरकार, दोनों के लिए सार्वजनिक आय के तरीकों तथा उसकी प्रकृति के अध्ययन का व्यवहारिक महत्त्व अधिक हो गया है।

लोक आय के स्रोत (Sources of public Revenue)

अब हम सरकारी आय के विभिनन स्रोतों या रूपों का अध्ययन करेंगे। ये स्रोत निम्नलिखित हैं–

1. कर **(Taxes)**
2. व्यावसायिक आय **(Commercial Revenues)**
3. प्रशासनिक आय **(Administrative Revenues)**
4. उपहार तथा अनुदान **(Gifts and Grants)**

अब हम इन सभी स्रोतों का पृथक–पृथक अध्ययन करेंगे।

कर **(Taxes)**

कर वे अनिवार्य भुगतान **(compulsory payments)** हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा। बेस्टेबिल के अनुसार, ''कर व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के पास विद्यमान धन का वह अनिवार्य अंशदान **(compulsory contribution)** है जो कि सरकारी कार्यों को सेवा के बदले में दिया जाता है।'' प्रो0 सैलिग्मैन **(Seligmen)** का कहना है कि, ''कर व्यक्ति द्वारा सरकार को दिये जाने वाले उस अनिवार्य अंशदान को कहत हैं जो सबके सामान्य हित के लिए किये जाने वाले खर्चों के भुगतान में अदा किया जाता है और उसके बदले में कोई विशेष लाभ नहीं दिया जाता।'' टॉजिग **(Taussig)** के अनुसार, ''सरकारी द्वारा ली जाने वाली अन्य धनराशियों के मुकाबले कर के संबंध में विशेष बात यह है कि इसमें करदाता व सरकारी सत्ता के बीच प्रत्यक्ष यप से लेने और देने वाली बात **(quid pro quo)** नहीं पाई जाती है।''

कर की विशेषता या लक्षण (Characteristics of a Tax)

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर में कुछ विशेषतायें पाई जाती हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. **अनिवार्य भुगतान (compulsory contibution)** : कर नागरिक द्वारा अविा निवास तथा सम्पत्ति आदि के कारण से देश की सीमा में रहने वाली प्रजा द्वारा राज्य को दिया जाने वाला अंशदान है और यह अंशदान सामान्य उपयोग **(common use)** के लिए ही दिया जाता हैं चूँकि यह एक अनिवार्य अंशदान है, अतः कोई

भी व्यक्ति कर की अदायगी से इनकार नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि चूँकि उसे राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ सेवाओं का लाभ नहीं मिल रहा है अथवा चूँकि उसे वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं है, अतः वह कर देने को बाध्य नहीं है। अतः कर उस प्रत्येक व्यक्ति को अदा करना पड़ता है जिस पर कि राज्य द्वारा कर लगाया जाता है भले ही वह वयस्क **(Adult)** हो या अवयस्क **(minor)** और नागरिक हो या विदेशी। यही नहीं, यदि कोई व्यक्ति कर देने से इनकार करे तो उसे दण्ड दिया जाता है। परंतु इसके बावजूद कर की कुछ सीमाएँ हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी विशेष पदार्थ पर कर लगाया जाता है तो उसे पदार्थ का उपयोग न करके वह कर से बच सकता है। मान लीजिये कि शराब पर कर लगाया गया है तो सरकार इस कर को अदा करने के लिए किसी व्यक्ति को केवल तभी बाध्य कर सकती है। जबकि वह शराब का उपयोग करे। परंतु यदि वह शराब नहीं पीता है, तो उसे शराब पर लगे कर को अदा करने के लिए भी बाध्य नहीं किया जा सकता। इन सीमाओं के अतिरिक्त कर एक अनिवार्य भुगतान ही है और इसकी यही विशेषता इसको अन्य किसी की सरकारी आय से पृथक् करती है।

2. **व्यक्तिगत दायित्व (Personal Obligation) :** कर करदाता पर व्यक्तिगत दायित्व (personal obligation) डालता है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति पर कर लगा है तो उसका कर्त्तव्य या दायित्व है कि उसे अदा करे और किसी भी स्थिति में उससे बचने की न सोचे। उदाहरण के लिए, मान लीजिये लोगों की आमदनियों पर कर लगाया गया है, तो चूँकि लोगों की आय के अनेक स्रोत हो सकते हैं, अतः संभव है, सरकार को लोगों की आय के सभी स्रोतों का पता न हो। इस स्थिति में, यह करदाता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी समस्त आय को घोषित करे और कर अदा करते समय अपीन कुल आय को ही दृष्टिगत रखे।

3. **कर समाज के हित के लिए लगाया जाता है** (The Tax is imposed for the General and Common Benefit) — करदाताओं से करों के रूप में जो अंशदान प्राप्त होता है, वह हो सकता है कि केवल उनके ही लाभ के लिए खर्च न किया जाए। बल्कि सर्व–सामान्य के हित में खर्च किया जाए। हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ न हो विशेष रूप से ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करने में जिस पर कि भारी मात्रा में खर्च होता है, जैसे कि अस्पताल का निर्माण। इस स्थिति में राज्य सभी लोगों के लाभ के लिए ऐसी सेवाओं की व्यवस्था करता है अतः इस सामान्य बोझ को उठाने के लिए ऐसे सभी लोगों पर कर लगाया दिये जाते हैं जो कि उन्हे अदा करने में समर्थ होते हैं।

4. **कर और राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में कोई संबंध नहीं (No relation between Taxation and State Services)** — कर की अदायगी, राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए की जाने वाली किसी विशेष सेवा के भुगतान के लिए नहीं की जाती और न कर इसलिए अदा किया जाता है कि करदाता को राज्य द्वारा कोई विशिष्ट लभ प्रदान किया गया है। इस प्रकार कर इसलिए नहीं दिये जाते क्योंकि कर देने वाले व्यक्ति को राज्य से कोई लाभ प्राप्त हुआ है अथवा राज्य ने उसके लिए कोई सेवा की है। परंतु कर की इस विशेषता की भी कुछ सीमायें हैं। उदाहरण के लिए भूमि कर (Land Tax) केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा किया जाता है जिनके पास भूमि होती है अथवा जो भूमि से लाभ उठाते हैं। इसी प्रकार, मनोरंजन कर (Entertainment tax) केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा दिया जाता है जो मनोरंजन का लाभ प्राप्त करते हैं। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए प्रो0 डि. मार्को (De Marco) ने कर की इस विशेषता की सीमाओं के संबंध में कहा कि आधुनिक राज्य में कराधान का कानून परस्पर विनिमय के संबंध (Exchange relationship) की मान्यता पर आधारित है, अर्थात् राज्य द्वारा सेवा की व्यवस्था की जाती है और उसके बदले में सरकार को कर अदा किया जाता है। अतः डि मार्को के अनुसार, ''कर प्रत्येक नागरिक द्वारा सरकार को दी जाने वाली

वह कीमत है जो कि वह उन सामान्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत के अपने उस हिस्से के बदले में अदा करता है जिसे वह उपयोग करता है।

परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि किसानों से भूमि कर के रूप में जो अंशदान प्राप्त किया जाता है, हो सकता है कि राज्य द्वारा उसका उपयोग केवल उन्हीं के लाभ के लिए न किया जाए, बल्कि संपूर्ण समाज के ही लाभ के लिए दिया जाए। इसी प्रकार, मनोरंजन का लाभ प्राप्त करने के बदले में लोगों से सरकार को जो अंशदान प्राप्त होता है, हो सकता है कि सरकार द्वारा वह केवल उन्हीं के लाभ के लिए प्रयोग में न लाकर सम्पूर्ण समुदाय के लाभ के ही प्रयोग में लाया जाए। इस प्रकार व्यक्ति द्वारा कर के रूप में अदा की जाने वाली धनराशि तथा सरकारी सेवा से उसे प्राप्त होने वाले लाभ के बीच कोई संबंध नहीं है। अतः कर एक अनिवार्य अंशदान है ओर यह अंशदान सर्व–सामान्य को प्रदान किये जाने वाले लाभ के लिए ही होती है तथा सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा तथा अदा किये जाने वाले कर के बीच परस्पर कोई संबंध नहीं होता।

कर के तत्त्व

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कर के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं –

1. अनिवार्य अंशदान (compulsory contribution) –कर एक अनिवार्य अंशदान है, यदि कर लगने की कानून द्वारा निर्धारित दशाएँ लागू होती हों।

    1. "The law of taxation in modern state is based on the assumption of an exchange relationship, that is the exchange of a payment of the state for the provision of public services by the state."
    2. "The tax is the pric which citizen pays to the state to cover his share of the cost the general public services which he will consume."

    2. केवल सरकार द्वारा कर लगाना (taxes are imposed by a government) –केवल सरकार द्वारा ही लगाये जाते हैं। यदि किसी मंदिर या अन्य संस्था के प्रबंधक किसी क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के लिए हर वर्ष एक विशिष्ट रकम देना अनिवार्य कर दें, तो इसे किसी भी स्थिति में कर नहीं कहा जा सकता।

    3. त्याग का समावेश (Involvement of Sacrifice) –कर के भुगतान में त्याग की भावना निहित होती है क्योंकि करदाता समाज के सामान्य हित में ही कर अदा करता है।

    4. समाज कल्याण (Social Welfare) –कर संपूर्ण समुदाय के कल्याण के उद्देश्य से लगाया जाता है, अर्थात् कर से प्राप्त होने वाली आय, एक ओर तो, समाज के विशेष वर्ग के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए खर्च कर दी जाती है और दूसरी ओर इस खर्च से आय की असमानताएँ दूर होती हैं।

    5. भुगतान के लिए लाभ शर्त नहीं (The benefit is not the condition for the payment) –लाभ प्राप्त होना कर की अदायगी की कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। कर इसलिए नहीं अदा किये जाते क्योंकि करदाता सरकारी खर्च से कोई लाभ प्राप्त करते हैं, अपितु इसलिए अदा किये जाते हैं क्योंकि वे अनिवार्य होते हैं। साथ ही करदाता को यदि कोई लाभ मिलता भी है तो यह जरूरी नहीं है कि वह अदा किये गए कर के अनुपात में ही हो।

6. सेवा लागत से कोई संबंध नहीं (No relation with the Cost of service) – सरकारी सेवा द्वारा व्यक्तियों को जो लाभ प्रदान किया जाता है, कर उस लाभ की लागत (cost) को वसूल करने के लिए नहीं लगाया जाता, अर्थात् कर का उन सेवा की लागत से कोई संबंध नहीं होता जो कि सरकार व्यक्ति को प्रदान करती है। उदाहरण के लिए यह हो सकता है कि एक गरीब व्यक्ति खर्च से लाभान्वित तो सबसे अधिक हो किंतु कराधान का प्रतिकूल प्रभाव उस पर सबसे ही किया जाता है।
7. आय में से भुगतान (The Payment from income) –कर आय पर भी लगाये जा सकते हैं और पूँजी पर भी। परंतु उनका भुगतान आय में से ही किया जाता है।
8. व्यक्तिगत कर अदायगी (Indivisual Payment) –कर व्यक्ति, सम्पत्ति या वसतु किसी पर भी लगाये जा सकते हैं, परन्तु उनकी अदायगी व्यक्तियों द्वारा ही की जाती है।
9. कानूनी वसूली (Legal Collection) कर एक कानूनी वसूलयाबी (Legal collection) है

व्यावसायिक आय (commercial Revenues)

व्यावसायिक आय वे आमदियाँ हैं जो कि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, उस आय को व्यावसायिक आय कहा जाता है जो कि सरकार द्वारा सरकारी उद्यमों (Public enterprises) की वस्तुओं व सेवाओं को बेचकर प्राप्त की जाती है। इस आय को कीमतों (prices) का नाम दिया जाता है और वह इसलिए क्योंकि वह सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं। व्यावसायिक आय में डाक व्यय की अदायगियाँ, चुंगी, सरकारी साख निगमें द्वारा उधार दिये गये धन का ब्याज, सरकारी भण्डारों की शराब के लिए अदा की जाने वाली कीमतें, सरकार द्वारा वितरित की जाने वाली बिजली की कीमतें, रेल–सेवा आदि की अदायगियाँ सम्मिलित की जाती हैं। कभी–कभी सरकार इस्पात तथा खनिज तेल जैसी वस्तुओं के उत्पादन से भी आय प्राप्त करती है, किंतु इसके बावजूद, संसार के अधिकांश देशों में व्यावसायिक उद्यमों से होने वाली बचतों या बेशियों (Surpluses) को आय का कोई महत्वपूर्ण स्रोत नहीं माना जाता।

कर तथा कीमत में अंतर (Difference between tax and price)

कर तथा कीमत में मुख्य अंतर –

1. अदायगी का अंतर – कर तो एक अनिवार्य अंशदान है जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है किंतु कीमत उन व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है, तो सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदते हैं।
2. लाभ का अंतर – कर इस बात की कोई गारंटी नहीं देता कि उस भुगतान के बदले में कोई लाभ (benefit) भी प्राप्त होगा कि नहीं, और यदि होगा तो उसकी मात्रा (amount) तथा प्रकृति (nature) क्या होगी, किन्तु कीमतें वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में की जाने वाली प्रत्यक्ष अदागियाँ हैं और उन अदायगियों (payments) की मात्रा खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर होती है। प्रो0 पी0 ई0 टेलर ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि ''व्यावसायिक आय को अन्य श्रेणियों की आय से पृथक् करने वाली इसकी विशेषताएँ हैंः अदायगी या भुगतान के बदले में वस्तु या सेवा की प्रत्यक्ष प्राप्ति (direct receipt) तथा दूसरे, भुगतान की धनराशि का मोटे तौर पर वस्तु या सेवा की लागत (या लाभ) के साथ समायोजन (adjustment)''

यहाँ उल्लेखनीय है कि सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत और औसत या सीमांत उत्पादन लागत के बीच

दा ही कोई साम्य या समानता की स्थिति बनी रहती हो, ऐसी बात नहीं है। यह हो सकता है कि सरकारी उद्यमों द्वारा अपनाई जाने वाली सामान्य सामाजिक नीति (general social policy) और व्यावसायिक नीति (business policy) के साथ टकराव उत्पन्न हो जाए, जैसी कि डाक व्यय की दरों अथवा सुरंग मार्ग के भाड़ों के बारे में होता है कि ये दरें और भाड़े कभी भी सेवा की लागत को पूरी नहीं करते। ऐसे उदाहरणों में, आमतौर पर यह वांछनीय माना जाता है कि सामाजिक कल्याण के लिए सरकारी सेवा काफी व्यापक रूप से उपलब्ध कराई जाये, अपेक्षाकृत उसके कि वस्तु की लागत तथा कीमत यदि बराबर होती तो उस स्थिति में उपलब्ध कराई जानी संभव होती। अन्य कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं कि जिनमें कुल वस्तुओं तथा सेवाओं के वितरण के लिए सरकारी एकाधिकारों (Government monopolies) की स्थापना की जाती है ओर इसलिए ताकि एकाधिकारी लाभ कमाये जा सकें। भारत में रेल सेवा तथा बिजली के वितरण की सेवाएँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। फ्राँसीसी तम्बाकू एकाधिकार (Rrench tobacco monopoly) भी इसी का उदाहरण है तथा सरकार द्वारा संचालित मद्यशालाएँ भी इसी श्रेणी में आती हैं। इन मामलों में यह हो सकता है कि इन एकाधिकारों की स्थापना में सरकार का एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना ही न हो, बल्कि अपने द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं के वितरण पर नियंत्रण रखना भी हो। जैसा कि टेलर (Taylor) ने कहा है ''यह हो सकता है कि इस क्षेत्र में नियंत्रण (control) के उद्देश्य से की जाने वाली एकाधिकारी कार्यवाही भी उतनी ही महत्वपूर्ण हो जितनी कि लाभ की संभावनाएँ।''

सरकार वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन तथा उनकी बिक्री के क्षेत्र में अनेक कारणों से प्रविष्ट हो सकती है। कुछ मामलों में, यह हो सकता है कि प्राइवेट साहसी ऐसे उद्यमों की स्थापना करने के इच्छुक ही न हों या तो इसलिए क्योंकि उनमें बहुत कम लाभ होने की आशा है अथवा इसलिए क्योंकि उनसे प्रतिफल या लाभों की प्राप्ति बहुत दीर्घकाल के बाद होने की आशा है, उदाहरण के लिए डाक–सेवा तथा नहरों व बिजली उत्पन्न करने वाले बांधों का निर्माण आदि। दूसरे कुछ आवश्यक सेवाएं सरकार द्वारा इसलिए भी हाथ में ली जा सकती हैं जिससे एकाधिकारी किस्म के प्राइवेट संगठनों से उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके, जैसे कि नगर परिवहन सेवा (city transport service) तथा जल–प्रदाय सेवा (water supply service)। तीसरे, कुछ अन्य मामलों में, यह माना जाता है कि अमुक सेवा प्राइवेट व्यक्तियों की तुलना में सरकार द्वारा अधिक अच्छी तथा सस्ती प्रदान की जा सकती है, जैसे कि बिजली का उत्पादन तथा वितरण। चौथे, कुछ ऐसे भी मामले हैं जिनमें सरकार उक्त उद्यमों (enterprises) को अपने हाथ में ले लेती है जो कि अर्थव्यवस्था (economy) को लिए मूलभूत महत्त्व के होते हैं। सरकार द्वारा ऐसे उद्यमों से संबंधित वस्तुओं का उत्पादन सम्पूर्ण देश के ही हित में माना जाता है। लोहा व इस्पात, भारी विद्युत पदार्थ, तेल तथा खनिज आदि ऐसे ही उद्यमों के उदाहरण हैं। यहाँ इस बात बात का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण होगा कि इन व्यावसायिक आमदनियों की प्रकृति मुख्यतः उन कीमतों के समान ही होती है जो कि वस्तुओं तथा सेवाओं के गैर–सरकारी उत्पादकों को दी जाती है।

प्रशासनिक आय (Administrative Revenues)

जिन प्राप्तियों (receipts) को प्रशासनिक आय की श्रेणी में रखा जाता है, वे हैं– शुल्क या फीस, लाइसेंस, जुर्माने, सम्पत्ति जब्त करने और उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर अधिकार करने आदि से होने वाली प्राप्तियाँ तथा विशेष कर–निर्धारण (Special assessments)। इन प्राप्तियों की एक विशेषता तो यह होती है कि व्यक्ति को न्यूनाधिक रूप से इस बात की छूट होती है कि वह इनका भुगतान करे या नहीं। दूसरे, ये प्राप्तियाँ व्यक्ति को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करती हैं या उस पर जुर्माना करती हैं किंतु इनकी स्थिति में, यह आवश्यक नहीं है कि भुगतान की गई धनराशि का या तो लाभ के मूल्य से अथवा उस लाभ को प्रदान करने की लागत से घनिष्ठ संबंध हो। प्रशासनिक आमदनियों की एक अन्य अनोखी विशेषता यह है कि ये सामान्यतः सरकार के प्रशासनिक कार्यों के गौण उत्पादन (by product) के रूप में प्राप्त होती हैं और यही कारण है कि इन्हें 'प्रशासनिक आय' का नाम दिया जाता है।

इन प्रशासनिक आमदनियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

(क) शुल्क या फीस (Fees): प्रो0 सेलिग्मैन ने फीस की परिभाषा इस प्रकार की है– ''शुल्क अथवा फीस उस धनराशि को कहते हैं जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रत्येक ऐसी आवर्ती सेवा (recirromg service) की लागत अदा करने के लिए दी जाती है, जो कि मुख्यतः जनता के हत के लिए होती है किंतु जो फीस देने वाले को ऐसी विशेष लाभ पहुँचाती है जिसको मापा जा सके।'' इस प्रकार फीस एक ऐसी अदायगी है जो कि उन प्रशासनिक सेवाओं की लागत को पूरा करने के लिए सरकार को दी जाती है जो संपूर्ण जनता के हित में सम्पन्न की जाती है किंतु जो व्यक्तियों को विशेष लाभ प्रदान करती है। अतः फीस केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से कोई विशेष लाभ प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई छात्र राजकीय विद्यालय में पढ़कर शिक्षा का लाभ प्राप्त करना चाहता है तो उसे उसके लिए फीस देनी होती है।

फीस तथा कीमत में अंतर (Differences between Fees and Price)

फीस तथा कीमत में कई मुख्य अंतर पाए जाते हैं –

1. कीमत ऐच्छिक, फीस अनिवार्य– कीमतें तो सदा ही ऐच्छिक अदायगियाँ (voluntary payments) होती हैं, किंतु फीस अनिवार्य अंशदान भी हो सकती हैं, यद्यपि दोनों का ही भुगतान विशेष सेवाओं के बदले में किया जाता है।
2. आदान–प्रदान का तत्व (qiod pro qou) –आदान–प्रदान का तत्व जो कि कर में पाया जाता है, फीस में भी विद्यमान रहता है किंतु कीमतों में इस तत्व का अभाव है।
3. व्यावसायिक क्रियाएँ– फीस व्यावसायिक सेवा के लिए किया जाने वाला भुगतान नहीं है, बल्कि सरकार की प्रशासनिक क्रियाओं के गौण उत्पादन है किंतु कीमतें सरकार द्वारा की जाने वाली व्यावसायिक क्रियाओं के लिए की जाने वाली अदायगियाँ हैं।

(ख) लाइसेन्स शुल्क (Licence Fees)

लाइसेन्स शुल्क की प्रकृति बहुत कुछ फीस या शुल्क से ही मिलती–जुलती है किंतु इसमें तथा फीस में कुछ अंर भी है। ''लाइसेंस शुल्क उस स्थिति में अदा किया जाता है जबकि सरकारी सत्ता से यह प्रार्थना की जाती है कि वह कोई अधिक स्पष्ट तथा निश्चित किस्म की सेवा प्रदान करने की बजाय एक अनुमति (permission) अथवा विशेषाधिकार (privilege) प्रदान कर दे।'' मोटर वाहनों का रजिस्ट्रेशन शुल्क, मोटरें चलाने के परमिट की अदायगी और बन्दूक या रिवाल्वर रखने का लाइसेंस शुल्क ऐसे ही शुक्ल के कुछ उदाहरण हैं। इन मामलों में किसी भी व्यक्ति को शुल्क अदा करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता, अपितु जो भी व्यक्ति बन्दूक या मोटर का उपयोग करना चाहता है तो उसके लिए उसे आवश्यक शुल्क का भुगतान करना होता है। शुल्क अदा करने पर शुल्कदाता को जो लाभ प्राप्त होता है वह बंदूक रखने या मोटर का उपयोग करने को कानूनी व व्यावहारिक सुविधा के रूप में होता है। ऐसे में शुल्क का उद्देश्य कभी–कभी यह भी होता है कि विभिन्न प्रकार की क्रियाओं एवं गतिविधियों का नियमन अथवा नियंत्रण किया जाए; उदाहरण के लिए कानून व व्यवस्था की स्थापना करने के उद्देश्य से जिम्मेदार व्यक्तियों के बन्दूकों व रिवाल्वरों के लाइसेंस दिये जाते हैं। इसी प्रकार शराब की बिक्री पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए शराब की दुकानें चलाने के लिए लाइसेंस दिये जाते हैं। जन–सुरक्षा के हित में, मोटर–चालकों से मोटर चलाने के लिए लाइसेंस प्राप्त के लिए प्राप्त करने के लिए कहा जाता है और ये लाइसेंस केवल तभी प्राप्त किये जाते हैं जबकि व्यक्ति किसी वाहन (vehicle) को चलाने की दृष्टि से ठीक (fit) होता है। अतः लाइसेंस शुल्क में नियमन या नियंत्रण का जो तत्व पाया जाता है वह इसे शुल्क तथा कर दोनों ही से पृथक् करता है।

(ग) विशेष कर–निर्धारण (Special Assessments)

प्रो0 सेलिग्मैन के शब्दों में, ''विशेष कर–निर्धारण या विशेष उगाही (special assessment) उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो प्रदान किये जाने वाले विशेष लाभों के अनुपात में वसूल किया जाता है और जिसका उद्देश्य लोकहित की दृष्टि से अधिकार में ली गई सम्पत्ति में विशेष सुधार करने की लागत अदा करना होता है।'' जब सरकार सड़क–निर्माण, नालियों की व्यवस्था तथा सड़कों व गलियों में प्रकाश की व्यवस्था जैसे सार्वजनिक सुधार के कुछ कार्य अपने हाथ में लेती है, तो ऐसे सुधारों से संपूर्ण जनता को तो सामान्य लाभ पहुँचता ही है, परंतु उन व्यक्तियों को विशिष्ट लाभ होता है जिनकी दुकान–मकान आदि सम्पत्ति उस सड़क के किनारे होती हैं। इन सुधारों के परिणामस्वरूप, इन सम्पत्तियों के मूल्यों अथवा किरायों में वृद्धि हो जाती है। अतः हो सकता है कि सरकार इस प्रकार किये गए खर्च का कुछ भाग वसूल करने के लिए उस क्षेत्र के लोगों पर कोई विशेष कर निर्धारित कर दे। ऐसा विशेष कर–निर्धारण सामान्यतः सम्पत्ति के मूल्य में होने वाली वृद्धि के अनुपात में ही किया जाता है और इस दृष्टि से यह भिन्न होता है।

विशेषताएँ (Characteristics) सैलिग्मैन के अनुसार विशेष कर–निर्धारण में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं –

(1) इसमें विशेष उद्देश्य (special purpose) का तत्व पाया जाता है।

(2) इसमें सरकारी सेवा से मिलने वाले विशिष्ट लाभ को मापा जा सकता है।

(3) विशेष कर–निर्धारण (special assessment) आरोही (progressive) नहीं होते, बल्कि प्राप्त होने वाले लाभ (benefit) के अनुसार अपुनाती (proportional) होते हैं।

(4) ये विशिष्ट स्थानीय सुधारों के लिए लगाये जाते हैं।

निर्धारण की विशेष कर–निर्धारण से तुलना
(Comparision of Special Assessment with a Tax)

समानताएँ (Similarities) –इसमें निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं –

(1) उद्देश्य (Object) दोनों में ही सार्वजनिक उद्देश्य का तत्व (element of public purpose) पाया जाता है, क्योंकि सरकारी आय चाहे कर (Tax) के रूप में प्राप्त हुई हो अथवा विशेष कर–निर्धारण (special assessment) के रूप में, सम्पूर्ण रूप में समाज के और साथ–साथ विशिष्ट व्यक्ति के हित के लिए खर्च की जाती है।

(2) अनिवार्य अंशदान (Compulsory contribution) –कर की तरह विशेष कर–निर्धारण भी एक अनिवार्य अंशदान है। अतः इन दोनों में ही अनिवार्यता का तत्व भी पाया जाता है।

असमानताएँ (Dis-similarities)– कर तथा विशेष कर–निर्धारण के बीच तीन असमानताएँ (Dis-similarities) भी पाई जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं –

(1) उपयोग की विभिन्नता (Dis-similarities of Assessment) करों के रूप में प्राप्त होने वाली आय सरकार के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति में लगाई जाती है, किंतु विशेष कर–निर्धारण या विशेष उगाही के रूप में समाप्त होने वाली आय विशिष्ट स्थानीय सुधारों (special local improvement) में लगाई जाती है।

(2) निर्धारण का आधार (Basis of Assessment)–कर को लगाने के आधार अनेक हो सकते हैं, जैसे कि आय, व्यय; सम्पत्ति का मूल्य आदि; किंतु विशेष कर–निर्धारण या विशेष उगाही को लगाने का आधार

केवल एक होता है, वह है लाभ (benefit)। अन्य शब्दों में, विशेष कर–निर्धारण प्राप्त होने वाले लाभों के अनुपात में लगाया जाता है।

(3) उद्देश्य की भिन्नताएँ (Dis-similarities of Object) – विशेष कर–निर्धारण अधिकांशतया कुछ पूँजी विकास योजनाओं के लिए धन प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाए जाते हैं, किंतु कर (taxes) पूँजीगत विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए भी लगाये जाते हैं और सरकार के चालू व्यय की पूर्ति के लए भी।

(4) अदायगी की भिन्नताएँ (Dis-similarities of payment)– विशेष कर–निर्धारण कीमतों से भी इस दृष्टि से भिन्न है क्योंकि कीमतों की अदायगी ऐच्छिक होती है जबकि विशेष कर–निर्धारण की अदायगी अनिवार्य होती है।

(घ) अर्थदण्ड तथा जुर्माने (Fines and penalties) अर्थदण्ड तथा जुर्माने सरकारी आय के महत्वपूर्ण स्रोत नहीं हैं। अर्थदण्ड (Fine) का संबंध दण्ड (punishment) से होता है और जुर्माना (penalty) कानून के उल्लंघन पर किया जाता है। इन दोनों का ही उद्देश्य किसी अनुचित कार्य के लिए दण्ड देना तथा अपराधों को रोकना होता है।

(ङ) जमानत या सम्पत्ति आदि जब्त करना (Forfeitures) जमानतों (bails) अथवा सम्पत्ति को जब्त करने से आशय उन जुर्मानों से होता है जोकि अदालतों द्वारा लोगों पर इसलिए किये जाते हैं कि वे निश्चित तिथि को अदालत में उपस्थित होने में असफल रहे अथवा उन्होंने पहले किये गये ठेकों अथवा करारों (contracts) को पूरा नहीं किया। स्पष्ट है कि सरकार की आय के इस स्रोत का भी महत्व बहुत ही कम है।

(च) मृतक की सम्पत्ति पर कब्जा (Escheat) सरकारी की आय का यह स्रोत ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति पर सरकार के दावे का प्रतीक है जो बिना कानून उत्तराधिकारी नियत किये अथवा अपनी सम्पत्ति को देने के बारे में बिना वसीयत किये ही मर गया हो। इस स्थिति में उस व्यक्ति की बैंक में जमा धनराशि तथा अन्य सभी सम्पत्तियाँ सरकार के अधिकार में चली जाती हैं। सम्पत्ति पर कब्जे के इस अधिकार (Escheat) के अंतर्गत, सरकार भंग की गई शिक्षा संस्थाओं अथवा अन्य न्यासों (trusts) की बेवारसी सम्पत्ति (unclaimed property) पर भी अपना कब्जा कर सकती है। सरकारी आय का यह भी कोई महत्वपूर्ण स्रोत नहीं है।

उपहार तथा अनुदान (Gifts and Grants)

भेंट या उपहार (gifts) वे ऐच्छिक अंशदान हैं जो प्राइवेट व्यक्ति अथवा गैर–सरकारी दाताओं (donors) द्वारा ऐसे विशिष्ट कार्यों के लिए सरकार को दिये जाते हैं जैसे कि युद्धकाल या संकटकाल के समय सहायता–कोष (relief fund) अथवा प्रतिरक्षा कोष (defennce fund)। ऐसे अंशदान देशभक्त, दानशील एवं जनसेवी व्यक्तियों द्वारा युद्ध अकाल तथा ऐसे ही अन्य संकटकालीन अवसरों पर दिये जाते हैं।

आधुनिक राजस्व व्यवस्था में, केवल युद्धकाल या संकटकाल को छोड़कर इन उपहारों को कोई उल्लेखनीय स्थान प्राप्त नहीं है। प्राचीनकाल की राजकीय व्यवस्था में अवश्य इनको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था जबकि राजा, नवाब तथा जागीरदार आदि शासक अपनी प्रजा से 'नजराने' लिया करते थे। आजकल उपहार (gifts) की कुल मात्रा (अनुदानों की नहीं) इतनी थोड़ी होती है कि राजस्व–व्यवस्था में उसका स्थान नाममात्र का ही होता है। उपहारों तथा अनुदानों के रूप में होने वाली प्राप्तियों की विशेषता यही है कि ये ऐच्छिक प्रकृति की होती हैं और इनको देने वाला व्यक्ति बदले में किसी भी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं करता। अनुदानों (grants) की स्थिति में, दाता सरकार (donor government) अन्य किसी स्तर पर सरकारी कार्य को सम्पन्न करने के लिए वित्तीय सहायता देती है। संघीय शासन वाले देशों में, केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को और राज्य सरकारें स्थानीय सरकारों (local

government) को साधारणतः इसलिए सहायक अनुदान (grants-in-aid) देती है ताकि उन्हें इस योग्य बनाया जा सके कि वे अपने कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें अथवा एकरूपता (uniformity) अथवा कार्यकुशलता की दृष्टि से कुछ ऐसे विशिष्ट कार्यों को अपने हाथों में ले सकें जैसे कि राजमार्गों का निर्माण तथा रख–रखाव (maintenance)। अतः ये अनुदान शर्तरहित (unconditional) भी हो सकते हैं अथवा केवल कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भी दिये जा सकते हैं।

कभी–कभी एक देश की सरकार अन्य देश से अनुदान प्राप्त करती हैं जिसे आमतौर पर विदेशी सहायता (foreign aid) कहा जाता है। विदेशी सहायता कई मदों (plan heads) के बीच परस्पर सह–संबंध बना रहे। तथापि, उचित यह होगा कि इस वर्गीकरण को छेड़ा न जाये, अन्यथा संसद के प्रति जवाबदेही तथा समाज के प्रति उत्तरदायिता के जो ठोस लाभ इससे अब प्रापत होते हैं, वे समाप्त हो जायेंगे। परंतु सरकार को यह अवश्य करना चाहिये कि बजट को खर्चों की योजना की मदों के अनुसार वितरित करने की एक ऐसी पृथक् व्यवस्था की जाए जिससे कि निष्पत्ति बजट के निर्माण का उद्देश्य पूरा हो सके।

सारांश (conclusion)

- सरकार की लोप्रियता एवं सफलता सम्पूर्ण सार्वजनिक आय पर निर्भर करती है। इस प्रकार निजी व्यक्तियों तथा सरकार, दोनों के लिए सार्वजनिक आय के तरीकों तथा उसकी प्रकृति के अध्ययन का व्यावहारिक महत्त्व अधिक हो गया है।

- कर वे अनिवार्य भुगतान (compulsory payments) हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा। बेस्टेबिल के अनुसार, ''कर व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के पास विद्यमान धन का वह अनिवार्य अंशदान (compulsory contribution) है जो कि सरकारी कार्यों को सेवा के बदले में दिया जाता है।''

- कर नागरिक द्वारा अथवा निवास तथा सम्पत्ति आदि के कारण से देश की सीमा में रहने वाली प्रजा द्वारा राज्य को दिया जाने वाला अंशदान है और यह अंशदान सामान्य उपयोग (common use) के लिए ही दिया जाता है। चूँकि यह एक अनिवार्य अंशदान है, अतः कोई भी व्यक्ति कर की अदायगी से इन्कार नहीं कर सकता।

- कर की अदायगी, राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए की जाने वाली किसी विशेष सेवा के भुगतान के लिए नहीं की जाती और न कर इसलिए अदा किया जाता है कि करदाता को राज्य द्वारा कोई विशष्टि लाभ प्रदान किया गया है।

- कर प्रत्येक नागरिक द्वारा सरकार को दी जाने वाली वह कीमत है जो कि वह उन सामान्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत के अपने उस हिस्से के बदले में अदा करता है जिसे वह उपयोग करता है।

- व्यावसायिक आय वे आमदनियाँ हैं जो कि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं।

- कर तो एक अनिवार्य अंशदान है जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है किंतु कीमत उन व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है, जो सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, तथा सेवाएँ खरीदते हैं।

- कर इस बात की कोई गारंटी नहीं देता कि उस भुगतान के बदले में कोई लाभ (benefit) भी प्राप्त होगा

कि नहीं और यदि होगा तो उसकी मात्रा (amount) तथा प्रकृति (nature) क्या होगी किंतु कीमतें वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में की जाने वाली प्रत्यक्ष अदायगियाँ हैं और उन अदायगियों (paments) की मात्रा खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर होती है।

- जिन प्राप्तियों (receipts) को प्रशासनिक आय की रेणी में रखा जाता है, वे हैं–शुल्क या फीस, लाइसेंस, जुर्माने, सम्पत्ति जब्त करने और उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर अधिकार करने आदि से होने वाली प्राप्तियाँ तथा विशेष कर–निर्धारण (special assessments)।
- विशेष कर–निर्धारण या विशेष उगाही (special assessment) उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो प्रदान किये जाने वाले विशेष लाभों के अनुपात में वसूल किया जाता है और जिसका उद्देश्य लोकहित की दृष्टि से अधिकार में ली गई सम्पत्ति में विशेष सुधार करने की लागत अदा करना होता है।
- उपहारों तथा अनुदानों के रूप में होने वाली प्राप्तियों की विशेषता यही है कि ये ऐच्छिक प्रकृति की होती हैं और इनको देने वाला व्यक्ति बदले में किसी भी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं करता।

कुछ प्रश्न (Some questions)

1. सरकारी प्राप्तियों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?
2. लोक आगम के विभिन्न स्रोतों का संक्षेप में वर्णन करें?
3. कर की विशेषताओं का उल्लेख करें।
4. प्रशासनिक आय से आप क्या समझते हैं?
5. फीस तथा कीमत में क्या अंतर है?

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- लोक वित्त, न्यू रायल बुक कम्पनी
- मजूषा शर्मा, ओ0 पी0 बोहरा, भारतीय लोक वित्त प्रशासन, रवि बुक्स।
- जी0 थाई सोम शेखर, मनी बैंकिंग : इन्टर नेशनल ट्रेड एवं पलब्कि फाईनेन्स, अनमोल, 2004
- नन्द किशोर, पब्लिक फाइनेन्स ए0 वी0 डी0 पब्लिकेशन, 2011

कुछ उपयोगी संदर्भ

- एच0 डी0 महरोत्रा और वी0 पी0 अग्रवाल, माल और सेवा कर, आगर : साहित्य, 2018
- राकेश कुमार, वस्तु एवं सेवा कर मार्गदर्शिका, डॉयमंड, 2019
- सुधीर हालाखंडी, वस्तु एवं सेवा कर, वाल्यूम–II, 2017

कुछ प्रश्न

- वस्तु एवं सेवा कर की कार्य प्रणाली का वर्णन करो।
- वस्तु एवं सेवा कर के लिए पंजीकरण प्रक्रिया बताएं। इसका क्या महत्त्व है?

सार्वजनिक व्यय : वर्गीकरण, सार्वजनिक तथा निजी व्यय में समानताएँ तथा असमानताएँ (Public Expenditure :

Clarification, similarities and Dissimilarities between Public and private expenditure)

रूपरेखा :

- सार्वजनिक व्ययः अर्थ तथा परिभाषा
- सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण
- सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय में समानताएँ तथा असमानताएँ
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

लोक व्यय : वर्गीकरण, लोक व्यय तथा निजी व्यय में अंतर

(Clarification, difference between public and private expenditure)

रूपरेखा

प्रस्तावना (Introduction)

- लोक व्यय में वृद्धि के कारण (Reasons for the Growth of public expenditure)
- लोक व्यय तथा आर्थिक जीवन (public expenditure and economic life)
- सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत (Principles of Public Expenditure)
- सारांश (Summary)
- अभ्यास–प्रशन (Some Question)
- सन्दर्भ पुस्तकें (Some Books)

प्रस्तावना (Introduction)

लोक व्यय उस व्यय को कहते हैं, जो लोक सत्ताओं–अर्थात् केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों के द्वारा या तो नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए किया जाता है अथवा उनके आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण में वृद्धि करने के लिए। आजकल सरकारी व्यय की मात्रा, संसार के प्रायः सभी देशों में निरंतर बढ़ रही है। इसका कारण यही है कि विभिन्न क्षेत्रों तथा मोर्चों पर सरकार तथा अन्य लोक निकायों (Public bodies) के कार्यों का निरंतर विस्तार हो रहा है। 19वीं शताब्दी में तो सरकारी व्यय के सिद्धांत को अधिक आवश्यक नहीं माना जाता था क्योंकि उन दिनों सरकार के कार्यों का क्षेत्र बड़ा सीमित था, किंतु 20वीं शताब्दी में, शिक्षा तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे सामाजिक मामलों में तथा वाणिज्यिक व औद्योगिक मामलों में जैसे–रेलवे, सिंचाई, बिजली तथा ऐसी ही अन्य प्रयोजनाओं के क्षेत्र में राज्य के कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, अतः उनके कारण सरकारी व्यय में भारी वृद्धि हुई है। सरकारी व्यय की प्रकृति तथा मात्रा के कारण और इस कारण कि यह अनेक प्रकार से देश के आर्थिक जीवन को प्रभावित कर सकता है, इसका महत्व काफी बढ़ गया है। उदारिण के लिए, सरकारी व्यय उत्पादन तथा वितरण के स्तर को और आर्थिक क्रियाओं के सामान्य स्तर को प्रभावित कर सकता है।

प्राचीन विचारधारा (Classical Views)

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय पर बहुत कम ध्यान दिया था। तत्कालीन राज्य का कार्यक्षेत्र सीमित होने के कारण उन्होंने सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत को आवश्यक नहीं समझा। शास्त्रीय या प्राचीन अर्थशास्त्री व्यक्तिगत आर्थिक स्वतंत्रता पर जोर देते थे। वे नहीं चाहते थे कि राज्य अर्थव्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप करे। यही वह कारण है, जिससे शास्त्रीय अर्थशास्त्री राज्य के कार्यक्षेत्र को सीमित रखना चाहते थे। **जे. बी. से. (J.B.Say)** के विचारानुसार, ''वित्त की सारी योजनाओं में सर्वोत्तम वह है, जिसमें कम खर्च किया जाये।'' एडम स्मिथ का मत था कि राज्य के कार्य न्याय, प्रतिरक्षा और कुछ सार्वजनिक सेवाओं के प्रबंध तक ही सीमित रहने चाहिए। एक अमेरिकन आलोचक के मतानुसार, ''पुराने अंग्रेज लेखकों को व्यय के सिद्धांत की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि सरकार के संबंध में उनका जो सिद्धांत था, उसका तात्पर्य था सरकारी कार्यों की एक निश्चित सीमा।''

सर पारनेल के शब्दों में– ''सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने तथा विदेशी आक्रमणों में रक्षा के लिए अति आवश्यक व्यय से अधिक व्यय का प्रत्येक भाग अपव्यय है तथा जनता पर अन्यायपूर्ण तथा अत्याचारपूर्ण भार है। इस प्रकार प्राचीन अर्थशास्त्री राज्य के कार्यों को सीमित रखना चाहते थे, क्योंकि वे सरकारी कार्यों को प्रायः अनुत्पालक तथा समाज को कोई विशेष लाभ न देने वाले मानते थे।

आधुनिक विधारधारा (Modern Views)

आजकल प्राचीन अर्थशास्त्रियों की उपर्युक्त विचारधारा को सही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वर्तमान युग के राज्य प्राचीन युग के राज्यों की भांति पुलिस राज्य न होकर, कल्याणकारी राज्य हैं। कल्याणकारी राज्य को जनता का अधिक कल्याण–कार्य करना पड़ता है, जिसमें सरकार को सार्वजनिक कल्याण और आर्थिक विकास के लिए अनेक उद्देश्यों को पूरा करने हेतु भारी मात्रा में व्यय करना पड़ता है। यही कारण है कि वर्तमान राज्यों के कार्यों में पर्याप्त वृद्धि हो गई है। आजकल सार्वजनिक व्यय प्रायः निम्नलिखित कार्यों के लिए किया जाता है–

(अ) सुरक्षा के लिए

(आ) समाज के दलित वर्गों की रक्षा के लिए,

(इ) समाज के विकास के लिए,

(ई) सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना के लिए,

(उ) व्यापार–चक्रों के प्रभावों को कम करने के लिए,

(ऊ) प्राकृतिक प्रकोपों को दूर करने के लिए,

(ए) जनोपयोगी वस्तुओं के लिए,

(ऐ) प्रशासनिक सेवाओं के लिए

लोक व्यय में वृद्धि के कारण
(Reasons for the Growth of Public Expenditure)

1. राज्य की क्रियाओं में वृद्धि (Increase in the Activities of the State)– सरकारें उपभोक्ताओं को निःशुल्क अथवा लागत से कम मूल्य पर जो सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं, उनका क्षेत्र अब काफी बढ़ गया है। शिक्षा, जनता का स्वास्थ्य तथा जनता के लिए मनोरंजन की व्यवस्था इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। मकानों तथा चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था वे नये क्षेत्र हैं जिनमें सरकारें प्रविष्ट हो चुकी हैं इन सेवाओं की व्यवस्था सरकार इस सिद्धांत को दृष्टिगत

रखकर करती है कि लाभ प्राप्तकर्ता अपने धन से इन सेवाओं का जितना उपयोग कर सकते हैं, उनके मुकाबले यदि सरकार इन सेवाओं का अधिक उपभोग करा सके तो वह जनहित में ही होगा।

सरकारों ने रेलों तथा सड़कों जैसे सार्वनिक निर्माण के कार्यों पर किये जाने वाले खर्चों में इसलिए काफी वृद्धि की है, ताकि लोगों की कठिनाइयाँ कम की जा सकें और बेकार पड़े श्रम तथा साधनों का उपयोग किया जा सके। इस प्रकार का व्यय देश को मंदी की स्थिति से उबारने की दृष्टि से भी वांचछनीय माना जाता हैं इस संदर्भ में यह माना जा सकता है कि वर्तमान समय में राज्य की क्रियाओं में वृद्धि से संबंधत वैगनर का नियम (Wagner's law) सार्वलौकिक रूप से सही है। वैगनर का कहना था कि राज्य के कार्यों में व्यापक एवं गहन वृद्धि (extensive and intensive increase) की एक स्थायी प्रवृत्ति पाई जाती है। राज्य नये–नये कार्यों को निरंतर अपने हाथ में लेते जा रहे हैं और पुराने कार्यों को और अधिक बड़े पैमाने पर अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न कर रहे हैं।'' अतः इस बढ़ते हुए कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अधिकाधिक सरकारी व्यय को आश्रय लिया जा रहा है।

2. औद्योगिक विकास (Industrial Development) औद्योगिक क्रांति (industrial Revolution) से संसार के अधिकांश देशों के केवल औद्योगिक ढाँचे में ही आमूल परिवर्तन नहीं हुआ अपितु उनका राजनैतिक व सामाजिक रूप भी काफी बदल गया है। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् आविष्कारों की लंबी श्रृंखला के कारण जहाँ उत्पादन की विधियों में भारी परिवर्तन हुए, वहाँ इन परिवर्तनों में राजनैतिक व सामाजिक कारणों ने भी अपना योगदान किया। औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि के साथ ही साथ लोगों की आय तथा उनका जीवन–स्तर ऊँचा उठा, जनसंख्या के एक बड़े भाग को सहारा मिला और उनमें अपनी नई–नई आवश्यकताओं को संतुष्ट करने की क्षमता आई। इन सब परिवर्तनों के साथ ही, समस्याओं का जनम हुआ, जिसके फलस्वरूप श्रम–संबंधों (labour relations) उद्योग–धन्धों के नियमन, उपभोक्ताओं के संरक्षण, धन तथा आय के वितरण और आर्थिक असुरक्षा से संबंधित सरकार के कार्यों व खर्च में वृद्धि हुई।

3. सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि –वर्तमान काल में राज्यों ने सामान्यतया कल्याणकारी राज्यों का रूप धारण कर लिया है और समस्त देश में अपने श्रमिकों को किसी न किसी रूप में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। सरकारों की यह जिम्मेदारी है कि वे देखें कि उद्यमी श्रमिकों को वास्तविक मजदूरी दे रहे हैं या नहीं तथा उनके लिए पर्याप्त रूप से सामाजिक सुरक्षा प्रदान की गई है या नहीं। इस प्रकार वर्तमान सरकारें अपने नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा जैसे– औद्योगिक श्रमिकों के लिए वृद्धावस्था में पेन्शन, आश्रित लाभ, निःशुल्क शिक्षा, बीमारी में सहायता, दुर्घटना लाभ, चिकित्सा सुविधा आदि पर बड़ी मात्रा में व्यय करती हैं। इसके अलावा कई सरकारों ने गृ–निर्माण में सहायता तथा बेरोजगारी लाभ की योजनाएँ शुरू की हैं। आजकल सरकार अपने नागरिकों के लिए स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने के लिए काफी मात्रा में व्यय करती है। भारतवर्ष में भी सन् 1948 में राज्य अधिनियम के अंतर्गत कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।

4. उद्योग–धन्धों तथा व्यापार का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Industries and Trades) व्यापार तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण सरकार की ओर से किया जाने वाला एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा सरकार जनता के लिए न्यूनाधिक रूप से वाणिज्यिक आधार पर वस्तुएँ प्रदान करने की व्यवस्था करती है। सरकार ऐसे उत्तरदायित्व को अपने ऊपर कई कारणों से ले सकती है, जैसे एकाधिकारों (monopolies) अथवा अर्द्ध–एकाधिकारों के नियमन की कठिन समस्या के समाधान के लिए, उपभोक्ताओं को घटी कीमतों पर वस्तुएँ तथा सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए अथवा गैर–सरकारी आर्थिक गतिविधियों की सीमा निर्धारित करने के लिए। इससे धन तथा आय के वितरण और श्रम की दशाओं में भी सुधार की संभावना रहती है। परन्तु राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योगों की भाँति पूर्ति के भुगतान तथा उन उद्योगों की स्थापना व संचालन के लिए सरकार को भारी मात्रा में व्यय करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार निजी व्यवसाय तथा व्यापार को भी इसलिए अपने अधिकार में ले सकती है जिससे वह समस्याओं को हल

कर सके तथा राजकोष (Treasury) के लिए अधिक लाभ कमा सके।

5. **कृषि विकास** (Development of Agriculture) – किसी देश विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का कृषि विकास उसकी अर्थ–व्यवस्था के विकास की धुरी होता है। आर्थिक विकास के लिए कृषि तथा गैर–कृषि दोनों क्षेत्रों के विकास करने के लिए सुविधाएँ प्रदान करनी आवश्यक होती है क्योंकि दोनों क्षेत्र परस्पर निर्भर करते हैं। उदाहरणार्थ, कृषि आय में वृद्धि होने से औद्योगिक वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप औद्योगीकरण को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार कृषि तथा उद्योगों में परस्पर निर्भरता होती है। इस निर्भरता को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है–कृषि क्षेत्र का कच्चा माल उद्योगों में परस्पर निर्भरता होती है। इस निर्भरता को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है– कृषि क्षेत्र का कच्चा माल उद्योगों में आगतों (Inputs) के रूप में काम में लाया जाता है। इसी प्रकार उद्योगों का निर्गत (outputs) कृषि क्षेत्र में आगतों के रूप में प्रयोग होता है। इस प्रकार भारत जैसे देश में आर्थिक एवं सामाजिक विकास को द्रुतगति प्रदान करने के लिए कृषि ढाँचे को मजबूत करना जरूरी है। इसलिए विकासशील देश अपने कृषि विकास के लिए बड़ी मात्रा में व्यय कर रहे हैं। सरकार किसनों को कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करना, निर्यातों को अनुदान, कृषिगत वस्तुओं का निर्धारित मूल्य पर क्रय, तटकर सुविधा प्रदान करना इत्यादि सुविधाओं पर व्यय करती है। इसके अतिरिक्त सरकार कृषि अनुसंधान एवं कृषिगत साधनों के निर्माण पर काफी मात्रा में व्यय करती है।

6. **कीमतों को बढ़ने की प्रवृत्ति** (Riaing Trend of Prices) संसार के प्रत्येक देश में कीमतों में वृद्धि की जो प्रवृत्ति पाई जाती है, उसके कारण भी रकारी व्यय बढ़ता नजर आता है। मूल्य–स्तर में वृद्धि होने के साथ ही सरकारें इस बात के लिए बाध्य हो जाती हैं कि वे उन वस्तुओं व सेवाओं के लिए अधिक धन का भुगतान करें जिन्हें कि वे चाहती हैं और सरकारी कर्मचारियों के वेतन तथा महँगाई भत्ते में वृद्धि करें। यह स्थिति सरकारी व्यय का और विस्तार करती हैं, यद्यपिइ स विस्तार से यह आवश्यक नहीं है कि सरकारी क्रियाओं में भी वृद्धि हो। इस प्रकार सरकारी व्यय में जो वृद्धि होती है, वह जितनी वास्तविक होती है, उससे कुछ अधिक ही दिखाई देती है।

7. **प्रतिरक्षा की समस्या** (Problem of Defence) – इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि देश की प्रतिरक्षा की समस्या सरकारी खर्च की वृद्धि का एक प्रमुख कारण बन गई है। कोई देश अपनी प्रतिरक्षा के लिए सेनाओं को शक्तिशाली बनाना चाहता है तो दूसरे केवल आत्मरक्षा के लिए ही ऐसा पग उठाने को विवश हो जाते हैं। युद्ध संबंधी हथियारों के निर्माण तथा सेना के रख–रखाव पर भारी धनराशि व्यय करनी होती है। फिर, युद्ध लड़ने की विधियों में दिन–रात जो परिवर्तन होते रहते हैं उनके कारण भी सेना को नये–नये हथियारों की आवश्यकता होती है। इससे पुनः राज्य पर खर्च का भार बढ़ता है। प्रतिरक्षा व्यय में केवल सैनिकों तथा सैनिक सामग्री का व्यय ही सम्मिलित नहीं होता है बल्कि सैनिकों की पेन्शन तथा युद्ध हेतु लिए गये ऋण पर ब्याज भी शामिल होता है। युद्ध के विज्ञान और कला में इतनी अधिक प्रगति हुई है कि आज के शस्त्र कल पुराने तथा अप्रचलित हो जाते हैं जिससे युद्ध व्यवस्था बड़ी खर्चीली हो गयी है। काफी देश सुरक्षा पर अपनी राष्ट्रीय आय का बड़ी मात्रा में व्यय कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, पाकिस्तान अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग 15 प्रतिशत तथा भारत लगभग 5 प्रतिशत व्यय करते हैं। भारत में यह व्यय 1950–51 में केवल 164.13 करोड़ रू. था जो 1986–87 के बजट में 9728 करोड़ रुपया आँका गया है।

8. **नगरीकरण या शहरीकरण** (Urbanisation) इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जनसंख्या का बढ़ता हुआ शहरीकरण भी सरकारी खर्च की वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है। नगरों पर बढ़ती हुई लागत का नियम पूर्णतया लागू होता है। नगर का आकार बढ़ने के साथ ही साथ जल–पूर्ति, यातायात सेवा व उसका

नियन्त्रण, पुलिस संरक्षण, स्वास्थ्य तथा सफाई आदि सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च की प्रति व्यक्ति लागत भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त अस्पतालों, सड़कों, गलियों, रोशनी, खेल के मैदान तथा सामुदायिक हॉल आदि के निर्माण व रख–रखाव के कारण तथा जीवनपयोगी अनिवार्य पदार्थों के वितरण व नियंत्रण के कारण भी सरकारों पर खर्च का अतिरिक्त भार पड़ता है।

9. **सराकर के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन** (Change in Attitude Towards Government) सरकारी खर्च में कुछ वृद्धि इस कारण भी हुई है क्योंकि पिछले वर्षों में सरकार के प्रति सामान्य दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन हुआ है। एक शताब्दी पूर्व तो लोग सरकार के नाम से भी डरते थे और उसे निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शक्ति का प्रतीक समझते थे। किंतु आज इस संबंध में सर्वसामान्य दृष्टिकोण यह है कि सामान्य व्यक्ति के लिए अच्छी वस्तु तथा सभी व्यक्तियों के लिए अधिक सुविधापूर्ण जीवन तब तक उपलब्ध नहीं कराया जा सकता, जब तक कि काफी मात्रा में सरकार पर निर्भर न रहा जाए। सरकार के प्रति दृष्टिकोण में इस परिवर्तन के अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारणेां का उल्लेख नीचे किया जा रहा है –

(अ) तकनीकी परिवर्तन –तकनीकी परिवर्तनों के कारण भी परस्पर निर्भरता की भावना में वृद्धि हुई है तथा इस कारण भी अनेक लोग ऐसी शक्तियों के बीच कार्य करने में असमर्थ रहते हैं जो कि उनके नियंत्रण से पूरी तरह बाहर होती हैं।

(ब) जब व्यावसाय तथा उत्पादन की छोटी–छोटी इकाइयाँ हुआ करती थीं– आर्थिक पद्धति एक स्वयं चलित मशीरनी के रूप में अच्छी प्रकार कार्य करती दिखाई देती थी, वही आर्थिक पद्धति जब एकाधिकारी नियंत्रण के अधीन दलदल में फँसी हुई तथा अनेक प्रकार से शोषण सी करती हुई दिखाई दती हैं। इसी के फलस्वरूप सरकार से यह मांग की जाने लगी कि वह व्यावसायिक मंदी का प्रतिरोध करे तथा अर्द्ध–व्यवसाय को संतुलित रखे। कुछ लोग यहाँ तक जोर डालते हैं कि सरकार को आर्थिक स्थिरता बनाये रखने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी चाहिए, परंतु ऐसा होना तभी संभव है जबकि सरकारी खर्च में वृद्धि की जाये।

(स) मानव कल्याण– वर्तमान समय में मानवता की भावना के अधिकाधिक विकास के कारण किसी भी देश में विद्यमान व्यापक गरीबी को बहुत बुरा समझा जाता है ओर उसको मिटाने के लिए सामूहिक पग उठाने का सुझाव दिया जाता है। इस स्थिति में सरकार का सहयोग अनिवार्य हो जाता है और सार्वजनिक कल्याण तथा सार्वजनिक निम्रण के कार्यों के लिए उसे भारी व्यय का आशय लेना होता है।

(द) आर्थिक व राजनीतिक जटिलताएँ – यह भी अनुभव किया जाता है कि आजकल राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं की जटिलताएँ बहुत बढ़ गई हैं। अन्य कारणों में भी एक कारण है जो शिक्षा तथा अन्य अनेक ऐसी कल्याणकारी क्रियाओं के लिए बड़ी मात्रा में खर्च की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है जैसे कि चिकित्सा, मकान, पुलिस तथा गृह प्रशासन आदि।

10. **आर्थिक विकास** (Economic Development) – अल्पविकसित देशों में भी सरकारी व्यय तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे देशों में अधिकतर देश अपने यहाँ तीव्र आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को लागू करते हैं। इन कार्यक्रमों के अंतर्गत परिवहन, संचार तथा विद्युत जैसी मूलभूत आर्थिक सेवाओं की व्यवस्था की जाती है। राज्य के लिए यह आवश्यक होता है कि वह उच्च कोटि के आर्थिक व सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करे ताकि उद्योग धंधे तेजी से विकसित हो सकें। इसके अतिरिक्त अधिकांश आधुनिक सरकारों की यह एक नीति बन गई है कि उत्पादन के प्रयासों में निजी व्यक्तियों की मदद की जाए। कृषकों तथा उद्योगपतियों को उत्पादन (bounties) कर्ज (loans) तथा सहायक अनुदान (grant-in-aid) देकर वे ऐसा करती हैं। यही नहीं, विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करके भी सरकार द्वारा उनकी सहायता की जाती है जैसे कि तकनीकी मार्ग–दर्शन तथा कच्चे माल आदि की सहायता।

11. **आर्थिक नियोजन** –सभी देशों ने रूस की आर्थिक नियोजन की सफलता से प्रभावित होकर अपेन आर्थिक विकास नियोजित रूप में करने आरंभ कर दिये हैं। आर्थिक नियोजन में इस प्रकार के प्रयास किये जाते हैं कि उपलब्ध साधनों का इस प्रकार से शोषण किया जाए ताकि चहुँमुखी आर्थिक विकास के साथ लोगों का जीवन–स्तर ऊँचा उठे तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो। आर्थिक नियोजन के लिए सरकार को बड़ी–बड़ी परियोजनाएँ बनानी पड़ती हैं जिनको पूरा करने के लिए काफी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। देश व विदेशों से ऋण लेने के पश्चात् भी यदि व्यय की पूर्ति नहीं होती है तो घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रबंध करना पड़ता है। उदारिण के लिए, भारत में अब तक छः पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं और उन पर क्रमशः अधिक व्यय हुआ है। सातवीं योजना में पिछली योजनाओं से कहीं अधिक व्यय की व्यवस्था की गई थी। सातवीं योजना (1985–90) के लिए रखी गई राशि 1984–85 की कीमतों के आधार पर थी। छठी योजना में वास्तविक कुल व्यय 11,000 करोड़ रुपया हुआ है। सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1,80,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। आठवीं योजना 1992–1997 के लिए है।

12. **जनसंख्या में वृद्धि** –सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या वृद्धि दर भी है। बढ़ी हुई जनसंख्या के सुख और सुविधाओं के लिए सरकार को काफी मात्रा में व्यय करना पड़ता है। विगत वर्षों में जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विगत 45 वर्षों में विश्व की जनसंख्या 155 करोड़ से बढ़कर 415 करोड़ हो गई है। भारत की जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 68.38 करोड़ हो गई है। भारत की आबादी में लगभग 25 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हो रही है। जनसंख्या वृद्धि से न केवल राज्य के प्रशासन के व्यय में वृद्धि होती है बल्कि उनके सुख–सुविधाओं की वृद्धि करने पर राज्य के व्यय में वृद्धि हो जाती है। सरकार को बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, आवास आदि पर काफी मात्रा में व्यय करना पड़ता है।

13. **अन्य कारण– (i) मूल्यों में वृद्धि** – द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् प्रत्येक देश में कीमतों में बहुत वृद्धि हुई है। मूल्य स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप सरकार को पहले की अपेक्षा अधिक व्यय करना पड़ रहा है। एक तो सरकार को स्वयं कई वस्तुएँ एवं सेवाएँ खरीदनी पड़ती हैं तथा द्वितीयतः सरकार उत्पादन के लिए जो भी व्यय का अनुमान लगाती है, कीमतों में वृद्धि होने के कारण सरकार को उस उत्पादन पर पहले की अपेक्षा अधिक खर्च करना पड़ता है।

    (ii) प्रजातंत्र का भार –विश्व में अनेक देशों में प्रजातंत्रीय सरकार है। इसके लिए सरकार को मुख्य चुनाव एवं मध्यावधि चुनाव कराने पड़ते हैं जिनको सम्पन्न कराने के लिए सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है। इसके अलावा मंत्री एवं अन्य चुने हुए प्रतिनिधियों पर सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है। सरकारों को अन्य देशों से भी कूटनीतिक संबंध बनाये रखने पड़ते हैं। दूसरे देशों में राजदूतावास खोलने पड़ते हैं जिन पर भी सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है।

    (iii) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग – वर्तमान युग में प्रत्येक देश को दूसरे देशों से आर्थिक सहयोग करना पड़ता है। प्रत्येक सरकार किसी न किसी देश की ऋण, अनुदान एवं अन्य आर्थिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ जैसे–अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, एशियन बैंक इत्यादि संस्थाओं को भी समय–समय पर सरकार को सदस्यता शुल्क देना होता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बनाये रखने के लिए सरकारों को काफी व्यय करना पड़ रहा है।

सार्वजनिक व्यय पर वैगनर के विचार (Wagner's views on Public Expenditure) – जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर (Wagner) का विचार था कि आर्थिक विकास के कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होना आवश्यक है। वृद्धि का यह

अनुपात व्यय के रूप में परिवर्तित होने पर प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ जाता है। इस प्रकार सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से कुल उपभोग में वृद्धि हो जाती है।

डाल्टन के अनुसार वैगनर के नियम तीन दशाओं में लागू होते हैं– (1) आर्थिक प्रगति के कारण सार्वजनिक संस्थाओं की कार्य कुशलता, निजी संस्थाओं से अधिक हो जाती है क्योंकि सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा उत्पादित माल अच्छी किस्म का होता है, बाजार में वस्तुओं की कमी नहीं हो पाती है तथा सार्वजनिक क्षेत्र में पूँजी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (2) सार्वजनिक व्यय से ऐसी सेवाएँ उत्पन्न होती हैं जिनका उपयोग सम्पूर्ण समाज कर सकता है जैसे स्कूल, अस्पताल, पार्क इत्यादि। (3) कुछ ऐसी नवीन सेवाएँ जिनको संस्थाएँ नहीं कर सकतीं उनको राज्य सम्पन्न कर सकता है। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती जा रही है।

वैगनर से पूर्व एंजिल का कहना था कि आय में वृद्धि होने से खाद्यान्न पर आय की लोच इकाई से कम हो जाती है, अर्थात् व्यक्ति की आय में वृद्धि होने पर खाद्यान्न पर व्यय घटता जाता है। आय में वृद्धि होने से लोग खाद्यान्न के स्थान पर आरामदायक एवं विलासिता की वस्तुओं पर अधिक व्यय करने लग जाते हैं। वैगनर के मतानुसार सरकारी सेवाओं के लिए आय की लोच इकाई से अधिक होती है।

सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय में अन्तर (Difference between Private and Public Expenditure) – सार्वजनिक व्यय तथा नीजी व्यय की समस्या सामान्यतया एक जैसी होती हैं। दोनों ही आय–व्यय के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। दोनों ही पर आर्थिक नियम सामान्य रूप से लागू होते हैं। इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में एक जैसी वित्तीय नीति लागू की जाती है किंतु दोनों में कुछ मौलिक अंतर होते हैं, जो निम्नलिखित हैं –

(1) आय व्यय का समायोजन (Adjustment between loncome and Expenditure) – राज्य पहले अपने व्यय की मात्रा निश्चित कर लेता है, उसके बाद आय प्राप्त करने के प्रयास करता है, जबकि निजी व्यय प्रायः व्यक्ति की आय पर निर्भर करता है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय के अनुसार ही व्यय करता है। डाल्टन (Dalton) के शब्दों में, ''जबकि एक व्यक्ति अपनी आय के अनुसार व्यय को निश्चित करता है, एक राजकीय संस्था अपनी आय को व्यय के अनुसार निश्चित करती है।''

(2) लोच का अन्तर (Difference of Elasticity) सार्वजनिक व्यय में लोच नहीं पायी जाती। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि तो सरलता से की जाती है, किंतु उसे कम करना कठिन होता है। दूसरी ओर, निजी व्यय में लोच (elasticity) पायी जाती है, क्योंकि इसमें सरलतापूर्वक कमी और वृद्धि की जा सकी है।

(3) क्षेत्र का अन्तर (Difference of Scope) – सरकारी व्यय का क्षेत्र विस्तृत होता है, क्योंकि सरकार का कार्य–क्षेत्र पर्याप्त व्यापक होता है, जबकि निजी व्यय का क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का कार्य–क्षेत्र सीमित होता है।

(4) व्यय की इच्छा (Willingness of Expenditure)– सार्वजनिक व्यय ऐच्छिक नहीं होता। सरकारी आय को सामाजिक कल्याण के लिए व्यय करना आवश्यक होता है, किंतु निजी व्यय व्यक्ति की अपनी अच्छा पर निर्भर करता है। निजी व्यय में व्य की अनिवार्यता नहीं होती।

(5) प्रत्यक्ष लाभ (Direct Benefit)– सार्वजनिक व्यय में प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता जैसे–अकाल, बाढ़, युद्ध आदि पर किये गए व्यय से सरकार को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता। व्यक्ति को अपने प्रत्येक व्यय से प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है।

(6) उद्देश्य (Object) – सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य सामाजिक कल्याण (Social welfare) होता है, जबकि निजी

व्यय का उद्देश्य व्यक्तिगत कल्याण (Individual welfare) होता है।

(7) नियंत्रण (Control) – सार्वजनिक व्यय पर संसद का नियंत्रण होता है, जबकि निजी व्यय पर किसी व्यक्ति–विशेष का नियंत्रण होता है।

(8) मितव्ययिता (Economy)– सार्वजनिक व्यय करते समय मितव्ययिता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि निजी व्यय के संचालन में मितव्ययिता का पूरा ध्यान रखा जाता है।

(9) प्रभाव (Effects) –सार्वजनिक व्यय का प्रभाव पूरे समाज या राष्ट्र पर पड़ता है, जबकि निजी व्यय का प्रभाव किसी व्यक्ति विशेष पर ही पड़ता है।

लोक व्यय तथा आर्थिक जीवन (Public Expenditure and Economic Life)

सरकारी व्यय किसी देश के आर्थिक जीवन को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। उत्पादन तथा वितरण के स्तर में सुधार लाने तथा आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिए सरकारी व्यय का आश्रय लिया जा सकता है। कृषि तथा उद्योगों के लिए ऋण तथा उपादान स्वीकृति करके उत्पादन के स्तर में वृद्धि की जा सकती है। सरकारी खर्च के द्वारा तकनीकी जानकारी, परिहन तथा संचार के साधन और बिजली आदि की व्यवस्था की जा सकती है ताकि उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन मिले। सरकारी खर्च के द्वारा अत्यावश्यक जीवनोपयोगी पदार्थों तथा पूँजीगत माल का उत्पादन आरम्भ किया जा सकता है और नीजी उद्यमों से प्रतियोगिता की जा सकती है। इस प्रकार, सरकारी खर्च के द्वारा वितरण के सम्पूर्ण ढाँचे में ही परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसा एक ओर तो सरकारी कर्मचारियों का वेतन बढ़ाकर तथा सामाजिक सुरक्षा व चिकित्सा सुविधाओं आदि की व्यवस्था करके किया जा सकता है और दूसरी ओर उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके तथा भूमि का अधिग्रहण करके ऐसा किया जा सकता है। सरकारी व्यय आर्थिक स्थिरता बनाए रखने में भी पर्याप्त सहायक होता है। मन्दी काल में खर्च को बढ़ाकर तथा मुद्रा–स्फीति में इसे घटाकर ऐसा किया जा सकता है और इस प्रकार देश के आर्थिक जीवन में आने वाले उतार–चढ़ावों को रोका जा सकता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि सरकारी खर्च सरकार की आर्थिक नीति का एक ऐसा महत्वपूर्ण अस्त्र बन सकता है कि जिसके द्वारा उत्पादन तथा वितरण में सुधार लाया जा सके और आर्थिक स्थिरता कायम रखी जा सके। परंतु यहाँ यह नहीं मान लेना चाहिए कि आर्थिक नीति के केवल इस पहलू से ही वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्य भी बहुत से उपाय हैं जैसे कि मौद्रिक उपाय, आर्थिक नियंत्रण तथा कराधान आदि; यदि आर्थिक नीति में उल्लिखित लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो इन उपायों को भी इस दिशा में क्रियाशील बनाना होगा। इससे आर्थिक नीति अधिक कारगत तथा प्रभावशाली बन जाएगी।

सार्वजनिक व्यय के सिद्धांत (Principles of Public Expenditure)

सरकारी व्यय के सिद्धांतों का विवेचन उस समय पहले किया जा चुका है जब कि पीछे लोक वित्त के मूलभूत सिद्धांतों का अध्ययन किया गया था और जिनमें अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत का विवेचन किया गया था। उनमें पहला सिद्धांत तो उस सीमा की ओर संकेत करता है जहाँ तक कि कुल सरकारी व्यय बढ़ाया जाना चाहिए, और दूसरा सिद्धांत विभिन्न मदों में साधनों के बँटवारे की ओर संकेत करता है ताकि शुद्ध सामाजिक लाभ को अधिकतम किया जा सके। इनका संक्षिप्त विवरण पुनः नीचे दिया जा रहा है –

(1) सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी–सी भी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी–सी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान संतुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है। ''प्रो0 पीगू ने भी इस सिद्धांत की लगभग इन्हीं शब्दों में व्याख्या की है, सभी दिशाओं में सरकारी व्यय एक ऐसे बिन्दू (Point)

तक बढ़ाया जाना चाहिए जिस पर खर्च किये जाने वाले अन्तिम शिलिंग से जो संतुष्टि प्रापत हो, वह उस सन्तुष्टि के बराबर हो जो कि सरकारी सेवाओं के लिए अन्तिम शिलिंग देने से नष्ट हो गई हो। इस प्रकार यह सिद्धांत सरकारी खर्च को ऐसे बिन्दु तक जारी रखने की अनुमति देता है जहाँ कि सरकार द्वारा खर्च किये गये अंतिम रूप्ये से प्राप्त होने वाला सीमांत सामाजिक लाभ उस सीमान्त त्याग के बराबर हो जो कि कराधान द्वारा वसूल किये जाने वाले रुपये के कारण करदाता को करना पड़े।

सभी दिशाओं में सरकारी व्यय एक ऐसे बिन्दु तक बढ़ाया जाना चाहिए जिस पर व्यय किये जाने वाले अंतिम शिलिंग से जो संतुष्टि प्राप्त हो, वह उस संतुष्टि के बराबर हो जो कि सरकारी सेवाओं के लिए अंतिम शिलिंग देने से नष्ट हो गई हो। इसका अर्थ है कि ''युद्ध पोतों (Battle Ships) तथा निर्धनों की सहातया (Poor relief) की मदों के बीच खर्च का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक मद पर लगाये गए अन्तिम शिलिंग से संतुष्टि का समान प्रतिफल (return) प्राप्त हो।''

इसका अर्थ यह है कि सरकार को विभिन्न मदों के बीच अपने साधनों का बंटावारा इस प्रकार करना चाहिए जिससे कि प्रत्येक मद से प्राप्त होने वाला सीमांत तुष्टिगुण बराबर हो। इसको हम लोक वित्त के क्षेत्र में सम–सीमांत तुष्टिगुण नियम या अधिकतम संतुष्टि के नियम के क्रियान्वयन का नाम देते हैं। इस प्रार स्पष्ट है कि अपने साधनों का विभिन्न मदों के बीच बंटावारा करते समय यदि सरकार द्वारा इस सिद्धांत को दृष्टिगत रखा जाए तो सरकार अपने खर्च से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त कर सकती है। यह भी पहले ही बताया जा चुका है कि प्रत्येक मद से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ को माप करने का कार्य यदि संभव नहीं, तो अत्यंत कठिन अवश्य है।

जी. पीगू (G. Pigou) – यदि हम समाज को एक इकाई प्राणी तथा सरकार को उसका मस्तिष्क मान लें, तो सभी दिशाओं में व्यय उस बिन्दु तक बढ़ाया जाना जहाँ व्यय की गई अंतिम शिलिंग से प्राप्त संतोष राजकीय सेवा में लगाई अंतिम शिलिंग से खोये गये संतोष के बराबर हो जाए।'' इस प्रकार राज्य के लिए यह भी बड़ा कठिन है कि वह खर्च किये अन्तिम रुपये के सीमांत सामाजिक लाभ को उस सीमान्त त्याग के बराबर कर सके जो कराधान द्वारा वसूल किये गये अन्तिम रुपये के कारण करदाता को करना पड़े। इस संबंध में और भी अनेक तर्क हैं जो यहाँ दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, सरकारी कराधान तथा सरकारी खर्च की कार्यवाहियाँ सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा की जाती हैं, अतः यह और भी कठिन होता है कि खर्च किये गए अन्तिम रुपये से प्राप्त होने वाले सीमान्त लाभ की तुलना कराधान के द्वारा वसूल किये जाने वाले अन्तिम रूप्ये के कारण करदाता द्वारा किये जाने वाले सीमान्त त्याग से की जा सके। फिर सरकारी खर्च कई अनार्थिक कारणों, राजनैतिक दबावों, हड़तालों तथा प्रदर्शनों आदि से भी प्रभावित होता है –

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऊपर सरकारी खर्च के जिन सिद्धांतों का जिक्र किया गया है, वे केवल आदर्श (ideals) हैं और सैद्धांतिक रूप से ही साथ हैं। जहाँ तक व्यापार का प्रश्न है, उन्हें लागू करना बड़ा कठिन है।

लोक व्यय का मार्गदर्शन करने वाली बातें (Guidelines for Public Expenditure)

प्रो0 एल्फर्ड जी. बुलचर ने सरकारी व्यय का मार्गदर्शन करने वाली कुछ ऐसी उपयोगी बातों का उल्लेख किया है, जिनका लोकसत्ताओं द्वारा व्यावहारिक जीवन में अनुसरण किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि ''अभी तक व्यय के सिद्धांत का उतना उच्चस्तरीय विकास नहीं हुआ है जितना कि काराधान का, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धांत हैं जो कि तब तक सरकार तथा जनता के लिए मार्गदर्शन के रूप में कार्य कर सकते हैं जब तक कि इस क्षेत्र के लिए और अधिक उपयुक्त स्तरों की खोज न की जाये।'' सरकारी व्यय के ये सिद्धांत या मार्गदर्शक बातें अग्रलिखित हैं –

1. **समाज कल्याण में वृद्धि** (Increase in Social Welfare) सरकारी खर्च के द्वारा समाज कल्याण में वृद्धि होनी चाहिए यद्यपि यह हो सकता है कि कभी–कभी सरकारी खर्च की रूपरेखा का निर्धारण किसी विशेष वर्ग के कल्याण में वृद्धि के लिए ही किया जाए। परन्तु वहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज की भलाई ही सर्वोच्च लक्ष्य है जो कि व्यक्तियों अथवा वर्गों के हितों के ऊपर है। अतः यह अवश्य देखा जाना चाहिए कि किसी वर्ग की सहायता करते समय सम्पूर्ण समाज के कल्याण को क्षति न पहुँचे।

2. **लाभ लागत से अधिक** (Profit is more than cost) –सरकारी अधिकारियों तथा निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा अत्यंत सावधानी के साथ निर्णय लेकर इस विषय में आश्वस्त होना चाहिए कि प्रत्येक सेवा पर किये गए खर्च से जो लाभ प्राप्त हो वह उस खर्च को लागत से अधिक हो तथा सरकार द्वारा खर्च किये गए धन से प्राप्त होने वाला सामाजिक कल्याण उससे अधिक होना चाहिए जो कि तब प्राप्त होता जबकि उक्त धन निजी व्यक्तियों द्वारा खर्च किया जाता।

3. **सामाजिक कल्याण के कार्यों को वरीयता** (Preference to Social Welfare Activities) – ऐसी सेवाओं को सर्वप्रथम हाथ में लिया जाना चाहिए, जिनके द्वारा कि सामाजिक कल्याण में सर्वाधिक वृद्धि हो और जिनके द्वारा सामाजिक कल्याण (social welfare) में कम वृद्धि हो, उन सेवाओं पर बाद में खर्च किया जाना चाहिए।

4. **लाभ के परिणाम** (Results of profit) –खर्चों से प्राप्त होने वाले लाभों के परिणामों को आंकने के लिए उन प्रतिकूल प्रभावों को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए जो कि उन खर्चों की पूर्ति के लिए लगाये जाने वाले करों तथा प्राप्त की जाने वाली अन्य आय के संग्रह के कारण उत्पन्न हों।

5. **प्रशासनिक व्यय** (Administrative Expenditure) –सरकार के प्रशासन आदि में जो व्यय होता है वह भी उन सेवाओं पर किया गया ही माना जाना चाहिए जो सरकार जन–कल्याण के लिए उपलब्ध करती है। यदि सरकारी प्रशासन आदि की लागत बहुत अधिक आती है तो वह माना जायेगा कि सम्पन्न की जाने वाली सेवाओं के चुनाव में अथवा उसको सम्पन्न करने के तरीके में कुछ कमी है।

6. **साधनों की उपलब्धि** (Availability of Resources) – सरकारी सेवाएँ केवल तभी हाथ में ली जानी चाहिए जबकि उनकी लागत को पूरा कराने के लिए यथेष्ट साधन उपलब्ध हों। उधार द्वारा केवल अस्थायी प्राप्तियों (receipts) की ही व्यवस्था की जा सकती है क्योंकि इस प्रकार उधार लिए हुए धन को भी अन्ततः अन्य स्रोतों की आय से वापिस करना होता है और इन स्रोतों में कर मुख्य होते हैं।

7. **आय की सम्भावना** (Expectations of Income) – कुछ सेवाएँ स्थानान्तरणीय (transferable) प्रकृति की होती हैं, जैसे–सार्वजनिक निर्माण कार्य (Public work)। ऐसी सेवाओं को सम्पन्न करने तथा उन पर धन व्यय करते समय यह भी देखा जाना चाहिए कि उनसे भावी आय की क्या सम्भावनाएँ हैं तथा क्या वे सामान्य व्यावसायिक दशाओं के अन्तर्गत सम्पन्न की जा रही हैं। ऐसी सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए वह समय छाँटा जाना चाहिए जो कि समाज की दृष्टि से सर्वोत्तम तथा अनुकूल हो ताकि उन सेवाओं के प्रभावों को आर्थिक स्थिरता में वृद्धि करने की दिशा में मोड़ा जा सके।

8. **व्यय की सीमाएँ** (Limitations of Expenditure) - व्यय पर प्रारंभ में तो नहीं, किन्तु अन्तिम रूप में कुछ सीमाएँ लागू की जाती है।। वे हैं –जनसंख्या को देखते हुए समाज की आय व धन क्षेत्र अन्य साधन तथा धन व आय का विशिष्ट वितरण।

9. **सेवा समन्वय** (Service Coordination) – सरकार की विभिन्न इकाइयों की सेवाओं के बीच कारगर ढंग से

समन्वय (coordination) स्थापित किया जाना चाहिए, ताकि उन सेवाओं से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त किया जा सके और सरकारी प्रयत्नों से व्यर्थ का दोहराव (duplication) उत्पन्न न हो।

10. **प्रशासनिक श्रेष्ठता** (Administrative Ability)— सरकारी प्रशासन कुशल तथा ईमानदार होना चाहिए। केवल कानून–सम्मत खर्च किये जाने वाहिए, तभी खर्चों का समुचित रूप से हिसाब रखा जाना चाहिए और रिपोर्टों आदि के द्वारा सरकार की वित्तीय कार्यवाहियों का सरल ढंग से समुचित प्रयास किया जाना चाहिए ताकि जनता तथा साथ ही साथ सरकारी अधिकारी भी सरकारी सेवाओं की लागतों (costs) एवं लाभों की तुलना कर सकें।

लोक व्यय के सिद्धांत का नियम (Canons of Public Expenditure)

प्रो0 शिराज ने भी सरकारी व्यय के चार सिद्धांतों का उल्लेख किया है जो कि निम्न प्रकार हैं –

1. **लाभ का सिद्धान्त** (Cannon of Bebefit)— इस सिद्धांत का आदर्श है अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति, अर्थात् सरकारी खर्च की योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए ताकि उसमें समाज के किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप में (as a whole) समस्त समाज के लिए अधिकतम सामाजिक लाभ तथा सामाजिक कल्याण प्राप्त किया जा सके। 'यदि अन्य बातें समान रहें तो यह आवश्यक है कि सरकारी खर्च अपने साथ कई सामाजिक उपलब्धियाँ लाए, जैसे कि उत्पादन में वृद्धि, बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति से सम्पूर्ण समाज की सुरक्षा और जहाँ तक भी सम्भव हो सके आय की असमानताओं में कमी।'' संक्षेप में कहा जा सकता है कि सरकारी धन उन मदों में खर्च किया जाना चाहिए जो कि जनहित की दृष्टि से सर्वाधिक अनुकूल हो। अन्य शब्दों में, सरकारी खर्च से अधिकतम तुष्टिगुण प्राप्त किया जाना चाहिए और ऐसा केवल तभी सम्भव हो सकता है जबकि सरकारें धन को इस प्रकार खर्च करें तथा विभिन्न उपयोगों के बीच साधनों का इस प्रकार बंटावारा करें ताकि सभी उपयोगों (uses) से प्राप्त होने वाला सीमान्त तुष्टिगुण बराबर हो। अन्य शब्दों में, ऐसा तब हो सकता है जबकि लोक वित्त के क्षेत्र में सम–सीमान्त तुष्टिगुण नियम अथवा अधिकतम संतुष्टि का नियम लागू किा जाए। इसका अर्थ है कि लोक–सताओं को अपने साधनों का बँटवार उपर्युक्त रीति से करना चाहिए जिससे कि –

   (क) सम्पूर्ण रूप में देश के कुल उत्पादन में वृद्धि हो;

   (ख) बाह्य तथा आन्तरिक खतरों से समाज की रक्षा करने के लिए पर्याप्त सेना तथा पुलिस बनाई रखी जा सके;

   (ग) नागरिकों के बीच आय की असमानताओं को कम किया जा सके; और

   (घ) किसी एक वर्ग के नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के ही कल्याण को अधिकतम किया जा सके।

अन्य शब्दों में, 'अधिकाधिक लोगों का अधिकाधिक हित' ही इस सिद्धांत का एकमात्र लक्ष्य है। अतः सरकारी खर्च का यह सिद्धांत बड़ा उपयोगी सिद्धांत है और अर्थशास्त्र का कोई भी विद्यार्थी सरकार द्वारा अपनाये जाने वाले आदर्श के रूप में इसका खण्डन नहीं कर सकता। यह तो रही सिद्धांत की बात, जहाँ तब व्यवहार का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा इस सिद्धांत के लक्ष्य अथवा आदर्श को प्राप्त कर सकना बड़ा कठिन है। इसका कारण यह है कि एक ओर तो सरकार के लिए यह असंभव है कि वह खर्च की प्रत्येक मद से प्राप्त होने वाले सीमान्त सामाजिक लाभ को समान कर सके और दूसरी ओर सम्पूर्ण समाज को प्रदान किये जाने वाले कुछ लाभ की मात्रा का अनुमान लगा सके। इस सब विवेचन के अन्त में यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक सरकारी व्यय का उद्देश्य यह होना चाहिए कि देश के उत्पादन तथा वितरण में सुधार हो।

2. **मितव्ययिता का सिद्धान्त** (Canon of Economy) – मितव्ययिता के सिद्धांत से आशय है कि राज्य खर्च करने के मामले में किफायती दृष्टिकोण सामने रखे। इस सम्बन्ध में दो विचारणीय बातें उल्लेखनीय हैं। सर्वप्रथम सरकार को किसी भी मद पर न्यूनतम आवश्यक धनराशि ही व्यय करनी चाहिए। दूसरे, उसे यथासम्भव समाज की उत्पादन शक्ति में वृद्धि भी करनी चाहिए। यही मितव्ययिता या किफायत (economy) का सकारात्मक पहलू है। इसमें पहले विचार का सम्बन्ध वर्तमान से है और दूसरे का सम्बन्ध भविष्य से। इस सिद्धान्त का एकमात्र उद्देश्य अतिव्ययता (extravagance) तथा भ्रष्टाचार (corruption) से बचना है। सामाजिक लाभ को तभी अधिकतम किया जा सकता है, जबकि व्यय में फिजूलखर्ची या बर्बादी न हो। अतः यह सिद्धांत ऐसा अच्छा व्यावहारिक नियम है जिसका सरकारें अनुसरण कर सकती हैं। इस सन्दर्भ में शिराज ने इसके एक–दूसरे पहलू पर भी जोर दिया है, और वह यह है कि ''मितव्ययिता का अर्थ है करदाता के हितों की रक्षा करना–केवल खर्च की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करके ही नहीं बल्कि सरकारी आय को बढ़ाने की दृष्टि से भी।'' स्पष्टतः इसका अर्थ यही है कि सरकार अपना व्यय इस प्रकार कें कि उसमें सरकार की आय के विस्तार में भी मदद मिले। वस्तुतः यह भी इस सिद्धांत का बड़ा महत्वपूर्ण पहलू है और सरकार जब अपने खर्च की रूपरेखा बनाए तो उसे इसका अनुसरण अवश्य करना चाहिए।

3. **स्वीकृति का सिद्धान्त** (Canon of Sanction) – स्वीकृति का सिद्धांत यह है कि बिना उपयुक्त अधिकारों या सत्ता की स्वीकृति के कोई भी सरकारी खर्च नहीं किया जाना चाहिए। इसका आशय यह है कि कोई भी धनराशि उस समय तक खर्च नहीं की जानी चाहिए जब तक कि उस खर्च के लिए उपयुक्त अधिकृत व्यक्ति से स्वीकृति या अनुमति न मिल जाए। प्रत्येक सरकारी निकाय को इस बात की तो स्वाधीनता होनी चाहिए कि वह किसी विशेष मद पर एक निश्चित सीमा तक खर्च कर सके परन्तु उस सीमा से अधिक प्रत्येक खर्च तभी किया जाना चाहिए जबकि समुचित अधिकारी से उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाए। अतः इस सिद्धांत का उद्देश्य यही है कि सभी अविवेकपूर्ण तथा अन्धाधुन्ध खर्चों को रोका जा सके क्योंकि लोगों का अनुभव है कि सभी अनाधिकृत खर्चे (unauthorized expenditures) अपव्यय तथा अति व्यय को प्रोत्साहन देते हैं। स्वीकृति के सिद्धांत के अन्तर्गत यह भी देखना जरूरी होता है कि व्यय करने वाले अधिकारी धन का उसी कार्य में खर्च करें जिसके लिए उसकी स्वीकृति मिली है। यह देखने के लिए कि स्वीकृत खर्च की धनराशि का दुरूप्योग तो नहीं हुआ है, वित्तीय वर्ष के अन्त में सरकारी खातों का सदा लेखा–परीक्षण (audit) तथा निरीक्षण (inspection) किया जाता है। प्रो0 शिराज का यह सिद्धांत सरकारी खर्च की नीति निर्धारित करने के लिए उपयुक्त कार्य पद्धति प्रस्तुत करता है तथा सरकारी खर्च के प्रशासन में कुछ निहित स्वार्थों (vested interests) के प्रवेश तथा मनमानेपर पर रोक लगाता है।

वर्तमान समय में स्वीकृति के इस सिद्धांत का काफी विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए लोकतंत्रीय देशों में स्वयं सरकार को भी खर्च करने से पहले संसद (Parliament) या विधान–मण्डल की स्वीकृति लेनी पड़ती है। सरकार के प्रत्येक मन्त्रालय या विभाग को वित्त–मन्त्रालय की स्वीकृति लेनी पड़ती है। एक विभाग के अन्तर्गत भी विभागाध्यक्ष की अनुमति लेनी पड़ती है। इसी प्रकार खर्च के लिए पूर्व–स्वीकृति लेने का यह सिलसिला बराबर आगे भी चलता रहता है। यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि अनुमति लेने की इस व्यापक व्यवस्था के कारण कभी–कभी कार्य देरी से सम्पन्न होता है और प्रशासन में लाल फीताशाही (red-tapism) जन्म ले लेती है परंतु इसको इसलिए सहन करना होता है ताकि खर्च के प्रशासन में ईमानदारी और मितव्ययिता बनी रहे और अपव्यय एवं अति व्यय को रोका जा सके।

4. **बचत या बेशी का सिद्धांत** (Canon of Surplus)– बेशी के सिद्धांत के अनुसार सरकारी खर्च में घाटे की स्थिति से बचा जाना चाहिए। प्रोद्ध शिराज के ही शब्दों में, ''सरकारों को अपनी आय प्राप्त करने तथा खर्च

करने के मामलों में सामान्य नागरिकों के समान ही आचरण करना चाहिए। निजी व्यक्ति जिस प्रकार अपने खर्च को आय से अधिक नहीं होने देते, उसी प्रकार सरकारों को भी सन्तुलित बजट बनाने की आदत डालनी चाहिए। वार्षिक व्यय को बिना नये उधार लिए ही संतुलित कर लेना चाहिए।'' यह सिद्धांत बड़ा ठोस तथा सुरक्षित प्रतीत होता है। यह सिद्धांत बताता है कि प्राइवेट व्यक्ति के समान सरकार को भी अपने साधनों की परिधि में रहकर ही खर्च करना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सरकार को कभी ऋण लेना ही नहीं चाहिए। वस्तुतः यदि आवश्यकता हो तो उसे उधार ले लेना चाहिए। परंतु उसकी आय इतनी होनी चाहिए कि वह उस ऋण का ब्याज अदा कर सके और ऋण की वापसी के लिए एक शोधन निधि (Sinking Fund) का निर्माण कर सके।

किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री सन्तुलित बजट को सदैव अच्छा नहीं समझते। वस्तुतः बजट कैसा बनाया जाए, यह बात देश की अर्थव्यवस्था की दशा पर निर्भर होती है। मुद्रास्फीति की दशा में बेशी के बजट (surplus budget) को अच्छा माना जाता है, क्योंकि यह लोगों की क्रयशक्ति (purchasing power) को कम कर देता है जिससे कुल समर्थ मांग (effective demand) मात्रा कम हो जाती है ओर इस प्रकार यह चालू मांग और चालू उत्पादन में संतुलन कायम रखने में सहायक होता है। इसके विपरीत मन्दी के दिनों में घाटे के बजट (deficit budget) को वांछनीय माना जाता है और वह इसलिए, क्योंकि यह लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि करके कुल समर्थ मांग में वृद्धि कर देता है और इस प्रकार चालू मांग तथा चालू उत्पादन के बीच संतुलन कर देता है।

इसी प्रकार संतुलित बजट (balanced budget) को उस समय वांछनीय माना जाता है जबकि अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूर्ण रोजगार तथा मूल्यों में स्थिरता की स्थिति वर्तमान हो। इसके अतिरिक्त एक विकासशील देश में घाटे के बजट को पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करने के एक अस्त्र के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है, बशर्ते कि घाटा बहुत अधिक न हो, अन्यथा तो इस कार्यवाही से अर्थव्यवस्था (economy) में स्फीतिजन्य प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जायेंगी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बेशी या बजट के सिद्धांत को आधुनिक लोक वित्त में वह महत्ता प्राप्त नहीं है जो कि इसे प्राचीन समय में प्राप्त थी।

लोक व्यय के अन्य सिद्धांत (Other Canons of Public Expenditure)

सरकारी व्यय के उपर्युक्त सिद्धान्तों के अलावा, कुछ अर्थशास्त्रियों ने कुछ अन्य सिद्धांतों का उल्लेख किया है। ये सिद्धांत निम्न प्रकार हैं –

1. **लोच का सिद्धान्त** (Canon of Elasticity) – इस सिद्धांत का कहना है कि राज्य की व्यय–नीति ऐसी होनी चाहिए कि जो देश की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ स्वयं को परिवर्तित कर सके, अर्थात् देश की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार सरकारी खर्च में घटा–बढ़ी करना संभव हो सके। वास्तव में, इस सिद्धांत का उद्देश्य यह है कि सरकारी खर्च की नीति में ऐसी लोच होनी चाहिए ि कवह युद्ध जैसे संकटकालीन अवसरों पर तथा व्यापक विकास कार्यक्रमों के लिए वित्त का प्रबंध करने में असफल न हो जाए। अन्य शब्दों में, सरकारी खर्च की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि संकटकाल में यदि साधनों को एक मद से दूसरी मद में स्थानान्तरित किया जाए तो उससे देश का आर्थिक जीवन अस्त–व्यस्त न हो जाए। उदाहरणार्थ युद्धकाल में खर्च को मकानों के निर्माण से हटाकर युद्ध कार्यों में लागये जाने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

2. **उत्पादकता का सिद्धांत** (Canon of Productivity) – इस सिद्धांत का आशय है कि राज्य की व्यय नीति ऐसी होनी चाहिए जो कि सम्पूर्ण रूप में देश के उत्पादन को प्रोत्साहित करे। स्पष्ट है कि इस सिद्धांत के अनुसार, अधिकाधिक सरकारी व्यय उत्पादन तथा विकास संबंधी कार्यों में ही किया जाना चाहिए।

अल्पविकसित देशों के लिए तो यह सिद्धांत बड़ा ही अनुकूल है, क्योंकि ऐसे देशों में, ''सामाजिक तथा सरकारी सेवाओं की उपज में तथा सामुदायिक उपभोग की सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए सरकारी खर्च में व्यापक विस्तार की आवश्यकता होती है।'' अतः अधिकतम रोजगार, अधिकतम पैदावार तथा अधिकतम आय ही सरकारी खर्च का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

भारत का लोक व्यय : सिद्धांतों की कसौटी पर

अब यदि भारत के लोक–व्यय को सिद्धांतों की कसौटी पर कसते हैं तो पाते हैं कि भारतीय लोक–व्यय कुछ सिद्धांतों के अनुकूल है किन्तु फिर भी उसमें अभी काफी सुधार करने की आवश्यकता है। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् भारी उद्योगों की स्थापना, आर्थिक एवं सामाजिक पूँजी निर्माण की वृद्धि, सामाजिक कल्याण की योजनाओं में वृद्धि इत्यादि कार्यों पर काफी सार्वजनिक व्यय हुआ है और यही कारण है कि पिछले दो दशकों से भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुदृढ़ता आई है। योजनाओं के अंतर्गत अपनायी गयी क्षेत्रीय विकास की नीति **'लाभ के सिद्धांत'** के अनुरूप है क्योंकि इससे पिछड़े क्षेत्रों, विशेषकर ग्रामीण जनसंख्या को काफी लाभ पहुँचा है। किन्तु प्रशासनिक शिथिलता के कारण **'मितव्ययिता'** एवं '**स्वीकृति**' के सिद्धांतों का पूरी तरह पालन नहीं हुआ है। घाटे का बजट हमारी सरकार की परम्परागत कमजोरी रही है और स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि न केवल केन्द्र सरकार ही अपना अर्थ–प्रबन्ध घाटे के बजट से पूर्ण करती है बल्कि राज्य सरकारों की भी यह एक दिनचर्या बन गई है। आज वास्तविकता यह है कि लोगों की करदान क्षमता लगभग समाप्त हो चुकी है ओर लोक व्यय में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। लोक–व्यय में 'लोच' की अनुपस्थिति के साथ–साथ लोगों की कर देने की योग्यता कम होने के कारण सरकार ने अपने अर्थ–प्रबन्ध के लिए नये नोटों को छापा है। इसके परिणामस्वरूप देश महँगाई के दौर से गुजर रहा है। पिछले दशक से तो यह स्थिति और भी अधिक गंभीर हो गई है। यह बात अवश्य सराहनीय है कि सरकार की व्यय नीति 'उत्पादकता' एवं 'न्यायपूर्ण' वितरण के सिद्धांतों को अपनाने में काफी सफल रही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत सरकार की व्यय नीति में अभी भी काफी सुधार करने की गुंजाइश है।

सारांश (Summary)

- वैगनर का कहना था कि राज्य के कार्यों में व्यापक एवं गहन वृद्धि (extensive and intensive increase) की एक स्थायी प्रवृत्ति पाई जाती है। राज्य नये–नये कार्यों को निरंतर अपने हाथ मे लेते जा रहे हैं और पुराने कार्यों को और अधिक बड़े पैमाने पर अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न कर रहे हैं।

- औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) से संसार के अधिकांश देशों के केवल औद्योगिक ढाँचे में ही आमूल परिवर्तन नहीं हुआ अपितु उनका राजनैतिक व सामाजिक रूप भी काफी बदल गया है।

- किसी देश विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का कृषि विकास उसकी अर्थव्यवस्था के विकास की धुरी होता है। आर्थिक विकास के लिए कृषि तथा गैर–कृषि दोनों क्षेत्रों के विकास करने के लिए सुविधाएँ प्रदान करनी आवश्यक होती हैं क्योंकि दोनों क्षेत्र परस्पर निर्भर करते हैं।

- सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या वृद्धि दर भी है। बढ़ी हुई जनसंख्या के सुख और सुविधाओं के लिए सरकार को काफी मात्रा में व्यय करना पड़ता है।

- सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय की समस्या सामान्यतया एक जैसी होती है। दोनों ही आय–व्यय के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। दोनों ही पर आर्थिक नियम सामान्य रूप से लागू होते हैं।

- सरकारी व्यय किसी देश के आर्थिक जीवन को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। उत्पादन तथा वितरण के स्तर में सुधार लाने तथा आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिए सरकारी व्यय का आश्रय लिया जा सकता है।

- सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी–सी भी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन मे की जाने वाली थोड़ी–सी वृद्धि होने वाली हानि में, समान संतुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।

- यदि हम समाज को एक इकाई प्राणी तथा सरकार को उसका मस्तिष्क मान लें, तो सभी दिशाओं में व्यय उस बिन्दु तक बढ़ाया जाना जहाँ व्यय की गई अन्तिम शिलिंग से प्राप्त सन्तोष राजकीय सेवा में लगाई अंतिम शिलिंग से खोये गए संतोष के बराबर हो जाए।

- अभी तक व्यय के सिद्धांत का उतना उच्चस्तरीय विकास नहीं हुआ है जितना कि कराधान का, किंतु फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धांत हैं जो कि तब तक सरकार तथा जनता के लिए मार्गदर्शन के रूप में कार्य कर सकते हैं जब तक कि इस क्षेत्र के लिए और अधिक उपयुक्त स्तरों की खोज न की जाए।

- सभी खर्चों का समुचित रूप में हिसाब रखा जाना चाहिए और रिपोर्टों आदि के द्वारा सरकार की वित्तीय कार्यवाहियों का सरल ढंग से समुचित प्रयास किया जाना चाहिए ताकि जनता तथा साथ ही साथ सरकारी अधिकारी भी सरकारी सेवाओं की लागतों (costs) एवं लाभों की तुलना कर सकें।

- यदि अन्य बातें समान रहें तो यह आवश्यक है कि सरकारी खर्च अपने साथ कई सामाजिक उपलब्धियाँ लाए, जैसे कि उत्पादन में वृद्धि, बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति से सम्पूर्ण समाज की सुरक्षा और जहाँ तक भी संभव हो सके आय की असमानताओं में कमी।

- मितव्ययिता का अर्थ है करदाता के हितों की रक्षा करना–केवल खर्च की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करके ही नहीं बल्कि सरकारी आय को बढ़ाने की दृष्टि से भी।

- सामाजिक तथा सरकारी सेवाओं की उपज में तथा सामुदायिक उपभोग की सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए सरकारी खर्च में व्यापक विस्तार की आवश्यकता होती है।

कुछ प्रश्न (Some Questions)

- सार्वजनिक व्यय किन–किन कार्यों के लिए किया जाता है?
- लोक व्यय में वृद्धि के क्या कारण हैं?
- सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय में क्या अन्तर है?
- सार्वजनिक व्यय के सिद्धांतों की व्याख्या करें।

संदर्भ पुस्तकें (Books)

- लोक वित्त–न्यू रॉयल बुक कंपनी।
- भारतीय लोक वित्त प्रशासन–मंजूषा शर्मा, ओ. पी. बोहरा, रवि बुक्स।
- मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एवं पब्लिक फाइनेंस–नी. थाई. सोमशेखर, अनमोल, 20041
- पब्लिक फाइनेंस – नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 20111

Semester-I

Unit-II

अध्याय–4 (Chapter-4)

इकाई – बजट : उत्पत्ति, अर्थ तथा महत्व, प्रकार, सिद्धान्त

(Budget : Evolution, Meaning and Significance, Principles, Types)

रूपरेखा :–

- बजट की उत्पत्ति
- बजट का अर्थ तथा परिभाषा
- बजट का महत्व
- बजट के सिद्धान्त
- बजट के प्रकार
- सारांश
- कुछ पुस्तकें
- कुछ संभावित प्रश्न

अध्याय–4

बजट : उत्पत्ति, अर्थ, महत्व, सिद्धान्त तथा प्रकार

(Budget : Evolution, Meaning, Significance, Principles, Types)

वित्त प्रशासन किसी भी प्रशासकीय व्यवस्था का अभिन्न अंग माना जाता है। सरकार के कार्यक्रमों, परियोजनाओं को प्रभावशाली रूप से लागू करने के लिए प्रशासन काफी हद तक वित्तीय प्रबन्ध की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकार की साख वित्त प्रशासन पर निर्भर करती है। प्रजातन्त्र, समाजवाद, उदारवाद आदि अवधारणाओं को वित्त प्रशासन ही अर्थ प्रदान करता है। लॉयड जार्ज ने तो सरकार को ही वित्त मान लिया है। कौटिल्य ने कहा है कि 'सभी उद्यम वित्त पर निर्भर करते हैं इसलिए सर्वाधिक ध्यान सार्वजनिक कोष पर रखना चाहिए।' आधुनिक युग में सरकार के व्यय से असाधारण वृद्धि होने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि श्रेष्ठ वित्तीय सिद्धान्त, उपकरण तथा पद्धति एवं प्रक्रिया का विकास किया जाए ताकि धन का सदुपयोग हो सके और अपव्यय, व्यर्थता, फिजूल–खर्ची, धोखाधड़ी, दोहरापन और घपलों को रोका जा सके। भारत जैसे विकासशील देशों में वित्त प्रशासन आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण का कार्य भी करता है।

एम॰ जे॰ के॰ थावराज ने वित्त प्रशासन की तुलना शरीर की रक्त संचार व्यवस्था से की है। जिस प्रकार संचार व्यवस्था रक्त को संचालित एवं नियंत्रित करता है, उसी प्रकार वित्त प्रशासन भी प्रशासन के शरीर में धन द्वारा प्रत्येक अंग को जीवन शक्ति पहुँचाकर जीवित रखता है तथा उसकी कार्यक्षमता बढ़ाता है। "उनके अनुसार वित्त प्रशासन उस व्यवस्था से संबंधित है जो संस्थाओं को सुरक्षित रखने तथा उनकी वृद्धि करने के लिए आवश्यक धन के साधनों को उत्पन्न, नियन्त्रित तथा वितरित करता है।" इस प्रकार वित्त प्रशासन अब प्रशासकीय व्यवस्था का सहभागी बन गया है। इसके मुख्य अभिकरणों में (i) विधानपालिका (ii) कार्यपालिका, (iii) योजना आयोग और (iv) लेखा परीक्षा आदि शामिल हैं। वित्त प्रशासन मुख्यतया बजट के माध्यम से कार्य करता है।

बजट (Budget)

बजट प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। इसे वित्तीय प्रशासन का केन्द्र बिन्दु माना जाता है। यह कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका द्वारा नियंत्रण करने का प्रभावशाली साधन है। इससे राज्य की वित्तीय अवस्था का ज्ञान होता है तथा सरकार की आय और व्यय सम्बन्धी नीति का पता चलता है। यह कुशल राजस्व प्रबन्ध का आधार है। समाज विज्ञान विश्वकोश (Encyclopaedia of Social Sciences) के अनुसार, "बजट प्रणाली का वास्तविक महत्त्व इस कारण है कि यह किसी सरकार के वित्तीय मामलों में क्रमबद्ध प्रशासन की व्यवस्था करता है।" राजस्व सम्बन्धी प्रबन्ध में अनेक क्रियाओं की एक विस्तार शृंखला रहती है, जैसे राजस्व तथा व्यय का अनुमान, राजस्व तथा विनियोग अधिनियमों का लेखा प्रशिक्षण तथा प्रतिवेदन। इन क्रियाओं का संचालन वर्णन डब्ल्यू एफ॰ विलोबी ने इस प्रकार किया है, "पहले तो एक निश्चित समय, प्रायः एक वर्ष के लिए सरकारी प्रशासन को चलाने के लिए जिन व्ययों की आवश्यकता होती है, उनका अनुमान लगाया जाता है, और इन व्ययों की पूर्ति के लिए धन के प्रबन्ध सम्बन्धी प्रस्ताव होते हैं। इन अनुमान के आधार पर राजस्व तथा विनियोग अधिनियम पारित किये जाते हैं, जो स्वीकृत कार्यों के लिए वैद्य अधिकार प्रदान करते हैं। इसके आधार पर विभिन्न कार्यरत विभागों द्वारा राजस्व एवं विनियोग खाते खोले जाते हैं और इस प्रकार स्वीकृत धन का व्यय प्रारम्भ होता है। लेखा परीक्षण तथा लेखा विभाग यह देखने के

लिए इन लेखों की जाँच करता है कि वे ठीक हैं या नहीं, वास्तविक तथ्यों से संगति रखते हैं या नहीं और विधि के सभी प्रावधानों के अनुरूप हैं या नहीं। इसके बाद इन लेखाओं से प्राप्त सूचनाओं का सारांश निकाला जाता है और प्रतिवेदनों के रूप में उनको प्रकाशित किया जाता है। अन्त में इसके आधार पर अगले वर्ष के लिए नए अनुमान तैयार किए जाते हैं, और फिर वही चक्र पुनः आरम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया में बजट ही वह तन्त्र है, जिसके द्वारा एक ही समय में कई क्रियायें पारस्परिक रूप से सम्बद्ध की जाती हैं, और उनकी तुलना तथा परीक्षा की जाती है। इस प्रकार बजट राजस्वों तथा व्ययों का अनुमान मात्र न होकर कुछ और अधिक होता है। यह एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा प्रस्ताव, एक प्रलेख होता है जिसके माध्यम से कार्यपालिका, जो प्रशासन के संचालन के लिए उत्तरदायी सत्ता है, संसद के सामने विगत वर्ष की कार्यप्रणाली का लेखा जोखा, सरकारी कोष की वर्तमान स्थिति और आने वाले वित्तीय वर्ष के कार्यक्रमों के लिए आय व्यय के प्रस्ताव पेश करती है। अतः बजट कार्य सम्बन्धी एक योजना है। वह आगामी वित्तीय वर्ष के लिए मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम को प्रतिबिम्बित तथा स्पष्ट करता है। यह सरकार के राजस्व तथा व्यय के विवरण मात्र से कहीं अधिक व्यापक वस्तु है। इसके मुख्य कार्यों में नियन्त्रण, प्रबन्धन, नियोजन, समन्वय आदि शामिल हैं। हूवर कमीशन ने बजट को सार्वजनिक नीति के नट और बोल्ट बताया है।

बजट के प्रकार (**Types of Budget**)

बजट को मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकारों में उल्लेखित कर सकते हैंः–

1. परम्परागत बजट (Traditional/Line-Item Budget)
2. निष्पादन बजट (Peformance Budget)
3. कार्यक्रम बजट (Programme Budget)
4. शून्य आधारित बजट (Zero Base Budget)
5. परिणाम बजट (Outcome Budget)

1. परम्परागत बजट (Line-Item Budget)

बजट सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों, योजनाओं तथा लक्ष्यों की औपचारिक अभिव्यक्ति करता है। निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए यह एक निश्चित कालिक कार्यक्रम होता है। यह नियंत्रण रखने तथा कुशलता को बढ़ाने का एक साधन है। बजट की परम्परागत व्यवस्था के अधीन कोई संगठन पिछले वर्ष के लिए अनुमोदित किये गये धन में बढ़ोतरी या कटौती करके उसको अगले वर्ष के बजट का आधार बनाता है। इसलिये यह प्रायः सुना जाता है कि पिछले साल के बजट नियतन में 20 प्रतिशत या 25 प्रतिशत बढ़ोतरी अगले बजट में की गई है। बजट की परम्परागत प्रणाली में पिछले वर्ष के खर्च को स्वतः ही ज्यों की त्यों अगले वर्ष के बजट में सम्मिलित कर लिया जाता है, बहस होती है तो केवल उस पर जो बढ़ोतरी की गई है। परम्परागत बजट प्रक्रिया में वित्तीय संसाधनों का आबंटन धन के ऐतिहासिक बंटवारे के आधार पर किया जाता है। इस राशि में कछ परिवर्तन किया जाता है ताकि वह नई क्रियाओं और चले रहे कार्यों में सम्भावित परिवर्तनों की व्यवस्था कर सके। बढ़ रही प्रतिस्पर्धा के कारण, नियमित तथा सार्वजनिक संस्थानों ने लागत नियंत्रण, उत्पादन तथा बजट का नियंत्रण जैसी कई तकनीकों को अपनाया है। परम्परागत बजट प्रमुखतया विधिक एवं लेखा सम्बन्धी साधन का काम करता है। इसमें विभिन्न विभागों की व्यय सम्बन्धी आवश्यकताओं पर प्रति वर्ष खर्च होने वाले अनुमानित राशि का समकन किया जाता है। समूचे व्यय को माँगों और अनुदानों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें व्यय के मदवार वर्गीकरण पर जोर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, स्थापना प्रभार उपस्कर तथा सामग्री।

फ्लेक्स निग्रो (Fleix Nigro) के अनुसार, "परम्परागत बजट स्वभावतः अधिक कठोर होता है। नियंत्रण सरकार द्वारा क्रय की गई प्रत्येक मदध्सेवा के लेखांकन द्वारा स्थापित किया जाता है।"

परम्परागत बजट का औचित्य (Relevance of Traditional Budget System)

परम्परागत बजट या 'लाइन आइटम बजट' उस काल की देन थी जब सरकार के कार्य सीमित थे। उस समय सार्वजनिक व्यय कम रहता था और कम से कम खर्च करने की धारणा प्रचलित थी। वित्त प्रशासन नीचे के कर्मचारियों को शंका की दृष्टि से देखता था और उन्हें नियन्त्रित करने के लिए नियन्त्रण की एक विशाल श्रृंखला उत्पन्न कर ली थी। सार्वजनिक व्यय पर कठोर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से बजट में व्यय अनुमानों को इंगित करते समय व्यय की प्रत्येक मद (Item) को पंक्तिवार लिखा जाता है। विधायिका के द्वारा हर एक अलग व्यय मद के लिए स्वीकृति दी जाती। व्यय की जिस मद को विधायिका अस्वीकृत कर दे उसे खर्च करने का कार्यपालिका को कोई अधिकार नहीं होता था एवं न ही कार्यपालिका अन्य मद पर उस धनराशि को खर्च कर सकती थी। ऐसी बजट व्यवस्था से प्रशासन की गति मन्द होना स्वाभाविक था। परम्परागत बजट का मुख्य उद्देश्य विधानपालिका द्वारा सरकार के वित्तीय व्यवस्था पर नियन्त्रण और वैधानिक उत्तरदायित्व को जताना था और इसी प्रकार का उत्तरदायित्व प्रशासन के अधीनस्थ स्तरों पर हो। इस प्रकार के नियन्त्रण तथा उत्तरदायित्व से सरकारी खर्च की निरन्तरता तथा वैधानिकता को कायम करना था जिनमें (i) आवंटित धन राशि (ii) इसे खर्च करने की स्वीकृति (iii) इनसे सम्बन्धित वित्तीय नियम व उपनियम शामिल थे। स्वाधीनता के बाद आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की शुरुआत की गयी। नव लोक प्रशासन आर्थिक मितव्ययिता तथा उत्तरदायित्व के स्थान पर विकास और सामाजिक समता को प्राथमिकता देने लगा। ब्रिटिश काल में व्याप्त अविश्वास तथा सन्देह के प्रशासनिक दृष्टिकोण स्वतंत्र भारत के नियोजित विकास में बाधक सिद्ध होने लगे। यह आवश्यकता महसूस हुई है कि हम अपने विकास कार्यक्रमों को शीघ्र पूरा करें ताकि आम व्यक्ति तक इसके लाभ शीघ्र पहुंच सकें। यदि परम्परागत वित्तीय प्रशासन की अवधारणाएँ विकास कार्यक्रमों के मार्ग में बाधक सिद्ध हों तो उन्हें सुधारा जाये, नवीन रूप दिया जाये। परम्परागत बजट में निम्नलिखित कमियाँ पाई जाती हैं :– (i) इसमें व्यय पर नियंत्रण रखने पर जोर होता है न कि खर्च के उद्देश्य पर। (ii) इससे मौजूदा कार्मिक स्थिति तथा प्रबंध एवं कार्य की दशााओं का पता नहीं चलता। (iii) इससे कार्यक्रम निविष्टियों और उत्पादों के मध्य संबंध का पता नहीं चल पाता। (iv) यह कार्य के वैकल्पिक माध्यमों को निर्धारित करने के लिए मार्गदर्शक का काम नहीं करता। (v) इससे प्रत्येक विकल्प के आपेक्षिक लागतों और लाभों का पता नहीं लग पाता। (vi) केन्द्रीय बजट अभिकरण लक्ष्यों की अपेक्षा वित्तीय लेखों और कार्यक्रमों के सम्पादन में ही अधिक रुचि लेते हैं। (vii) यह 'कल्याणकारी राज्य' की अपेक्षा 'पुलिस राज्य' के लिए अधिक उपयुक्त है। (viii) इसका इस्तेमाल केवल व्यय की वस्तुओं पर मदवार नियन्त्रण रखने के लिए किया जाता है।

2. निष्पादन बजट (Performance Budget)

समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए सरकार के पास संसाधन हमेशा सीमित मात्रा में होते हैं। इसलिए इन संसाधनों का – आर्थिक रूप से अधिक सक्षम ढंग से प्रयोग करना चाहिए। संसाधनों का सक्षम ढंग से प्रयोग करने के लिए सरकार विभिन्न व्यय प्रस्तावों का उनकी लागतों और लाभों के संदर्भ में आकलन करती है तथा उन कार्यक्रमों का चुनाव किया जाए ताकि उनका वास्तविक निष्पादन का स्तर संभावित परिणामों के निकट हों। वास्तव में उन्हीं बजट प्रस्तावों को शामिल करना चाहिए जिनका क्रियान्वयन किया जा सके। किसी भी बजट प्रस्ताव के क्रियान्वयन की सफलता उसके ठोसपन तथा सरकारी प्रशासन की कार्यक्षमता, पर्याप्तता और उनके चरित्र पर तथा सम्बन्धित परिस्थितियों पर निर्भर करती है। बजट प्रस्तावों के क्रियान्वयन से प्राप्त होने वाले वास्तविक परिणाम, प्रत्याशित परिणामों से भिन्न होते हैं, इसलिए हमें एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस होती है जिससे मूल्यांकन किया जा सके। इसका अभिप्राय यह है कि किसी एक परियोजना पर संसाधनों को व्यय करने का निर्णय

ही प्रबंधन (programming) है। इसके अन्तर्गत परियोजना क्रियान्वयन के प्रत्येक चरण में किये जाने वाले व्यय की मात्रा निश्चित कर दी जाती है। यह प्रोग्राम अपनी प्रकृति के अनुसार इससे संबंधित संभावित परिणामों को दर्शाता है। बजट के इस भाग को बजट प्रोग्रामिंग (budget programming) कहा जाता है। इसी परियोजना के वास्तविक परिणामों की जाँच करने के लिए परिक्षण किये जाते है कि परियोजना का वास्तविक परिणाम इसके प्रत्याशित परिणामों से कितने कम अथवा कितने अधिक हैं तथा इसके क्या कारण हैं? बजट के इस पक्ष को बजट निष्पादन (budget performaning) कहा जाता है। जैसा कि अमेरिका में हवर आयोग (Hoover Commission) ने कहा है कि बजट निष्पादन सरकार की क्रिया, कार्यकलापों और परियोजनाओं पर निर्भर करता है। (A performance budget is based upon activities] functions and project of the government) जब बजट बनाते समय इन दोनों पक्षों (निष्पादन व प्रोग्रामिंग) को ध्यान में रखा जाता है, तो उसे performance and programme budgeting(PPB) अथवा (Performance and programme budgeting system) (PPBS) कहा जाता है। कार्यकारिणी के स्तर पर सरकार की व्यय नीति के निर्माण और निष्पादन में सुधार PPBS के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। सार्वजनिक व्यय के परम्परागत उपागम में कार्यकारिणी को विधायिका के प्रति जवाबदेह माना गया है तदनुसार कानून बनाए गए हैं। कार्यकारिणी (executive) को इन कानूनों का निर्वाह करना ही पड़ता है। लेकिन एक समय के दौरान इस उपागम की कमियां उभर कर सामने आने लगी जिसके फलस्वरूप इस प्रक्रिया में प्रबंधकीय क्षमता व लोचशीलता के लिए कानूनों को सुधारने के प्रयास किए गए। PPB इस संदर्भ में किये गए अन्तिम प्रयासों में से एक है जिसके अन्तर्गत व्यय नीति के प्रतिपादन और क्रियान्वयन (formulation and execution) में सुधार किए गये हैं। PPBS का औचित्य कुछ आधारभूत परिकल्पनाओं पर आधारित हैं जो निम्नलिखित हैं :–

(i) यह हमारी आर्थिक समस्याओं की आधारभूत प्रकृति को मान्यता प्रदान करता है तथा हमारी आर्थिक समस्याएं समाज की आवश्यकताओं की तुलना में संसाधनों की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होती है इन सीमित साधनों के लिए विभिन्न आवश्यकताओं को प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इनमें केवल उन्हीं को चुना जाता है जिनमें लागत लाभ अनुपात न्यूनतम होता है।

(ii) विभिन्न परियोजनाओं में से किसी एक परियोजना का चुनाव केवल उसकी उपयोगिता पर ही निर्भर नहीं करता वरन् उसके सक्षम क्रियान्वयन पर भी निर्भर करता है। इसके लिए सक्षमता का मापदंड और इसको प्राप्त करने के लिए युक्ति खोजनी होगी। इसके अतिरिक्त अल्प उत्पादन व अतिरिक्त उत्पादन की मात्रा से संबंधित निर्णय लेने का आधार भी होना चाहिए।

(iii) परम्परागत बजटीय प्रविधियों और नीतियों में कोई स्वचालित नियामक (Automatic Regulator) शक्ति नहीं होती है जो विधायिका और कार्यपालिका परियोजना की उपयोगिता के समाप्त होने के बारे में जानकारी दे सके। इस कार्य की पूर्ति के लिए ऐसी कार्यप्रणाली की आवश्यकता है जिसमें विभिन्न निर्णयों और उनके परिणामों को कसौटी पर परखा जा सके। प्रारम्भ में यह संभव है कि यह व्यवस्था अथवा कार्यप्रणाली अपूर्ण हो, लेकिन हमें समय व अनुभव के साथ इसमें सुधार की उम्मीद रखनी चाहिए इसलिए किसी भी स्थिति में अपूर्ण व्यवस्था का होना, व्यवस्था के लिए श्रेष्ठ होने से है। PPBS एक ऐसी ही व्यवस्था है।

(iv) एक उपयुक्त PPBS के अभाव में सरकारी निर्णयों में अव्यवस्था आ ही जाती है। सरकार में निर्णय लेने की प्रभावी प्रक्रिया सामान्यतः कई संस्थाओं के बीच विभाजित होती है जबकि किसी विशिष्ट परियोजना और उसके परिणामों की जाँच समग्र रूप में की जाती है, किसी विशेष अंश के संदर्भ में नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि ज्यादातर स्थितियों में एक से अधिक संस्थाओं के निर्णयों को समन्वित करने की आवश्यकता पड़ती है तथा विभिन्न स्थितियों व चरणों में उनके प्रभाव की जाँच की जाती है।

कभी–कभी तदर्थ समाधान (Adhoc solutions) बहुत ही उपयोगी जान पड़ते है लेकिन तदर्थता (Adhocism) के

आधार पर किसी नीति का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। जब हम वर्तमान को भविष्य के साथ जोड़ते हैं, तब यह एक विध्वंसकारी नीति उपकरण बन जाता है।

(v) यह समस्या इस तथ्य से और भी गंभीर बन जाती है कि सरकार द्वारा आर्थिक आधार पर बजटिंग (budgeting) की जाती है जबकि परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों की अवधि काफी अधिक होती है। इसलिए बजटीय प्रावधानों और नीतियों के बीच लम्बे समय तक समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त एक लंबे समय तक बजटीय प्रावधानों और कार्यक्रमों का प्रभावी मूल्यांकन भी करना पड़ता है। PPBS का मुख्य जोड़ फारवर्ड प्रोग्रामिंग (forward programming) पर होता है। यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि PPBS कोई मशीनी चीज नहीं है। यह ठोस मानवीय निर्णय का स्थान नहीं ले सकती है। PPBS का प्रमुख कार्य निर्णय में सहायता करना होता है ताकि सही निर्णय लिए जा सकें। PPBS मानवीय कारकों की लागत अथवाध्और लाभ के दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं करता। यह उन मानवीय कारकों को भी शामिल करता है जिनको मात्रात्मक रूप में मापा नहीं जा सकता। यहां पर विश्लेषण का व्यवस्थित होने का अर्थ यह नहीं है कि वह मात्रात्मक भी है। इस विश्लेषण का उद्देश्य सत्ताधिकारियों द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में सुधार करना है ताकि बेकार के मुद्दों को हटाया जा सके तथा उपयुक्त मुद्दों को समन्वित किया जा सके। जब भी मान्यताओं में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हो, उसे संशोधित करना संभव हो इस व्यवस्था में व्यय के प्रत्येक निर्णय को शामिल नहीं किया जा सकता परन्तु सरकार के सभी महत्वपूर्ण कार्यों को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों जैसे कोयला, विद्युत, पैट्रोलियम, गैस वायु, सौर ऊर्जा आदि। स्पष्ट है कि PPBS का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है। परंतु कार्यक्षेत्रों के विभिन्न उपक्षेत्रों में विभिन्न विश्लेषणात्मक तकनीकों व आधारों की आवश्यकता पड़ती है। प्रारंभ में यह संभव है कि सफलता कम मात्रा में मिले लेकिन उस उपागम की उपयोगिता को देखते हुए इसका महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अपनाया जाना अति आवश्यक है।

तकनीकी रूप में बजट निष्पादन व बजट योजना (budget programme) एक जैसे हैं परन्तु समरूप नहीं है। बजट योजना में तीन चरण होते हैं– प्रथम विभिन्न राजकोषीय उपायों और नीतियों के उद्देश्यों को परिभाषित करना। इन उपायों व नीतियों का प्रभाव योजना के उत्पादन व परिणामों पर पड़ता है। इस चरण के अन्तर्गत उन योजनाओं व नीतियों को शामिल किया जाता है जिन्हें किन्ही विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करना है। द्वितीय इस चरण की प्रकृति विश्लेषणात्मक है इस चरण में लागत–लाभ उपागम को अपनाया जाता है जिसके आधार पर विभिन्न विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चुनाव किया जाता है। सामान्यतया उस विकल्प को चुना जाता है जो आर्थिक दृष्टि से सर्वोत्तम हो। तृतीय इस चरण के अन्तर्गत वर्तमान योजनाओं और नीतियों को भविष्य में होने वाले लाभों, समस्याओं, लागतों व अन्य संदर्भो में देखा जाता है। समयावधी के अन्त में चुनी गई योजना की वास्तविक उपलब्धि की समीक्षा की जानी चाहिए। इस समीक्षा को बजट का निष्पादन (Performance budgeting) कहा जाता है बजट निष्पादन और बजट योजना एक दूसरे से संबधित होते हैं। एक के बिना दसरे का कोई अर्थ नहीं होता बजट योजनाएं सामान्यतया एक दीर्घकालीन "roling plan system" हो है अतः PPBS सरकार के लिए काफी महत्वपूर्ण होता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सरकार की कई सेवाओं के निष्पादन की माप करना संभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त कई प्रत्यात्मक (Conceptual) और अन्य समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, एक से अधिक योजनाओं का एक ही उद्देश्य हो सकता है अथवा एक योजना का एक उद्देश्य भी हो सकता है। इसी तरह, अदृश्य परिणामों (intangible results) से संबधित योजनाएं हो सकती हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि सुविधाओं में सुधार आदि।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर कृषि, उद्योग, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि के क्षेत्र में PPBS का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता। इसके लिए काफी बड़े पैमाने पर आंकड़ों की आवश्यकता पड़ती है जिनको प्राप्त करने में काफी लागत आती है। इसलिए विस्तृत विश्लेषण के लिए सरकार के कार्यों को मंत्रालय, विभाग

(Department) तथा अनुभाग (Section) स्तर पर बांट दिया जाता है। इससे परियोजना की विभिन्न चरणों पर समीक्षा करने में मदद मिल सकती है। भारत में सभी मंत्रालय व विभाग निष्पादन बजट की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं। यह निष्पादन बजट (Peformance Budget) विशिष्ट उद्देश्यों के संदर्भ में मुख्य परियोजनाओं, योजनाओं और क्रियाओं को प्रस्तुत करते हैं तथा पिछले वर्ष के बजट और उपलब्धियों की समीक्षा करते हैं। परंतु अभी यह बजटीय प्राविधियां अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सभी मंत्रालय व विभाग प्रत्येक क्षेत्र में निष्पादन के उचित मापदंड विकसित करें। इसके अतिरिक्त निष्पादन बजट के लिए उपयोगी सूचना सभी मंत्रालयों को उपलब्ध करायी जानी चाहिए तभी हम निष्पादन बजट में एक सतोषजनक मापदंड को प्राप्त कर सकेंगे।

भारत में निष्पादन बजट (Performance Budgeting in India)

भारत में निष्पादन बजट लागू करने की मांग सर्वप्रथम 1954 में लोकसभा–विवाद में की गई थी। इसके उपरान्त समय–समय पर यह मांग दोहराई जाती रही। संसद की अनुमान समिति ने अपनी बीसवीं रिपोर्ट 1957–58 में यह सिफारिश की थी कि बजट की उपलब्धि तथा कार्यक्रम बजट व्यवस्था में सम्मिलित की गई लागत और योजनाओं के उचित मूल्यांकन के लिए आदर्श होगी, विशेषतया बड़े पैमाने पर विकास–संबंधी क्रियाओं के लिए। निष्पादन बजट को लागू करना लक्ष्य होना चाहिए जिसे धीरे–धीरे और उत्तरोत्तर चरणों में बजट–संबंधी कोई गम्भीर व्यवस्था के बिना प्राप्त किया जाये। अनुमान समिति ने अपनी सिफारिश का समर्थन समय–समय पर अपनी सिफारिशों को दोहरा कर किया और कहा कि सार्वजनिक उपक्रमों को कहा जाए कि उपलब्धि तथा कार्यक्रम विवरण तैयार करें। 1961 में भारत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को इस बारे में आदेश जारी किये और कहा कि वे संसद को पेश करने के लिए व्यापार जैसे बजट के अतिरिक्त ऊपर लिखित विवरण भी भेजें। विदेशी विशेषज्ञों की सिफारिशों, लोक–प्रशासन के भारतीय संस्थान तथा योजना आयोग ने भी उपलब्धि बजट के लिए आंदोलन में अपने प्रयत्नों से योगदान दिया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने सरकार को सिफारिश की कि 1969–70 के बजट से शुरू होकर दो साल के भीतर–भीतर सरकार के सभी संगठनों और विभागों में निष्पादन बजट को लागू किया जाए जो विभाग अथवा संगठन विकास कार्यक्रमों पर सीधा नियंत्रण रखते हैं। सरकार इस समय सारणी पर न टिक पाई। इसने निर्णय किया कि सभी विकास संबंधी विभागों के द्वारा धीरे–धीरे निष्पादन बजट को लागू किया जाए। इससे पूर्व भी वित्त मंत्रालय ने एक मसौदा तैयार किया था जिसका शीर्षक था चुने हुए संगठनों के निष्पादन बजट 1968–69 जो संसद के सामने अप्रैल, 1968 में पेश किया गया जिसमें चार मंत्रालयों विभागों के बजटों का विकल्प प्रस्तुतीकरण था और जो परम्परागत बजट मसौदों के पूरक के रूप में पेश किया गया। तब से अधिकाधिक विभागों के लिए निष्पादन बजट तैयार किये जाते रहे हैं। 1977–78 तक भारत सरकार के लगभग 32 विकास संबंधी विभागों को इस योजना के अधीन सम्मिलित कर लिया गया था। यह प्रक्रिया चल रही है। कई राज्य सरकारों ने भी विकास–संबंधी विभागों में उपलब्धि बजट तैयार करने शुरू कर दिये हैं।

निष्पादन बजट का इतिहास (History of Performance Budget)

निष्पादन बजट का प्रचलन वित्त प्रशासन में अभी कुछ ही वर्षों से शुरू हुआ है, परन्तु आज यह इसका एक अंग हो गया है। जब हम वित्त प्रशासन में सुधार की बात करते हैं तो निष्पादन बजट का नाम स्वतः ही आ जाता है। निष्पादन बजट परम्परागत बजट से बहुत भिन्न है। परम्परागत बजट जिसे 'लाइन–आइटम बजट' भी कहते हैं कर्मचारी, भवन, सज्जा आदि व्यय की मदों को ध्यान में रख कर बनाया जाता है। इस बजट से इतना ही पता चलता है कि कितना सार्वजनिक धन कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना अन्य मदों पर। इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि सार्वजनिक धन के व्यय से कितनी उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। इसी कमी को निष्पादन बजट पूरा करता है। निष्पादन बजट विशिष्ट उद्देश्यों व कार्यों पर केन्द्रित रहता है। यह बताता है कि कितने कार्य सम्पादित करने का विचार है।

परम्परागत बजट या 'लाइन आइटम बजट' उस काल की देन थी, जब सरकार के कार्य संकीर्ण होते थे अतः सार्वजनिक व्यय कम रहता था, और प्रयत्न भी यही किया जाता था कि कम से कम खर्चा हो। साथ ही, वित्त प्रशासन मध्यम व निम्न श्रेणी के कर्मचारियों को सदैव शंका की दृष्टि से देखता था, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने नियंत्रण की एक विशाल श्रृंखला उत्पन्न कर ली थी। निश्चय ही, इससे प्रशासन की गति मंद हो गयी पर औपनिवेशिक शासन को इससे क्यों परेशानी होती। स्वतन्त्र भारत में औपनिवेशिक उद्देश्य अर्थहीन बन गए। अपनी चतुर्मुखी उन्नति के लिए भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया गया और इन योजनाओं के अन्तर्गत सार्वजनिक व्यय बेतहाशा बढ़ने लगा। इस नयी राजनीतिक परिस्थिति में मितव्ययता तथा उत्तरदायित्व के पुराने विचार महत्वहीन हो गये। वास्तव में इन विचारों से देश की प्रगति में बाधा ही पड़ने लगी, क्योंकि जैसी कहावत है कि पैसा बचाने के चक्कर में रूपया खो देते है तथा सन्देह के प्रशासनिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र भारत में बधिक सिद्ध होने लगे। आज आवश्यकता यह है कि हम अपने विकास कार्यक्रमों को जल्दी–जल्दी पूरा करें ताकि इनके फल लोगों तक पहुंच सकें। ऐसे समय सन्देह एंव शंका की प्रक्रियाएं उपयोगी सिद्ध नहीं होती।

निष्पादन बजट की परिभाषा सीधी है। इस प्रकार का बजट सार्वजनिक व्यय को कार्यों, प्रोग्रामों तथा कृतियों में प्रकट करता या दिखाता है। इस प्रकार निष्पादन बजट परम्परागत बजट से इस अर्थ में भिन्न है कि परम्परागत बजट केवल यह बताता है कि कितना रूपया कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना फर्नीचर पर, कितना सज्जा आदि पर। भारतीय प्रशासकीय सुधार आयोग (1966–1970) के अनुसार निष्पादन बजट सरकारी क्रियाओं को कार्यों, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं में प्रकट करने की एक प्रक्रिया है। इस प्रकार के बजट का वर्णन सबसे पहले अमेरिका के हूवर कमीशन ने 1949 में किया था। हूवर कमीशन ने सिफारिश की थी कि बजट को कार्यों, क्रियाओं तथा परियोजनाओं की रूपरेखा में होना चाहिए। जब बजट इस भांति बनने लगेगा तो यह स्पष्ट होने लगेगा कि क्या कार्य सम्पादित किये गये हैं या क्या सेवाएं दी जा रही हैं। निष्पादन बजट, बजट बनाने का एक नया तरीका प्रस्तुत करता है। परम्परागत बजट तो यह बताता है कि कितना खर्चा कर्मचारियों पर हुआ, कितना स्टेशनरी पर, कितना गाड़ियों पर, आदि। इस प्रकार का बजट तो केवल साधनों तक ही अपने को सीमित कर लेता है। मुख्य चीज तो यह है कि कर्मचारियों, स्टेशनरी आदि पर खर्चा किस काम को पूरा करने पर किया गया; अर्थात् सम्पादित होने वाला काम निष्पादन बजट का केन्द्र बिन्दु हो जाता है। निष्पादन बजट एक संगठन के उद्देश्यों का विश्लेषण करता है, और फिर इसके अनेक कार्यों के अन्तर्गत व्यय दिखाया जाता है।

यहां यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि कार्य (function), कार्यक्रम (programme) तथा परियोजना (activity or project) के विशेष अर्थ होते हैं। कार्य के अन्तर्गत कार्यक्रम तथा परियोजनाएं आती हैं। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा विभाग का कार्य है– शिक्षा। इस कार्य के अन्तर्गत कार्यक्रम हो सकता है– 'प्राथमिक शिक्षा', लेकिन इस कार्यक्रम के अन्तर्गत परियोजनाएं भी आती हैं, जैसे स्कूल भवन निर्माण, शिक्षकों का प्रशिक्षण आदि।

पारम्परिक बजट निर्माण व निष्पादन बजट निर्माण में अन्तर

(**Distinguish between Traditional and Performance Budgeting**)

सन् 1950–62 तक भारतीय बजट के अन्तर्गत वित्तीय पहलुओं पर जोर दिया जाता रहा है। इसी कारण इसमें वास्तविक लक्ष्यों और उपलब्धियों के साथ वित्तीय परिव्ययों का अर्न्तसम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया था। नियोजित अर्थव्यवस्था और सरकारी क्रियाकलापों की जटिलता एवं बढ़ते हुए परिमाण के सन्दर्भ में भारतीय बजट व्यवस्था को नई दिशा प्रदान करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसके परिणामस्वरूप नई बजट व्यवस्था उभरकर सामने आई। इस नई बजट तकनीकी का संबंध विकासात्मक दायित्वों और योजना के लक्ष्यों को पूरा करने से है। यह आशा कि जाती थी कि यह बजट तकनीक सरकार के प्रकार्यात्मक क्षेत्रों, कार्यक्रमों और क्रियाकलापों की अर्थव्यवस्था में

सरकार के प्रयासों का व्यापक चित्र प्रस्तुत करेगी। इन सबके अतिरिक्त इस नई बजट तकनीकी में निवेशों को उत्पादों के साथ एकीकृत करने का प्रयास किया गया जिससे परम्परागत बजट प्रणाली कहा जाता है जिसकी भारत में शुरूआत अंग्रेजों द्वारा की गई। परम्परागत बजट में क्रय के मदों पर जोर दिया जाता है जिन पर खर्च किया जाना होता है। इसमें व्यय के उद्देश्य को स्पष्ट नहीं किया जाता है। इसलिए परम्परागत बजट केवल विभिन्न अभिकरणों तथा उनके व्यय के लिए आवंटित राशि को ही अभिव्यक्त कर सकता है। इससे केवल विधायी नियंत्रण में ही सुविधा होती है। भारत में यह पद्धति सौ वर्षों से भी अधिक समय तक चलती रही। परम्परागत बजट प्रमुखतया विधिक एवं लेखा संबंधी साधन का काम करता है। इसमें विभिन्न विभागों की व्यय संबंधी आवश्यकताओं पर प्रति वर्ष खर्च होने वाले अनुमानित राशि का समेकन किया जाता है। समूचे व्यय को मांगों और अनुदानों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें व्यय के मदवार वर्गीकरण पर जोर दिया जाता है उदाहरणार्थ, स्थापना प्रभार उपस्कर तथा सामग्री। फ्लेक्स निग्रो (Fleix-Nigro) के अनुसार "परम्परागत बजट स्वभावतः अधिक कठोर होता है। नियंत्रण सरकार द्वारा क्रय की गई प्रत्येक मद/सेवा के लेखांकन द्वारा स्थापित किया जाता है।" (The traditional budget is more rigid in nature. Control is secured by accounting for each item/service purchased by the Government.)

परम्परागत बजट में निम्नलिखित कमियां पाई जाती है :

1. इसमें व्यय पर नियंत्रण रखने की सुविधा होती है तथा इससे निर्णायकों की इकाई लागत और कार्यक्रमों के मूल्यांकन में मदद मिलती है।
2. इससे मौजूदा कार्मिक स्थिति तथा प्रबंध एंव उपस्कर की दशाओं का पता नहीं चलता है।
3. इससे विधान निर्माण को यह पता नहीं चल पाता कि उसका निर्वाचक किसी विशिष्ट परियोजना से किस प्रकार प्रभावित होता है।
4. इसका नागरिकों के लिए कोई शैक्षिक महत्व नहीं होता है।
5. इससे कार्यक्रम निविष्टियों और उत्पादों के मध्य संबंध का पता नहीं चल पाता है
6. यह कार्य के वैकल्पिक माध्यमों को निर्धारित करने के लिए मार्गदर्शक का काम नहीं कर सकता है।
7. इससे प्रत्येक विकल्प के आपेक्षिक लागतों और लाभों का पता नहीं लग पाता है।
8. परिणामस्वरूप केन्द्रीय बजटीय अभिकरण लक्ष्यों की अपेक्षा वित्तीय लेखों और कार्यक्रमों के सम्पादन में ही अधिक रूचि लेते हैं।
9. यह 'कल्याणकारी राज्य' की अपेक्षा 'पुलिस राज्य' के लिए अधिक उपयुक्तहै।
10. इसका इस्तेमाल व्यय की वस्तुओं पर मदवार रखने के लिए किया जाता है।

निष्पादन बजट निर्माण (Performance Budgeting)

परम्परागत बजट निर्माण की कमियों को दूर करने के उद्देश्य से ही निष्पादन बजट निर्माण शुरू किया गया जिसने अब पूरी तरह से परम्परागत बजट निर्माण का स्थान ग्रहण कर लिया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त यह पहली बार संयुक्त राज्य अमेरिका में बजटीय तकनीक के रूप में शुरू किया गया। 1950 से अफ्रीकी सरकार ने इसे ग्रहण किया और बाद में एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के कई देशों ने इसे अपनाया। संयुक्त राज्य अमेरिका के हूवर आयोग (1949) ने इसे संयुक्त राज्य अमेरिका में लागू करने का सुझाव दिया था। प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, "कार्य–निष्पादन बजट कार्यों, कार्यक्रमों, कार्यकलापों तथा परियोजनाओं के तहत सरकारी संकार्यों

को प्रस्तुत करने की एक प्रविधि है।" एस. एस. विश्वनाथन के शब्दों में, "निष्पादन बजट निर्माण एक ऐसा विस्तृत संक्रियात्मक दस्तावेज है जिसे कार्यक्रमों, क्रियाओं के तहत तैयार किया जाता है, प्रस्तुत किया जाता है और क्रियान्वित किया जाता है। इसमें उनके वित्तीय भौतिक पहलू घनिष्ठ रूप से अन्तर्ग्रन्थित रहते हैं।" निष्पादन बजट का अति महत्वपूर्ण उद्देश्य सम्पादित किए जाने वाले कार्य तथा प्रदान की जाने वाली सेवा को ठीक–ठीक परिभाषित करना और उस कार्य या सेवा पर कितनी वित्तीय लागत आएगी उसका वास्तविक अनुमान लगाना है।

पीटर एन. डीन ने निष्पादन बजट निर्माण के पांच महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में सुझाव दिया है जोकि निम्नलिखित हैः–

1. सूचना के प्रयोजनों हेतु सरकारी बजट का कार्यक्रमों एंव क्रियाकलापों में उप–विभाजन जोकि समान उद्देश्यों या संकार्यो वाली अभिज्ञात इकाइयों के द्योतक होते हैं।
2. बजट वर्ष के लिए प्रत्येक कार्यक्रम तथा क्रियाकलाप के संक्रियात्मक उद्देश्यों का पता लगाना।
3. प्रत्येक कार्यक्रम के लिए बजट निर्माण और लेखांकन।
4. उत्पादों तथा क्रियाकलापों के निष्पादन का मापन।
5. मानक और मानदंड स्थापित करने के लिए परिणामी आंकड़ों का इस्तेमाल करना ताकि लागत और निष्पादन का मूल्यांकन हो सके। तथा सरकारी संसाधनों का अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग हो सके। उन विकासशील देशों के लिए परिणामोन्मुख बजट की आवश्यकता जरूरी है जहां निवेश योग्य संसाधन कम हों तथा विकास में गतिरोध अधिक होता हो। आधुनिक कल्याणकारी राज्य के लिए बजटीय निष्पादन का माप अधिक महत्वपूर्ण होता है। अब केवल निष्पादन बजट निर्माण से ही संभव हैं। यह परिणामोन्मुख बजट होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्पादन बजट की प्रमुख विशेषताओं का निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है :–

1. यह बजट आबंटन के जरिए सरकारी कार्यक्रमों को नियंत्रित करता है। यह कार्यक्रमों, क्रियाकलापों तथा कार्यों केरूप में सरकार कार्यों को प्रस्तुत कर के किया जा सकता है।
2. सार्वजनिक नीतियों को सरकारी वित्तीय संक्रियाओं के प्राकार्यात्मक वर्गीकरण के जरिए पता लगाने का प्रयास किया जाता है।
3. स्पष्टतया अभिज्ञात लागत अपरिव्ययों के माध्यम से ही राजकीय निष्पादन की समीक्षा की जा सकती है।
4. साधनों की अपेक्षा साध्य पर ही ध्यान दिया जाता है।
5. यह स्पष्टतया सरकारी खर्चे के उद्देश्यों को परिभाषित कर सकता है।
6. प्रत्येक सरकारी कार्य–निष्पादन की लागत का ठीक–ठीक अनुमान लगा सकता है।
7. यह लक्ष्यों का पहले ही निर्धारण कर सकता है जिन पर सरकारी विभागों के निष्पादन का समय–समय पर मूल्यांकन किया जा सकता है।
8. परिमाणात्मक तथा मात्रात्मक रूप में कार्यकुशलता तथा कार्यमापन के लिए यह एक आधार का काम करता है।
9. विगत वर्ष के निष्पादन का अभिलेख बजट के लिए भावी अनुमान का काम कर सकता है।
10. इससे जोर उपलब्धि के साधन से हटकर स्वयं उपलब्धि पर चला जाता है। कार्य–निष्पादन बजट तैयार करने के लिए कृषि, शिक्षा, उद्योग और स्वास्थ्य जैसी सरकार की प्रकार्यात्मक श्रेणियों का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक प्रकार्यात्मक श्रेणी को 'कार्यक्रमों' में विभाजित किया जाता है (जैसे स्वास्थ्य को प्राथमिक,

बाल तथा जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों में विभाजित किया जाता है।) फिर प्रत्येक कार्यक्रम को क्रियाकलापों में उपविभाजित किया जाता है जिन्हें फिर से आगे परियोजनाओं में विभाजित किया जाता है। इस दृष्टि से निष्पादन बजट निर्माण की चार प्रावधाएँ होती हैं :–

1. सभी सरकारी क्रियाकलापों के प्रकार्यात्मक वर्गीकरण का समेकन।
2. राजकोषीय प्रबंध प्रणाली का विकास करना तथा लागत प्रतिवेदन।
3. पर्याप्तता और इकाई लागतों के संबंध में सरकारी निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए उपयुक्त सांख्यिकी माप–तौल की विधि का विकास करना।
4. सार्वजनिक नीतियों के निर्माताओं को समय–समय पर प्रतिपुष्टि प्रदान करने के लिए निष्पादन मूल्यांकन करना।

निष्पादन बजट में किए गए विभिन्न वर्गीकरण मुख्यतः बजट के तीन महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते हैं जो कि निम्नलिखित हैं :

(क) बजट निर्माण;

(ख) आर्थिक विश्लेषण; और

(ग) बजट का क्रियान्वयन और जवाबदेही।

एक वर्गीकरण से इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति न होने पर भी दूसरे वर्गीकरण का सहारा लिया जाएगा और इस प्रकार उद्देश्य और वर्गीकरण के बीच एक जटिल नेटवर्क तैयार हो जाता है। इसमें निम्नलिखित पहलू समाविष्ट होते हैं :

1. आर्थिक स्वरूप : यह सरकारी स्थितियों एवं नीतियों के बारे में तर्कपूर्ण निर्णय हेतु उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराने के लिए होता है जिससे आर्थिक गतिविधियों के संयोजन एवं स्तर पर प्रभाव पड़ता है।
2. प्रकार्यात्मक स्वरूप : यह क्रियान्वयन स्तर पर तथा विधायी पुनरीक्षा के लिए होता है।
3. कार्यक्रम : इसके द्वारा सरकार की एक ही प्रकार के क्रियाकलापों को एक समूह में रखा जाता है।
4. निष्पादन : इसके द्वारा सरकारी निष्पादन के परिणात्मक और मात्रात्मक माप के लिए निष्पादन इकाई का विकास किया जाता है।
5. संगठनात्मक इकाई : इसके द्वारा बजट को सरकार के संगठनात्मक आवश्यकता वाली संरचना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
6. उद्देश्य : इसके द्वारा सरकारी व्यय के उद्देश्यों को उद्घाटित किया जाता है।

निष्पादन बजट निर्माण के गुण (Merits of Performance Budgeting)

परम्परागत बजट की तुलना में निष्पादन बजट निर्माण के प्रायः निम्नलिखित गुण होते हैं :

1. यह परम्परागत बजट की बहुत सी कमियों को पूरा करता है।
2. इसे आधुनिक वित्तीय प्रशासन के एक औजार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।
3. इसके माध्यम से नीति और निष्पादन, निवेश और उत्पाद, सरकारी कार्यक्रमों और गतिविधियों एंव वित्तीय पहलुओं के 15 मध्य पारस्परिक संबंध स्थापित होता है।

4. इससे बजटीय प्रक्रिया में सुधार होता है तथा इसका संबंध राजकोषीय नीति–निर्माण से होता है।
5. इससे वास्तविक सरकारी निष्पादन का विश्लेषण संभव होता है।
6. इससे वित्तीय जवाबदेही और विधायी नियंत्रण की बेहतर प्रणाली का विकास हो सकता है।
7. इससे सरकारी कार्यों की लेखा परीक्षा की प्रक्रिया सुगम होगी।
8. इससे सरकार की दीर्घावधिक विकास नीतियों का प्रभावी परिणामोन्मुख मूल्यांकन हो सकेगा।
9. यह वित्तीय प्रशासन में दूरगामी सुधारों का प्रवर्तक होगा।
10. इससे सरकार के वित्तीय लेन–देन में अपव्यय और अकुशलता को दूर करने में मदद मिलेगी।
11. यह दिशोन्मुख तथा अधिक विकासात्मक होता है।
12. यह उत्तरदायित्व का निर्धारण करता है तथा राजस्व और व्यय के विकल्पों का सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

निष्पादन बजट की समस्याएं और सीमाएं (Problems and Limitations of Performance Budgeting)

परम्परागत बजट की तुलना में निष्पादन बजट निर्माण के समक्ष निम्नलिखित समस्याएं आती है :–

1. सरकारी निष्पादन का सदैव आसानी से पता नहीं चल पाता है और प्रायः इसका परिणाम भी सुस्पष्ट नहीं होता है।
2. सरकारी अभिकरणों की बहुत सी परिसम्पत्तियों का इकाई लागतों के अनुसार हिसाब नहीं रखा जा सकता है।
3. लेखा शीर्षों को विकास शीर्षों के साथ जोड़ना एक जटिल कार्य है।
4. इससे सरकारी निष्पादन का परिमाणात्मक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।
5. संगठनात्मक इकाइयों के समनुरूप प्रकार्यों एवं कार्यक्रमों की वास्तविक श्रेणियां कुछ न कुछ कठिन होती है।
6. इससे बजट प्रक्रिया में प्रशासनिक त्रुटियों का केवल समाधान ही हो सकता है। यह प्रशासनिक तथा संगठनात्मक कमियों को दूर करने का कोई मात्र साधन नहीं है।
7. इससे कागजी कार्य काफी बढ़ जाता है और समय की भी बरबादी होती है।
8. इसके लिए प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर वित्तीय विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है और इस प्रकार यह खर्चीली प्रक्रिया है।
9. इसके लिए एक सुसंगठित सूचना प्रणाली की आवश्यकता होती है अन्यथा इससे प्राप्त नहीं हो सकता है।
10. संसाधनों का पुनर्नियोजन एक संवेदनशील मुद्दा है जिसे केवल तकनीकी प्रविधियों से ही नहीं सुलझाया जा सकता है।
11. इस कार्य में योजना तथा योजना–भिन्न व्यय का कोई महत्व नहीं होता है।

प्राक्कलन समिति ने अपनी बीसवीं रिपोर्ट में निष्पादन बजट निर्माण की प्रक्रिया अपनाने की सिफारिश की थी। प्रशासनिक सुधार आयोग (1968) ने संघ तथा राज्य सरकारों से यह जोरदार अपील की थी कि वे निष्पादन बजट निर्माण की प्रक्रिया अपनाएं। 1968 में चार केन्द्रीय मंत्रालयों ने इस प्रक्रिया को अपनाया। प्राक्कलन समिति ने

अपनी 60वीं रिपोर्ट में औद्योगिक उपक्रमों के लिए तथा 70वीं रिपोर्ट में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए यह प्रक्रिया अपनाने का सुझाव दिया। 1965 में योजना आयोग की योजना परियोजनाओं संबंधी समिति (सी.ओ.पी.पी.) ने इस मामले का अध्ययन किया। 1966 में निष्पादन बजट के संबंध में एक कार्यकारी दल गठित किया गया जिसने इसे अपनाने की व्यवहार्यता का अध्ययन किया। अध्ययन दल ने सुस्पष्ट कारणों से भारत में निष्पादन बजट धीरे–धीरे शुरू करने की नीति का समर्थन किया। 1968–69 में निष्पादन बजट चार केन्द्रीय मंत्रालयों में शुरू किया गया जो 1970–71 तक बढ़कर 7 मंत्रालयों तक हो गया। वित्त मंत्रालय के बजट प्रभाग ने इसके लिए अनुवर्ती उपाय किए। बहुत से निचले तथा मध्यम स्तर के अधिकारियों को निष्पादन बजट–निर्माण का प्रशिक्षण दिया गया। यह प्रशिक्षण गृह मंत्रालय के सचिवालय प्रशिक्षण विद्यालय में दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए भारतीय लोक प्रशासन संस्थान (आई.आई.पी.ए.) ने यह प्रशिक्षण प्रदान किया। बहुत से राज्य सरकारों ने भी निष्पादन बजट निर्माण शुरू किया जिसे सर्वप्रथम पंजाब राज्य ने अपनाया। 1978–79 तक प्रायः सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों ने इसे अपना लिया।

आज प्रायः सभी विकासशील देशों में निष्पादन बजट–निर्माण अधिक पसन्द किया जाता है। भारत ने इसे सही समय पर अपनाया है। तथापि, इसे शुरू करने में सरकार के समक्ष बहुत सी कठिनाइयां आई हैं। लेकिन इन कठिनाइयों को वित्तीय विशेषज्ञों द्वारा दूर किया जा सकता है। निष्पादन बजट निर्माण की सफलता बहुत कुछ कार्मिकों के प्रशिक्षण, विकासशील सूचना प्रणाली तथा सभी स्तर पर एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की उपस्थिति पर निर्भर करती है।

कार्यक्रम बजट (Programme Budget)

कार्यक्रम बजट प्रक्रिया को सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका के कई संघीय उपक्रमों में आरम्भ किया गया। परन्तु सरकारी स्तर पर पूर्णतया संघीय सरकार के पी॰पी॰बी॰एस॰ अथवा नियोजन–कार्यक्रम–बजट–व्यवस्था (Planning-Programming-Budgeting-System) के माध्यम से 1960 के दशक में ही अपनाया गया। मूल तौर पर इसका विकास अमेरिका के प्रतिरक्षा विभाग में किया गया था। इस बजट व्यवस्था का उद्देश्य प्रबन्धकों की इस बात में सहायता करना था ताकि वे अपने बजट के संसाधनों का आवंटन अक्लमंद, पारदर्शी तथा प्रभावी निर्णय के आधार पर कर सके। कार्यक्रम बजट प्रक्रिया अन्य बजट प्रक्रियाओं से इसलिए भिन्न है कि इसका केन्द्र बिन्दु प्रभावकारिता है। निष्पादन जैसी अन्य बजट प्रक्रियाएं जो कुशलता को प्रोत्साहित करती है, पर्याप्त नहीं समझी गई। पी॰पी॰बी॰एस॰ के समर्थकों का कहना है कि सरकार को कुशलता की अपेक्षा प्रभावकारिता को प्राथमिकता देनी चाहिए। एक कुशल सेना का कोई लाभ नहीं जब तक कि वह विजयी सेना न हो। लर्नर तथा जॉन वानत (A.W. Lerner and John ¡nat) का विचार है कि कार्यक्रम बजट से जुड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए धन खर्च करने का सबसे उत्तम तरीका क्या है?

कार्यक्रम बजट को तैयार करने के लिए अमुक पग उठाने पड़ते हैं।

(i) सबसे पहले संगठन को यह निश्चित करना होगा कि उसके लक्ष्य क्या हैं?

(ii) प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न विकल्पों की पहचान करना

(iii) प्रत्येक विकल्प के लागत और लाभ की संख्यात्मक ढंग से तुलना करना और जिस विकल्प पर कम से कम लागत कर अधिक से अधिक लाभ (या प्रभावकारिता) प्राप्त हो, उसे बजट में शामिल करना। बजट मसौदे में कार्यक्रम मूल लेखाकरण इकाई होता है। उदाहरणतया– एक वातावरण सुरक्षा अभिकरण बजट को प्रदूषण अनुसंधान, विधि लागू करना, लोक शिक्षण और सामान्य प्रशासन जैसी श्रेणियों में बांट देगा। प्रदूषण अनुसंधान के विस्तृत कार्यक्रम को शोर, प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण जैसी उप–श्रेणियों में उप–विभाजित किया जायेगा। तब इनको निश्चित कार्यक्रमों तथा उनके विकल्पों में धन खर्च करने के लिए बांटा जायेगा। प्रत्येक विकल्प पर विचार

किया जायेगा कि उनमें से कौनसा बजट में सम्मिलित किया जाये। कभी कभी यह स्पष्टीकरण भी दिये जायेंगे कि एक निश्चित विकल्प को क्यों चुना गया। कार्यक्रमों के विकल्पों की संख्यात्मक तुलना पी॰पी॰बी॰एस॰ की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। लागत–लाभ विश्लेषण (cost-benefit analysis) तथा व्यवस्था विश्लेषण (system analysis) कार्यक्रम बजट प्रक्रिया में केन्द्रीय महत्त्व रखते हैं।

विशेषताएं (Characteristics of Programme Budget)

व्यवस्था सम्बन्धी धारणा (Systems concept) कार्यक्रम बजट प्रक्रिया का आधार होती है। यह इस कल्पना को लेकर चलती है कि सरकार के सभी तत्त्वों को निकट अंतर्ग्रथन (Intervined) है ताकि एक नीति के एक पक्ष में परिवर्तन से शेष सभी पर प्रभाव पड़ता है। लीवाईन, पीटर्ज तथा थामसन (C.H. Levine, B. Guy Peters and Frank J. Thompson) उस कार्यक्रम बजट प्रक्रिया जिसका अमेरिका की संघीय सरकार में पालन किया जा रहा है, की छः मुख्य विशेषतायें बताते हैं :–

(i) सरकार के मुख्य उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की पहचान करना अनिवार्य है। कार्यक्रम बजट प्रक्रिया सरकार के केन्द्रीय लक्ष्यों तथा प्राथिमकताओं से आरम्भ होती है, न कि विभागों या अभिकरणों द्वारा की गई पहल से जैसा कि परम्परागत बजट में होता है।

(ii) निश्चित लक्ष्यों के अनुकूल कार्यक्रमों का विकास किया जाना चाहिए, और इनको किस प्रकार प्राप्त किया जाएगा? कार्यक्रमों की विश्लेषणात्मक व्याख्या होनी चाहिए और यह जरूरी नहीं कि वे वर्तमान संगठनों के अंतर्गत रहें।

(iii) कार्यक्रमों में संसाधनों का आबंटन करना अनिवार्य है। निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बजट में समूची लागत का ब्यौरा देना जरूरी है। यह दिखाना अनिवार्य है कि यह लागत लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित तथा प्रभावकारी साधन है।

(iv) कार्यक्रम बजट प्रक्रिया में संगठनों का अधिक महत्त्व नहीं है। यह इस धारणा को लेकर नहीं चलती कि प्रत्येक कार्यक्रम एक ही अभिकरण के भीतर रखना जरूरी है अथवा कि एक अभिकरण को केवल एक ही कार्यक्रम से जोड़ना चाहिए।

(v) कार्यक्रम बजट प्रक्रिया अवधि एक वर्ष से आगे चली जाती है जोकि परम्परागत बजट में सामान्य अवधि मानी जाती है। बजट बनाते समय कार्यक्रमों के दूरगामी तथा मध्यकालीन परिणामों पर ध्यान देना अनिवार्य है।

(vi) बजट बनाने वाले व्यवस्थित ढंग से विकसित कार्यक्रमों का विश्लेषण करते हैं। अधिक प्रभावकारी तथा कुशल स्वरूप के लिए वे वर्तमान कार्यक्रम संरचनाओं के विकल्पों की छानबीन करते हैं। उनसे यह आशा की जाती है कि वे अपने कार्यक्रमों का औचित्य सिद्ध करें ताकि ये देखा जा सके कि वे कार्यक्रम उनके विकल्पों से बेहतर हैं।

कार्यक्रम बजट के दोष (Defects of the Programme Budget)

माना कि पी॰पी॰बी॰एस॰ लागत प्रभावी है और कार्यक्रमों को पूरा करना इसका लक्ष्य है, फिर भी यह प्रक्रिया अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने इसको जानसन (Johnson) प्रशासन काल में अपनाया था, परन्तु 1970 से प्रारम्भ होने वाले दशक के शुरू में ही इसे छोड़ दिया। इसके दोष लाभों से कहीं अधिक हैं। इसके मुख्य दोष इस प्रकार हैं:–

(i) कार्यक्रम बजट प्रक्रिया बहुत महंगी है।

(ii) कार्यक्रम बजट बनाने के लिए जिस प्रयास तथा समय की आवश्यकता होती है, वह कम नहीं है, और वह अन्य प्रकार के बजटों के बनाने के प्रयासों और समय से कहीं अधिक है।

(iii) कभी–कभी कार्यक्रमों से होने वाले लाभों के संख्यात्मक मापन विकसित करने असम्भव हो जाते हैं।

(iv) इसमें सरकारी पदसोपान के उच्च स्तरों पर ही निर्णय किये जाते हैं।

(v) सभी विकसित रणनीतियों का विश्लेषण करने की खोज एक विभाग या अभिकरण को विवश करती है कि वह अपने वर्तमान कार्यक्रमों को आलोचना के लिए पेश करे।

(vi) विकल्पित नीतियों के कारण सम्बन्धित विभाग अथवा अभिकरण की कार्य सार्थकता कम हो जाती है। इसे अपनी नीति चयनों को लिखित रूप में उचित ठहराना पड़ता है। परन्तु कई संगठनों में पी॰पी॰बी॰एस॰ की कुछ तकनीकें अभी भी बची हुई हैं। यदि किसी संगठन के पास कुशल कर्मचारी हैं तो इसकी तकनीकें बजट के नये प्रस्तावों और सुझावों के मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण है।

निष्पादन बजट एवं कार्यक्रम बजट में अन्तर

(Difference between Performance and Programme Budget)

निष्पादन बजट कई नामों से जाना जाता है। पहले इसे कार्यकारी बजट या कर्मण्यता बजट कहते थे। हूवर आयोग ने इस प्रकार के बजट को निष्पादन बजट की संज्ञा दी थी। कुछ वर्षों से 'कार्यक्रम बजट' शब्द भी लोकप्रिय हो गया है। प्रारम्भ में तो निष्पादन बजट व कार्यक्रम बजट पर्यायवाची ही थे, परन्तु कालान्तर में इनमें भेद बताए जाने लगे। यह कहा जाने लगा कि कार्यक्रम बजट निष्पादन बजट पर सुधार है। निष्पादन बजट तथा कार्यक्रम बजट में निम्न भेद हैं :–

1. निष्पादन बजट संगठन के कार्यों पर जोर देता है, कार्यक्रम बजट, इसके विपरीत, संगठन के कार्यों को तो साधन मानता है।
2. निष्पादन बजट प्रबंध के आंतरिक कार्यों को सुधारने पर ध्यान देता है तथा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनेक तकनीकों का प्रयोग करता है। कार्यक्रम बजट, इसके विपरीत, पद्धति विश्लेषण पर विश्वास करता है।
3. निष्पादन बजट संगठन की कुशलता मापने का एक यंत्र है, जबकि कार्यक्रम बजट मूलतः विभिन्न कार्यक्रमों के लिए पैसा आबंटित करने का एक मुख्य साधन है और प्रभावशीलता को प्रोत्साहित करता है।
4. शून्य आधारित बजट (**Zero-Base Budget**) (**Z.B.B.**)

निष्पादन अथवा कार्यक्रम बजट की भांति शून्य–आधाारित बजट भी युक्ति प्रधान बजट होता है। उद्देश्य प्रबंधन [Management by Objectives (MBO)] की भांति इसे भी निजी क्षेत्र के लोक प्रशासन में अपनाया गया है जो अभी तक संयुक्त राज्य अमरीका तक ही सीमित रहा है यह एक उभरती हुई प्रक्रिया है जिसे अमरीका में विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संगठन तथा राज्य और नगर की सरकारों ने अपनाया है। 1969 में ZBB का विकास एक कम्पनी में किया गया जिसका नाम था 'टैक्सास इन्स्ट्रूमेंटस' (Texas Instruments)। सरकार में प्रथम बार इसको जार्जिया के गवर्नर जिमी कार्टर (Gimmy Carter) ने 1973 के वित्तीय वर्ष के बजट तैयार करने के लिए अपनाया था। (जिमी कार्टर तत्पश्चात् संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति बने थे)। भारत में केन्द्रीय वित्त मंत्री वी. पी. सिंह ने संसद की सलाहकार समिति को बताया कि सरकार जीरो बेस बजट को पहले छोटे पैमाने पर 1986–87 में अपनाएगी और फिर 1987–88 में बजट बनाने में अपनाएगी। ZBB प्रक्रिया में किसी भी योजना के पक्ष में बजट में धन देने से पूर्व उसका आलोचनात्मक पुनरावलोकन किया जाता है। भारत तथा दूसरे देशों में परम्परागत बजट की प्रक्रिया के अधीन प्रथा यह है कि यह जाने बिना कि क्या अमुक योजना अच्छी चल रही है अथवा नहीं और क्या इसको जारी रखना उचित भी है अथवा नहीं, बढोत्तरी के आधार पर धन दे दिया जाता है। ZBB प्रक्रिया में योजना के प्रभाव, लक्ष्यों, निशानों, उपलब्धि के मानकों, मूल्यांकन और विभिन्न प्रकार की क्रिया संबंधी पारस्परिक तुलना से संबंधित

भारी मात्रा में संख्यात्मक आंकड़ों की आवश्यकता होती है। भारत की स्थिति में ZBB की सहायता से सरकार बड़ी संख्या में ऐसी योजनाओं और उनसे संबधित उपक्रमों को समाप्त कर सकती है, चाहे वे वार्षिक योजना में सम्मिलित की गई है अथवा नहीं, जबकि उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है अथवा कर्मचारियों तथा अवसरंचना पर पूंजी लगाने के बावजूद भी यह प्रभावकारी ढंग से शुरू नहीं हो पाई। यदि इस प्रक्रिया को ठीक प्रकार लागू किया गया तो इससे केन्द्रीय सरकार के राजस्व खाते का घाटा 1981–82 में 294 करोड़ रू. से बढ़कर 1985–86 में लगभग 5,634 करोड़ बन गया।

गाई पीटर्स (Guy Peters) के अनुसार ZBB के पीछे सबसे मौलिक विचार यह है कि किसी भी विभाग या उपक्रम को प्रतिवर्ष शुरू से लेकर अपने समूचे बजट को उचित ठहराना होगा। इसके विपरीत परम्परागत अथवा बढ़ोत्तरी के बजट में यह कल्पना की जाती है कि बजट का एक आधार (पिछले वर्ष मंजूर किए गए धन की मात्रा) जो पक्का है और प्रश्न केवल ये है कि इसमें क्या बढ़त की जाए। ZBB की खोज इस समस्या का समाधान करने के लिए की गई। शून्य आधारित बजट–प्रणाली का अर्थ (**Meaning of Zero-Base Budgeting**) जीरो बेस बजटिंग की कई व्याख्याएं की जाती हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हर चीज को बाहर फेंक दिया जाता है और फिर नए सिरे से हर वस्तु को प्रारभ्भ से शुरू किया जाता है अथवा यह पहिए की फिर से खोज करना है। स्पष्टतः यह धारणा ठीक नहीं है। पीहर (Pyhrr) का कथन है कि व्यावहारिक शब्दावली में जीरो बेस बजटिंग का अर्थ सभी कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना हैं। विकल्पों और कार्यक्रमों की उपलब्धि के मूल्यांकन पर कभी–कभी हमें फिर से पुनर्विचार करना होता है और एक कार्यक्रम को फिर से निर्देशित करना होता है। ऐसी स्थिति में जरूर हम हर वस्तु को बाहर फेंक देते हैं और पुनः फिर से प्रक्रिया शुरू करते हैं। किन्तु अधिकतर स्थितियों में कार्यक्रम जारी रहेंगे उनमें सुधारों और परिवर्तनों का समावेश कर लिया जाएगा, क्योंकि अधिकतर कार्यक्रमों में विश्लेषण का केन्द्र–बिन्दु कार्यक्रमों की कुशलता और प्रभावकारिता के मूल्यांकन और विभिन्न स्तरों पर जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनकी प्राथमिकताओं और मूल्यांकन पर होगा।

जीरो बेस बजटिंग में जिन दो मूल प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, वे हैं :–

(1) क्या वर्तमान क्रियाएं कुशल तथा प्रभावकारी हैं ?

(2) क्या वर्तमान क्रियाओं को समाप्त कर दिया जाए अथवा कम कर दिया जाए, ताकि उच्च प्राथमिकता वाले नए कार्यक्रमों को धन दिया जा सके अथवा वर्तमान बजट को कम कर दिया जाए। ZBB कार्य पद्धति में यह अनिवार्य है कि प्रत्येक संगठन अपने सभी कार्यक्रमों और क्रियाओं को चाहे वे चल रही हैं अथवा नई हैं, व्यवस्थित ढंग से उन पर पुनर्विचार करे और उनका मूल्यांकन करे, क्रियाओं पर पुनर्विचार उत्पादन अथवा उपलब्धि तथा लागत के आधार पर किया जाए, ताकि प्रबन्धकीय निर्णय करने पर बल दिया जा सके, संख्योन्मुख बजट बन सके और विश्लेषण को बढ़ाया जा सके। ZBB एक दृष्टिकोण है। यह एक जड़ कार्यविधि नहीं है जिसको सभी संगठनों में समान रूप से लागू किया जा सके। इस प्रक्रिया को प्रत्येक संगठन की विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल ढालना जरूरी होगा। किन्तु इस दृष्टिकोण के लिए चार मूल कदम हैं जो इस प्रकार हैं :–

(i) निर्णय करने वाली इकाइयों की पहचान करना।

(ii) निर्णय समूह" में प्रत्येक निर्णय इकाई का विश्लेषण करना।

(iii) सभी निर्णय समूहों का मूल्यांकन तथा श्रेणीकरण करना, ताकि खर्चे के लिए प्रार्थना की जा सके।

(iv) विस्तृत परिचालन बजट तैयार करना जिनमें वह निर्णय–समूह प्रतिबिम्बित हों जिनको बजट के खर्चे में स्वीकृति दे दी गई है। संगठन में प्रत्येक बजट इकाई को विभिन्न स्तरों के वित्तीय बंटवारे के लिए आकस्मिकताओं का विकार करना होगा। वित्तीय बंटवारे का अधिकतम मूल स्तर बचे रहने का न्यूनतम खर्च,

(जिसे सर्वाईवल पैकेज कहते हैं), होगा – अर्थात् वित्तीय बंटवारे का वह न्यूनतम स्तर जो संगठन के जीवित रहने के लिए और अपनी मौलिक सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए चाहिए, संगठन की इकाइयों को यह भी पूछा जा सकता है कि यदि उनके बजटों में 5 अथवा 10% की कटौती कर दी जाए, तो वह क्या करेंगे और अपनी सेवाओं के वर्तमान स्तरों को बनाए रखने के लिए उन्हें कितनी आवश्यकता है।

शून्यात्मक बजट प्रणाली की प्रक्रिया (Process of Zero Base Budgeting)

शून्यात्मक बजट प्रणाली की प्रक्रिया के कई सोपान हैं। इसका कार्यान्वयन सोपानों के निष्पादन के क्रम में होता है। यह सोपान इस प्रकार हैं :–

(1) विभागीय–इकाइयों का समेकन,

(2) विभागीय उद्देश्यों तथा लक्ष्यों का अभिप्रेषण,

(3) निर्णय–घटकों की सरंचना तथा विकास,

(4) वरीयता–क्रम का निर्धारण,

(5) शीर्षस्थ–प्रबन्धन स्तर पर विचार विमर्श,

(6) अन्तिम वरीयता क्रम निर्धारण एवं स्वीकृति,

(7) वित्तीयन

किसी भी संगठन में इस प्रणाली को लागू करने के लिए विभागीय प्रखण्डों को इकाइयों के रूप में समेकित किया जाता है। इस प्रखण्ड के प्रधान का दायित्व सम्बन्धित इकाई के आर्थिक कार्यकलापों से सम्बन्धित प्रारूप तैयार करना होता है। इकाई के आर्थिक प्रारूप का निर्धारण संगठन में व्यावसायिक उद्देश्यों तथा निर्धारित लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। शीर्षस्थ प्रबन्धन, संगठन के उद्देश्य तथा वार्षिक बजट के लक्ष्यों की प्रत्येक इकाई को सचित करता है। प्रत्येक इकाई का प्रधान अपनी आवश्यकतानुसार निर्णय लेता है कि प्रत्येक गतिविधि का आर्थिक प्रारूप क्या होगा ? इस गतिविधि से सम्बन्धित प्रारूप को "निर्णय घटक" कहा जाता है। हर घटक की संगठन की उपयोगिता के अनुसार लागत लाभ तथा निष्पादन शैली के सन्दर्भ में समीक्षा की जाती है। इसे निर्णय घटकों का विकास कहा जाता है। फिर "निर्णय घटकों" को संगठन की आवश्यकता तथा अन्य पक्षों के अनुसार वरीयता क्रम प्रदान किया जाता है, तदुपरान्त इन्हें शीर्षस्थ प्रबन्धन को विचारार्थ अग्रसारित किया जाता है। इस स्तर पर अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इकाई प्रधान से विचार विमर्श किया जाता है। इसके पश्चात पुनः सभी घटकों को संगठन स्तर पर वरीयता क्रम प्रदान किया जाता है, तत्पश्चात् संगठन के उपलब्ध आर्थिक संसाधनों की क्षमता के अनुसार वरीयता प्राप्त घटकों का वित्तीय अनुमोदन तथा अन्तिम रूप से वित्तीय किया जाता है।

शून्यात्मक बजट प्रणाली से लाभ (Merits of Z.B.B.)

शून्यात्मक बजट प्रणाली की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिसकी वजह से इसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रतिस्थापित किया जा रहा है। इस प्रणाली में बजट प्रक्रिया पूर्णतया वरीयता विश्लेषण पर आधारित है। इसमें संगठन या राष्ट्रों के उद्देश्यों तथा सामयिक आवश्यकताओं को पूर्ण महत्व प्रदान किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रणाली में राष्ट्रीय अभीष्ट लक्ष्यों का पूर्ण समावेश रहता है।

दूसरे, इस प्रणाली में नियोजन तथा बजट निष्पादन में कारणगत सम्बन्ध होता है। प्रस्तावित नियोजन का मूल्यांकन, विश्लेषण तथा उपयोगिता ही बजट का स्वरूप निर्धारित करती है।

तीसरे, इस प्रणाली में निर्णय घटकों की संरचना तथा विकास लागत तथा लाभ के विश्लेषण के आधार पर

की जाती है। यदि कोई कार्यकलाप, संगठन के उद्देश्यों के अनुसार निश्चित लागत के लिए अपेक्षित लाभ नहीं प्रदान करता है तो उसे अनुत्पादक समझा जाता है। इस प्रकार यह प्रणाली वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

चौथे, इसकी निष्पादन प्रक्रिया में सभी स्तर के अधिकारी सम्मिलित रहते हैं जिसे प्रत्येक स्तर पर कर्तव्य बोध का वातावरण बना रहता है। इसके अतिरिक्त नैतिकता भी प्रत्येक स्तर पर दायित्व निर्वाह में प्रेरणा देती है। निष्क्रिय साधन भी सक्रियता प्राप्त करते हैं।

पांचवें, इस प्रणाली द्वारा बजट निष्पादन में पर्याप्त समायोजनशीलता रहती हैं यदि किसी कारणवश, संगठन के आर्थिक संसाधनों में कमी के कारण वित्तीय व्यवस्था प्रतिकूल हो जाती है अथवा वित्त में सापेक्ष कमी हो जाती है तो क्रम वरीयता प्राप्त "निर्णयघटकों को बजट प्रक्रिया से पृथक कर दिया जाता है। इससे न तो संगठन के उद्देश्यों पर प्रभाव पड़ता है और न ही संगठन की कार्य क्षमता पर। इस प्रकार यह प्रणाली वैज्ञानिकता पर आधारित है तथा साधारण परिस्थितियों में वास्तविकता के काफी समीप होने की विशिष्टता रखती है।

भारत में शून्यात्मक बजट प्रणाली अपनाने की कठिनाइयाँ

(Problems in Adoption of Z.B.B. in India)

भारतीय परिवेश में शून्यात्मक बजट प्रणाली के निष्पादन में कुछ मूलभूत अवरोधक तत्वों का आभास होता है। यह तत्व ही प्रणाली की सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। सर्वप्रथम कठिनाई भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त प्रशासन की निष्क्रियता ही परिलक्षित होगी, हमारे प्रशासक स्वयं कार्य करने में विश्वास कम करते हैं– दायित्व–अन्तरण के फलस्वरूप, लिपिक वर्ग की "बुद्धिमत्ता का शिकार" यह प्रणाली भी हो सकती है, जिस प्रकार 1968–69 में निष्पादन बजट प्रणाली का तिरस्कार किया गया, उसी प्रकार यह सम्भव है कि प्रशासक वर्ग इसका प्रत्यक्ष विरोध करे अथवा इसे असफलता के द्वार तक पहुंचा दे। दूसरे भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन में कर्मचारी संघों तथा परम्परावादी राजनीतिज्ञों का अमूल्य सहयोग है, कर्मचारियों में काम न करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। संघ के नेताओं का परम उद्देश्य संगठन को अगतिशील बनाना है. भारतीय उद्योगों में कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी का विरोध जिस प्रकार नेताओं ने किया है, उससे इस प्रणाली की सफलता पर प्रश्न चिह्न लगता प्रतीत होता है। यद्यपि परम्परावादी राजनीतिज्ञों का युग समाप्त–प्राय है तथापि कुछ सीमा तक उनकी आलोचना का शिकार होना निश्चित ही है। तीसरे, इस प्रणाली में क्षमतावान, बुद्धिमान तथा अनुभवी अधिकारियों की ही आवश्यकता है। ऐसा नहीं है कि हमारे यहां ऐसे अधिकारियों की कमी है, परन्तु जिस प्रकार जातिवाद, पक्षपात के कारण जिम्मेदार पदों पर अक्षम अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं, उससे यह प्रणाली अप्रभावित नहीं रह सकती है। वित्त सम्बन्धी मामलों में गैर वित्तीय भूमिका के अधिकारियों की नियुक्ति इसका स्पष्ट प्रमाण है।

चौथे, इस प्रणाली में आरम्भिक स्तर पर सम्प्रेषण, सूचनाओं तथा आँकड़ों से सम्बन्धित कार्य अधिक होता है। भारतीय परिवेश में निम्न सम्प्रेषण व्यवस्था सूचनाओं के संकलन तथा आँकड़ों के तथ्यपरक विश्लेषण में व्याप्त अक्षमता, इस प्रणाली की सफलता में मूलभूत रूप से बाधक सिद्ध होगी। आँकड़ों का संकलन इस प्रकार किया जाता है कि वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाये।

पाँचवें, भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रहण क्षमता (Adaptability) की कमी है, किसी भी तकनीकी ज्ञान को सम्पूर्ण रूप से समाहित करना, एक ही प्रयास में सम्भव नहीं है, प्राथमिक स्तर पर प्रखर विरोध होता है। वित्त मन्त्रालय द्वारा घोषित आदेश के अनुसार इसका पूर्णरूपेण उपयोग 1987–88 के बजट में किया गया। जबकि प्रत्येक स्तर पर नियुक्त दायित्वपूर्ण पदों के अधिकारियों को इसका समुचित ज्ञान भी नहीं है, जिससे वे इस प्रणाली के कार्यान्वयन में स्वयं बाधक सिद्ध होंगे।

सुझाव (Suggestions)

यदि भारत सरकार वास्तव में परम्परागत प्रणाली का परित्याग करने के लिए तैयार है, तो हमें अपनी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने पड़ेंगे अन्यथा इस उद्घोषणा का भी वही परिणाम, होगा जो 1968–1969 में निष्पादन बजट प्रणाली का हुआ था। इस दिशा में निम्नलिखित प्रयास करने होंगे।

(1) सर्वप्रथम, भारतीय नौकरशाही, राजनीतिज्ञों तथा कर्मचारी संघों के नेताओं की मानसिकता को पूर्णतया परिवर्तित करना होगा। यद्यपि राजनीतिज्ञों की मानसिकता काफी परिवर्तित हो रही है, फिर भी नौकरशाही व कर्मचारी संघों के बदलने में काफी श्रम करना पड़ेगा, इस दिशा में सरकार को प्रणाली से सम्बन्धित प्रचार व प्रसार करना चाहिए।

(2) सरकार को चाहिए कि देश में ऐसे बजट विशेषज्ञों का एक कैडर तैयार करे जो प्रत्येक स्तर पर नियुक्त अधिकारी को प्रशिक्षित कर सकें। उचित होगा कि सरकार उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन करे, जिसमें ख्याति प्राप्त अर्थशास्त्री, वित्त विशेषज्ञ एवं प्रबन्धकों का प्रतिनिधित्व हो।

(3) सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों की बागडोर प्रशासकों की जगह विशेषज्ञों को सौंपी जानी चाहिए, जिससे वे सरकार के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में उपक्रमों की व्यावसायिकता के आधार पर प्रबन्धन कर सकें, अधिकतर सरकारी उपक्रमों के घाटे में रहने के परोक्ष में यही कारण है।

(4) प्रत्येक इकाई स्तर पर बजट विशेषज्ञों, प्रबन्धकों तथा टेक्नोक्रेट्स की एक समिति का गठन किया जाये, इस समिति का स्वरूप इकाई के व्यवसाय पर निर्भर होना चाहिए।

(5) अधिक उपयुक्त तो यह होगा कि सरकार योजना आयोग की पद्धति पर "बजट आयोग" व "मूल्य आयोग" की स्थापना करे, जिसमें राष्ट्र के लब्धप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों, प्रबन्धकों, वैज्ञानिकों को सम्बद्ध किया जाये। सरकार को इन आयोग की सलाह पर ही बजट निष्पादन तथा "मूल्य निर्धारण" सम्बधी निर्णय लेने चाहिए। इससे सरकार को जन विरोध तथा अनावश्यक कठिनाइयों से दो चार नहीं होना पड़ेगा, क्योंकि हमारे देश में जब भी मूल्य वृद्धि होती है तो जन आन्दोलनों द्वारा आपूरित क्षति होती है, दूसरे सरकार की लोकप्रियता भी कम होती है।

(6) इस प्रणाली के निष्पादन की दिशा में आवश्यक वातावरण बनाया जाये। इसे कई अंशों में लागू किया जाये। एक साथ लागू करने से अनियमितितायें होंगी, जिससे बजट अपने उद्देश्य में विफल हो सकता है, प्रारम्भ में कुछ सरकारी उपक्रमों में इसे लागू किया जाये।

(7) प्रत्येक स्तर पर कम्प्यूटरों का समुचित प्रयोग किया जाये। इससे आँकड़ो के विश्लेषण, सूचनाओं के द्रुतगामी सम्प्रेषण में काफी सुविधा होगी, दूसरे बजट प्रक्रिया में समय ही बहुत कम लगेगा।

इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण होगा कि सरकार को इस दिशा में दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिए कि वह किसी भी दबाव में इसका परित्याग नहीं करेगी, तभी इसका समुचित लाभ हमारी व्यवस्था में परिलक्षित होगा।

नियन्त्रण (Control)

वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की समीक्षा (Scrutiny of Estimates by the Finance Ministry)

जब अनुमान सभी विभागों से वित्त मंत्रालय में पहुंच जाते हैं, तब वहां उनकी समीक्षा और छानबीन होती है। वहां पर्याप्त संशोधन होता है। तदनन्तर वे एकत्रित किये जाते हैं और उनके योगों के आधार पर भारत सरकार के बजट का एक रूप तैयार होता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि वित्त मंत्रालय की पूर्व अनुमति बिना अनुमानों में व्ययों की

वृद्धि नहीं की जा सकती। यदि कोई प्रशासकीय मंत्रालय किसी व्यय को अनिवार्य रूप से बढ़ाना चाहता है, परन्तु वित्त मंत्रालय उनको अस्वीकार कर देता है, तो वह विषय मंत्रिमंडल के समक्ष उपस्थित किया जाता है। कैबिनेट को उस पर अपना निर्णय देना पड़ता है, परन्तु प्रायः वह वित्त मंत्री के ही पक्ष में होता है। कैबिनेट को वैधानिक अधिकार है कि वह वित्त मंत्री की बात न माने, परन्तु व्यवहार में ऐसा होता नहीं, वित्त मंत्री की बात नहीं टाली जाती। वित्त मंत्रालय की इतनी महिमा क्यों है, उसकी अन्य मंत्रालयों के अनुमानों पर नियत्रण करने का अधिकार क्यों दिया जाता है ? इसके कारण मुख्यतया दो हैं–

- पहला कारण यह है कि वित्त मंत्रालय व्यय करने वाला विभाग नहीं है। वह इस स्थिति में है कि कर देने वाली जनता के हितों की रक्षा कर सके।
- दूसरा कारण यह है कि दूसरे सभी विभागों के खर्च के लिए उसी को धन की व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः यह उचित ही है कि उसको यह कहने का अधिकार हो कि अमुक व्यय न किया जाये।
- वित्त मंत्रालय प्रस्तुत अनुमानों की छानबीन वित्तीय दृष्टि से करता है। दूसरे शब्दों में, उसको यह मालूम है कि उपलब्ध धन कितना है। साथ ही किफायत करते हुए उसको यह देखना पड़ता है कि कहीं धन की कमी न पड़ जाये। वह यह नहीं देखता कि अन्य मंत्रालयों की नीति क्या है। उसको केवल यह देखना पड़ता है कि उसकी वित्तीय मांगें परी की जा सकती हैं या नहीं।
- किस दक्षता में वित्त मंत्रालय छानबीन करता है, यह देखने के लिए उसकी वह कार्यवाही देखनी चाहिए जो वह व्यय के नये प्रस्तावों पर करता है। यदि कोई नयी सामाजिक योजना या कोई नये प्रसार का प्रस्ताव होता है तो उसके ऊपर वह अनेक प्रश्न करता है। जैसे–

क्या यह प्रस्तावित योजना वास्तव में आवश्यक है? यदि आवश्यक है तो अब तक इसके बिना कैसे काम चला है? आज यह क्यों उठायी गई है? अन्यत्र क्या होता है? क्या ऐसी सेवा कहीं और है? इस पर व्यय कितना आयेगा? वह धन कहां से आयेगा? कहां से कटौती की जाये कि इसके लिए धन उपलब्ध हो सके? क्या यह संभव नहीं है कि आगे चलकर इसकी आवश्यकता ही न रहे? आदि आदि। बजट के ऊपर जो नियंत्रण भारत में वित्त मंत्रालय लगाता है, वही ब्रिटेन में कोष विभाग (Treasury) लगाता है और अमेरिका में 'बजट ब्यूरो' (Bureau of Budget) लगाता है।

वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों पर नियंत्रण की आलोचना

(Criticism of Finance Ministry's Control Over Estimates)

वित्त मंत्रालय के उपर्युक्त नियंत्रण की इधर हाल के वर्षों में तीव्र आलोचना हुई है। पहली बात यह कही जा सकती है कि उक्त नियंत्रण उस युग का अवशेष है। जब शासन कल्याण का नहीं, शांति और व्यवस्था का साधन था और देश की आर्थिक समृद्धि का उत्तरदायित्व जनता और समाज का था। सरकार को जो भूमि आदि से कर मिलता था, उसको वह बड़ी सावधानी से खर्च करती थी। प्रशासन के खर्चे से सदा किफायत की जाती थी। यहीं सरकारी बजट का मूल मंत्र था। आज स्थिति बदल गयी है। सरकार सार्वजनिक कल्याण के लिए उत्तरदायी है।

अतः मुख्य मन्तव्य व्ययों में किफायत करना न होकर लाभप्रद कार्यों में धन लगाना होना चाहिए। परन्तु, आज भी वित्त मंत्रालय प्रायः नई योजनाओं के लिए बार–बार इंकार ही करता रहता है। इससे प्रगति में अवरोध होता है। दूसरा विचार यह है कि वित्त मंत्रालय का अन्य मंत्रालयों पर नियंत्रण उचित एवं नैतिक नहीं है। यह नहीं कहा

जा सकता कि वित्त मंत्रालय के अधिकारी कभी गलती नहीं कर सकते, या वे जो कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं। जहां करोड़ों रुपयों का एक सीमित अवधि के भीतर व्यय करने की समस्या उठती है, वहां से सीधी और मोटी अक्ल से ही काम लेते हैं और 'नहीं' कह देना आसान समझते हैं। यह स्वाभाविक भी है। परिणाम यह होता है कि प्रस्तावित अनुमान स्वीकृत कर लिया जाता है, या सीधे–सीधे अस्वीकृत हो जाता है। बहुधा ऐसा होता है कि अधिकारी दूरदर्शिता नहीं बरत पाते और आज की छोटी–सी बचत के लिए कल के बड़े लाभ को छोड़ देते हैं। परम्परागत बड़े व्ययों को पास कर देते हैं, परन्तु किसी छोटे से नये प्रस्ताव पर अड़ जाते हैं। एक आलोचना की यह टिप्पणी की जाती है कि यदि राजकोष से कुछ हजार पौंड मांगे जाते हैं तो वह इंकार कर देता है, परन्तु यदि लाखों की मांग की जाये तो वह मान ली जाती है। तीसरी आलोचना यह है कि समकक्ष वित्त मंत्रालय का अन्य मंत्रालयों पर नियंत्रण उचित नहीं है। उसके लिए अधिक अच्छा यह होगा कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक अन्तर्विभागीय समिति स्थापित की जाये।

ये आलोचनाएं निःसार नहीं हैं। परन्तु, यह तो मानना ही पड़ेगा कि बजट को संतुलित करने के लिए नियंत्रण का होना आवश्यक है, वह वित्त मंत्रालय करे या राजकोष विभाग। इसके अतिरिक्त सभी विभागों में सहकारिता भी आवश्यक है। उसको देखने और लागू करने के लिए भी उक्त शक्ति की आवश्यकता है, अन्यथा अनियम, भ्रम, अपव्यय आदि की संभावना बनी रहेगी।

अपनाने में आने वाली कठिनाइयां (**Problems in a Adoption**) किसी भी देश की आर्थिक क्रियाओं की दिशा को निर्धारित करने में सरकार की बजट नीति का प्रमुख हाथ रहता है। बजट में आय और व्यय के अनुमान लगाये जाते हैं तथा व्ययों को पूर्ण करने हेतु विभिन्न प्रकार की पद्धतियों एवं साधनों को उपयोग में लाया जाता है। बजट शब्द फ्रेंच शब्द बजटे (Budgette) से लिया गया है जिसका आशय एक छोटे थैले से है। इस प्रकार बजट सरकार की आय एवं व्ययों का एक वार्षिक विवरण है। बजट को स्वीकृत करने के लिए विधन–मंडल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय बजट में (1) गत वर्ष के वास्तविक आय एवं व्यय (2) चालू वर्ष के आय एवं व्यय संबंधी स्वीकृत अनुमान, (3) चालू वर्ष एवं पिछले वर्ष के वास्तविक आय–व्यय संबंधी आंकड़े, (4) भावी वर्ष के बजट अनुमान, तथा (5) चालू वर्ष के दुहराये हुए आय–व्यय अनुमान प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होकर 31 मार्च को प्रतिवर्ष समाप्त होता है। किसी भी देश की आर्थिक क्रियाओं को निर्धारित करने में सरकार की बजट नीति का प्रमुख हाथ रहता है। बजट नीति में सरकार की आय, व्यय तथा ऋण संबंधी नीतियों को सम्मिलित किया जाता है। बजट के द्वारा एक देश की सही आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

5. परिणाम बजट (Outcome Budget)

आउटकम बजट या परिणाम बजट सरकारी स्कीमों से जुड़ी अव्यवस्था को समाप्त करने की कार्ययोजना है। यह सरकारी विभागों की परियोजनाओं में देरी के लिए, संसाधनों के दुरुपयोग के लिए जवाबदेही निश्चित करने की रणनीति है। यह मंत्रालयों के व्यक्तिगत व्यय, पूर्व बजटों का संकलन है। यह उन विभागों की नकेल कसने वाली व्यवस्था है जो साल में सिर्फ बजट राशि के आबंटन के समय सक्रिय होते हैं और फिर 'पैसा हजम, काम खत्म' वाली अजगरी निद्रा में लीन हो जाते हैं। आउटकम बजट उस भविष्य की ओर बढ़ाया गया कदम है, जिसमें किसी प्रधानमंत्री को यह शर्मनाक स्वीकारोक्ति न जारी करनी पड़े कि केन्द्र से चले एक रुपये में सिर्फ 15 पैसे आम आदमी तक पहुँच पाते हैं। इसमें मुख्य ध्यान

(i) योजनाओं तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर दिया गया है।

(ii) यदि कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में देरी होती है और लागत बढ़ने से हानि होती है तो उत्तरदायित्व तय करने के लिए व्यवस्था पर बल दिया जाए।

(iii) पुराने कार्यक्रमों को अनिश्चित समय के लिए जारी नहीं रखा जा सकता और उनकी हर वर्ष स्वतन्त्र तथा गहन जाँच पड़ताल होनी चाहिए। वर्ष के अन्त में एक प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि "क्या प्राप्त किया गया है?"

इस प्रकार आउटकम बजट विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागों की सफलताओं का रिपोर्ट कार्ड है। यह एक विधि है जिसके द्वारा– (i) पैसे के प्रवाह को निर्देशित किया जा सके। (ii) स्कीमों के क्रियान्वयन पर नजर रखी जाए। (iii) स्कीम के वास्तविक परिणाम पर नजर रखी जाए।

भारत में संयुक्त प्रगतिशील सरकार (UPA) का बहुचर्चित परिणाम बजट वित्तमंत्री पी॰ चिदंबरम द्वारा पहली बार संसद में 25 अगस्त, 2005 को प्रस्तुत किया गया। इस बजट में अलग–अलग मंत्रालयों के वित्तीय व्ययों की जानकारी देते हुए बताया गया कि किस मंत्रालय में कौन से मद पर कितना व्यय किया और क्या लक्ष्य प्राप्त किया। 751 पृष्ठीय इस दस्तावेज में 44 मंत्रालयों के 61 विभागों को सम्मिलित किया गया। रक्षा, विदेश और संसदीय कार्य सहित नौ मंत्रालयों और विभागों की लगभग सभी योजनाओं का विवरण इस दस्तावेज में है। इसके अंतर्गत केन्द्रीय मंत्रालयों से लिखित प्रतिबद्धता ले ली गई है कि वह बजट राशि को वर्ष के दौरान किन परियोजनाओं और कार्यक्रमों पर खर्च करेंगे और हर तिमाही के बाद उस परियोजना का कितना हिस्सा पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है। दूसरे शब्दों में, मंत्रालय पहले की तरह अप्रैल में आबंटित बजट राशि लेकर आराम नहीं फरमा सकेंगे। ऐसा नहीं होगा कि वित्त वर्ष पूरा हो जाए और मंत्रालय अपने हिस्से की 80 प्रतिशत राशि का उपयोग ही न कर पाएं, जैसा कि कई मंत्रालयों से शिकायत रही है। जो मंत्रालय निकम्मा साबित होगा, उसे सजा के तौर पर अगले वित्त वर्ष में कम बजट धनराशि मिलेगी। उसकी सुस्ती और अक्षमता को दर्ज किया जाएगा। जिम्मेवार विभाग प्रमुखों के स्थानान्तरण होंगे। पूरे साल के दौरान योजना आयोग इस बात की निगरानी करेगा कि कौन सा मंत्रालय अपने खुद के निर्धारित लक्ष्यों पर खरा उतर रहा है और कौन नहीं।

परिणाम बजट के चरण (Steps of Outcome Budget)

इसके मुख्य चरण इस प्रकार हैं :

(i) इसके अन्तर्गत हर साल की तरह फरवरी में आम बजट आएगा, जिसमें अगले साल के लिए राज्यों और मंत्रालयों को संसाधन बंटेगे।

(ii) फिर दूसरे आयाम के तौर पर मई–जून में आउटकम बजट आएगा, जिसमें मंत्रालय लिखकर बतायेंगे कि वे साल के दौरान उस आवंटित बजट राशि द्वारा कौन कौन सी परियोजनाओं को किस समय में, कितना पूरा करेंगे।

(iii) फिर वित्तवर्ष के अंत में निष्पादन बजट पेश होगा, जिसमें समीक्षा की जाएगी कि लक्ष्यों को किस हद तक पाया जा सका। इस त्रिआयामी ढांचे के अन्तर्गत परिणाम वितरण, पारदर्शिता और सदपयोग के श्रेष्ठ प्रतिफल दिये जा सकेंगे, ऐसा माना जा रहा है।

परिणाम बजट की शुरुआत कृषि मंत्रालय की समीक्षा से की गई है। कृषि हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ है किन्तु दसवीं पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा हो या सरकार का वार्षिक आर्थिक सर्वेक्षण, कृषि क्षेत्र का विस्तार ऋणात्मक नजर आता है। कृषि की उत्पादकता कम हो रही है। निवेशक की आर्थिक दुर्दशा ने वैज्ञानिक कृषि उत्पादन को ऋणात्मक दिशा में भेज दिया है। ऐसे में कृषि मंत्रालय का बजट समय से खर्च होना चाहिए जिससे

उत्पादकता बढ़े किन्तु क्षेत्र की व्यय सम्बन्धी उदासीनता कष्टप्रद है। यदि वर्ष के अन्तिम महीने में ही सभी राशि खर्च होनी है तो वार्षिक उत्पादन के सकारात्मक परिणाम नहीं आयेंगे। इसी प्रकार एयर इंडिया के लिए पुराने विमानों का नवीनीकरण और नए की खरीद और इसी तर्ज पर इंडियन एयरलाइंस के लिए भी 468.74 करोड़ एवं 911.73 करोड़ रुपये के प्रावधान किए गए हैं किंतु आगे कहा गया कि 50 विमानों की खरीद के लिए सरकार का अनुमोदन 2005–06 तक मिल जाने की आशा है। बजट व्यवस्था होने के बावजूद आवश्यक विमानों की खरीद करने में सरकारी अनुमति मिलने में इतना विलंब है तो निर्धारित पैसे भी समय सीमा में कैसे खर्च हो सकते हैं, परिणाम बजट केवल प्रशासनिक नहीं राजनीतिक निर्णय होने में विलंब की ओर संकेत करता है।

सीमावर्ती राज्यों में, 17 राज्यों के 92 जिलों के 345 खण्डों में सामाजिक आर्थिक विकास के कार्यक्रम केन्द्रीय सहायता से कार्यान्वित होते हैं। इस मद में 325 करोड़ रुपये निर्धारित हैं। चूँकि हिमाचल, जम्मू कश्मीर, उत्तरांचल, सिक्किम, अरुणाचल जैसे कुछ राज्य हैं जहां केवल छह महीने काम हो सकता है, शेष समय बर्फबारी रहती है इसलिए इन राज्यों का धनाबंटन अप्रैल में ही होना चाहिए जिससे अक्टूबर तक कार्य को पूरा किया जा सके। बजट को जून माह में पास किया गया इसलिए इन राज्यों के बजट परिणाम क्या आ सकेंगे?

विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से धन का आवंटन होता है। 785.40 करोड़ रुपये की धनराशि इस मद में निर्धारित थी। इस धन का आवंटन आयोग की ओर से विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के सामान्य विकास, शिक्षा के स्तर में सुधार, अनुसंधान, शोध कार्य को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। इतनी बड़ी धनराशि का व्यय सुनिश्चित करने का सही तकनीकी ढंग नहीं है। दसवीं योजना के प्रारम्भ में उच्च शिक्षा में प्रवेश 8.8 मिलियन था। इस योजना के अंत तक इसके 14 मिलियन तक हो जाने की संभावना है। इसलिए उच्च शिक्षा में गुणवत्ता के विकास के लिए और भी बजटीय समर्थन की आवश्यकता है, किन्तु इस धनराशि का उचित व्यय एक मुद्दा है।

सरकार ने स्वयं स्वीकार कर लिया है कि इस पैसे के उचित व्यय का भौतिक मूल्यांकन सरल नहीं है। देश के घटिया किस्म के संस्थानों में छात्रों द्वारा अंधाधुध नामांकन कराया जा रहा है। राज्य स्तर के विश्वविद्यालयों को राज्य सरकारों से अपर्याप्त निधियां मिल रही हैं जिससे उच्च शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। सरकार पर उच्च शिक्षा के विस्तार और उसकी गुणवत्ता में विकास का दोहरा दबाव है, इसे चुनौती रूप में स्वीकार नहीं किया गया तो उच्च शिक्षित डिग्रीधारी बेरोजगारों की लम्बी कतार हमारे तंत्र को बर्बाद कर सकती है। परिणाम बजट में स्वीकार किया गया है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में निधि की कमी के कारण गुणवत्ता में सुधार नहीं हो रहा है। देश में 309 विश्वविद्यालय हैं जिनमें से केवल 111 विश्वविद्यालयों को अनुदान मिलता है तथा 16 हजार महाविद्यालयों में से 2389 महाविद्यालयों को अनुदानित किया गया है। ऐसी दशा में अनदान से वंचित विश्वविद्यालय गुणवत्ता के सुधार की अपेक्षा रखना गलत है। कुछ उपयोगी पुस्तकें :–

1. जी॰एस॰ लाल, पब्लिक फाईनैन्स एण्ड फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, कपूर 1976
2. एम॰जे॰के॰ थावराज, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्ली, सुल्तान चन्द, 1978
3. आर॰के॰ सिन्हा, फिस्कल फेडरेशन इन इण्डिया, स्टर्लिंग, 1987
4. वैंकेट गिरि गोवदा, फिस्कल रवोलूसन इन इण्डिया, इन्डस, 1987
5. एम॰एम॰ सूरी, गवर्नमैंट बजटिंग इन इण्डिया, कामनवेल्थ, 1990
6. के॰एल॰ हांडा, एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल एण्ड जीरो बेस बजटिंग, नई दिल्ली, 1991

7. पी॰एल॰ जोशी एण्ड वी॰पी॰ राजा, टैक्नीक्स ऑफ जीरो बेस बजटिंग, हिमालय, 1988

8. आस्टिन ऐलन, जीरो बेस बजटिंग : ए डिसीजन पैकेज मेन्यूअल, 1979

कुछ संभावित प्रश्न

- बजट की परिभाषा दो, इसके सिद्धान्तों तथा महत्व का वर्णन करो।
- लाईन–आईटम तथा परफोरमेंस बजट में अन्तर बताएं।
- जीरो–बेस बजट क्या है? इसके लाभ तथा सीमाओं का वर्णन करो

अध्याय–5 (Chapter-5)

बजट प्रक्रिया : बजट निर्माण, बजट अधिनियम, बजट क्रियान्वयन
(Budget Process : Formulation of Budget, Enactment of Budget, Budget Execution)

रूपरेखा :–

– बजट निर्माण की शुरूआत

– बजट प्रस्तावों की वित्त मन्त्रालय द्वारा जाँच

– मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृति

– बजट अधिनियम : बजट का संसद में पेश होना, सामान्य वाद–विवाद, मांग अनुदानों पर वाद–विवाद, विनियोग बिल पर चर्चा, वित्त बिल पर चर्चा

– बजट राज्यसभा में

– बजट क्रियान्वयन : वित्तीय स्रोतों का एकत्रीकरण तथा वितरण, लेखा प्रणाली, लेखा **परीक्षा तथा प्रतिवेदन**

– सारांश

– कुछ उपयोगी पुस्तकें

– कुछ संभावित प्रश्न

♦♦♦

इकाई–**II (Unit-II)**

अध्याय–5

बजट प्रक्रिया : बजट निर्माण, बजट अधिनियम, बजट क्रियान्वयन

(Budget Process: Formulation of Budget, Enactment of Budget, Budget Execution)

बजट प्रक्रिया (Budget Process)

'बजट' शब्द फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बूजट' (Bougette) से लिया गया है, जिसका अर्थ है चमड़े का बैग या थैला। आधुनिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले इंग्लैण्ड में 1733 ई॰ में किया गया जबकि वित्तमंत्री ने अपनी वित्तीय योजना को लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया तो पहली बार व्यंग के रूप में यह कहा गया कि वित्तमंत्री ने अपना 'बजट खोला' तभी से सरकार की वार्षिक आय तथा व्यय के वित्तीय विवरण (Financial Statement) के लिये इस शब्द का प्रयोग होने लगा।

बजट की परिभाषा (Definition of Budget)

कुछ लेखकों ने बजट की परिभाषा अनुमानित आमदनियों तथा खर्चों के केवल एक विवरण के रूप में की है। अन्य लेखकों ने बजट शब्द को राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों (Revenue and Appropriation Act) का पर्यायवाची कहा है। Lerory Beaulien ने लिखा है कि "बजट एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत होने वाली अनुमानित प्राप्तियों तथा खर्चों का एक विवरण है, यह एक तुलनात्मक तालिका है जिसमें उगाही जाने वाली आमदनियों तथा किये जाने वाले खर्चों की धनराशियाँ दी हुई होती है; इसके भी अतिरिक्त, यह आय का संग्रह करने तथा खर्च करने के लिये उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा दिया गया एक आदेश अथवा अधिकार हैं" Rene Stourm ने बजट की परिभाषा इस प्रकार की है कि "यह एक लेख–पत्र है जिसमें सरकारी आय तथा व्यय की एक प्रारम्भिक अनुमोदित योजना दी हुई होती है।" जबकि G. Jeze ने बजट का वर्णन इस प्रकार किया है "यह सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियों (Receipts) तथा खर्चों का एक पूर्वानुमान (Forecast) तथा (Estimate) है, और कुछ प्राप्तियों का संग्रह करने तथा कुछ खर्चों को करने का एक आदेश है।" उपरोक्त परिभाषायें कम से कम दो प्रकार से दोषपूर्ण हैं। सर्वप्रथम इनमें यह नहीं कहा गया है कि बजट में विगत संक्रियाओं (Operations), वर्तमान दशाओं तथा साथ ही साथ भविष्य के प्रस्तावों से संबंधित तथ्यों का उल्लेख होना चाहिये। दूसरे, इन परिभाषाओं में बजट तथा 'राजस्व व विनियोजन अधिनियमों' के बीच कोई भेद नहीं किया गया है। इन दोनों में भेद किया जाना चाहिये। बजट तो प्रशासन के कार्य का प्रतिनिधित्व करता है और राजस्व व नियोजन अधिनियम व्यवस्थापिका अथवा विधान–मण्डल में कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बजट में, एकीकृत तथा व्यापक रूप में, उन सभी तथ्यों का समावेश किया जाना चाहिये, जोकि सरकार के विगत तथा भावी व्यय और राजकोष (Treasury) की आय तथा वित्तीय स्थिति से संबंध रखते हों। डब्ल्यू॰ एफ॰ विलोबी के अनुसार,

"बजट सरकार की आमदनियों तथा खर्चों का केवल अनुमान मात्र ही नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक हैं। वह (बजट) एक ही साथ रिपोर्ट, अनुमान तथा प्रस्ताव है अथवा उसे ऐसा होना चाहिये। यह एक ऐसा लेखपत्र (Document) है, अथवा होना चाहिए जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालिका धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता के समक्ष इस बात का प्रतिवेदन करती है कि उसने और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने गत वर्ष प्रशासन का संचालन किस प्रकार किया; लोक कोषागार की वर्तमान स्थिति क्या है? और इन सूचनाओं के आधार पर वह आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यक्रम की घोषणा संकेत करता है जिसके द्वारा कि एक सरकारी अभिकरण की वित्तीय नीति का निर्माण किया जाता है और यह बतलाती है कि उस कार्यक्रम के निष्पादन के लिए धन की व्यवस्था किस प्रकार की जाएगी।"

इस प्रकार, बजट वित्तीय कार्यों की एक योजना है। एक अन्य विद्वान ने बजट–पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया है कि "बजट–पद्धति एक ऐसी व्यवस्थित रीति है जिसके द्वारा भूत (Past) तथा वर्तमान से सूचनायें एकत्र की जाती हैं और तदनन्तर यह प्रतिवेदन किया जाता है कि वे योजनायें किस प्रकार क्रियान्वित की गई।"

प्रस्तावित बजट का स्वरूप (Form of the Proposed Budget)

प्रथम भाग (Part-1)

1. बजट में उन सभी विभागों तथा अभिकरणों के प्रशासन, संचालन तथा परिपालन के लिए किए जाने वाले सभी प्रस्तावित खर्चों का समावेश किया जाना चाहिए जिनके लिए कि व्यवस्थापिका या विधान–मण्डल (Legislature) द्वारा विनियोजन (Appropriation) किये जाने हों।
2. पूँजीगत प्रयोजनाओं (Capital Projects) पर किये जाने वाले सभी खर्चों के अनुमान सम्मिलित किए जाने चाहिए।

द्वितीय भाग (Part-II)

आय के स्रोत (**Sources of Income**)– कराधान (Taxation), उधार (Borrowing); घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) के द्वारा व कागजी मुद्रा जारी करके।

बजट के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम

(Economic and Social Implications of Budget)

आधुनिक बजट राष्ट्र के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। प्रारम्भिक काल में, चूंकि बजट सरकार की अनुमानित प्राप्तियों एवं खर्चों का एक विवरण मात्र था, अतः इसके केवल दो उद्देश्य थे – प्रथम सरकार को यह निश्चित करना होता था कि कार्यकुशलता के एक उपयुक्त स्तर पर अपनी आवश्यक क्रियाओं के संचालन करने के लिए जो थोड़े से धन की आवश्यकता है उस धन को वह किस प्रकार कर दाताओं की जेब से निकाले। दूसरे, विधान मण्डल को धन के बारे में स्वीकृति देनी होती थी, अतः सरकार यह जानना चाहती थी कि धन किस प्रकार व्यय किया जाये। इस प्रकार, प्रबंध नीति (Laissez Faire) के दिनों में बजट आय–व्यय का केवल एक विवरण मात्र था। आधुनिक राष्ट्र और विशेषकर एक कल्याणकारी राज्य का एक विशिष्ट लक्षण सरकार की क्रियाओं की मात्रा तथा विविधता में वृद्धि होना है। सरकार की क्रियाओं में तेजी से वृद्धि हो रही है और सामाजिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं में उनका विस्तार हो रहा है। सरकार अब एक ऐसे अभिकरण के सदृश है जिसका कार्य ठोस एवं निश्चयात्मक क्रियाओं तथा नागरिकों के सामान्य कल्याण में वृद्धि करना है। सरकार द्वारा बजट बनाने का कार्य उन बड़ी प्रक्रियाओं में से एक है जिनके द्वारा सार्वजनिक साधनों के उपयोग की योजना बनाई जाती है और उनका नियन्त्रण किया जाता है। अतः बजट सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण वक्तव्य तथा सरकार के उन कार्यक्रमों के स्पष्टीकरण का एक प्रमुख अस्त्र बन गया है जोकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (National Economy) के

सरकारी तथा गैर सरकारी, दोनों ही क्षेत्रों में फैले होते हैं। बजट विकास तथा उत्पादन (Production) को, आय की मात्रा तथा वितरण को, और मानवीय शक्ति एवं सामग्री की उपलब्धता को प्रभावित करता है। कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अर्थव्यवस्था में बजट एक महत्त्वपूर्ण योग देता है। अतः प्रत्येक नागरिक इस बात पर इच्छुक होता है कि वह बजट से सरकार की विभिन्न क्रियाओं एवं कार्यक्रमों की प्रकृति तथा लागत से संबंधित बातें ज्ञात करे। बजट से नागरिक यह जान सकते हैं कि सरकार की अनेक योजनाओं तथा कार्यक्रमों से उन्हें क्या–क्या लाभ प्राप्त होते जा रहे हैं और उन्हें कितना–कितना कर अदा करना पड़ेगा? बजट के द्वारा नागरिकों की विभिन्न रुचियों (Interests), उद्देश्यों, इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का एक कार्यक्रम के रूप में एकत्रीकरण किया जाता है जिससे कि नागरिक सुरक्षा, सुख व सुविधा के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें। बजट में उल्लिखित सरकार की कराधान नीति (Taxation Policy) के द्वारा, यह हो सकता है कि वर्गीय विभिन्नताओं तथा असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाये। बजट में दी हुई सरकार की उत्पादन नीति का उद्देश्य निर्धनता, बेरोजगारी तथा धन के असमान वितरण को दूर करना हो सकता है। इस प्रकार राष्ट्र के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर बजट का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत (**Important Principles of Budget**)

बजट की परिभाषा और नागरिकों के सामजिक जीवन में उसके महत्त्व का विवेचन करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त किया जाये। बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत हैं:–

प्रचार, स्पष्टता, व्यापकता, एकता, नियतकालीन, परिशुद्धता और सत्यशीलता। अब हम बजट के इन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की क्रमशः विवेचना करते हैं:

(1) प्रचार (**Publicity**) – सरकार के बजट को अनेक चरणों (Stages) में गुजरना होता है। उदाहरण के लिये, कार्यपालिका द्वारा व्यवस्थापिका के समक्ष बजट की सिफारिश, व्यवस्थापिका उस पर विचार तथा बजट का प्रकाशन व क्रियान्वयन। इन विभिन्न चरणों के द्वारा बजट को सार्वजनिक बना देना चाहिए। बजट पर विचार करने के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) के गुप्त अधिवेशन नहीं होने चाहिए। बजट का प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि देश की जनता तथा समाचार पत्र विभिन्न करों तथा व्यय की विभिन्न योजनाओं के संबंध में अपने विचार प्रकट कर सकें।

(2) स्पष्टता (**Clarity**) – बजट का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि वह सरलता व सुगमता से समझ में आ जाये।

(3) व्यापकता (**Comprehensiveness**)– सरकार के सम्पूर्ण राजकोषीय (Fiscal) कार्यक्रमों का सारांश बजट में आना चाहिए। बजट द्वारा सरकार की आमदनियों एवं खर्चों का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इसमें यह बात स्पष्ट की जानी चाहिये कि सरकार द्वारा क्या कोई नया ऋण अथवा उधार लिया जाना है। सरकार की प्राप्तियों तथा विनियोजनाओं का ब्यौरे वाले स्पष्टीकरण होना चाहिए। बजट ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति सरकार की संपूर्ण आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सके।

(4) एकता (**Unity**) – सम्पूर्ण खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिये सरकार को सभी प्राप्तियों (Receipts) को एक सामान्य निधि (Fund) में एकत्रीकरण कर लिया जाना चाहिए।

(5) नियतकालीनता (**Periodicity**) – सरकार को विनियोजन तथा खर्च करने का प्राधिकार एक निश्चित अवधि के लिए ही दिया जाना चाहिए। यदि उस अवधि में धन का उपयोग न किया जाये तो वह प्राधिकार समाप्त हो जाना चाहिये अथवा उसका पुनर्विनियोजन (Re-appropriation) होना चाहिए। सामान्यः बजट अनुमान वार्षिक आधार पर दिये जाते हैं। व्यवस्थापिका को, उस अवधि की सम्पूर्ण आवश्यकताओं को, जिसमें कि व्यय किये

जाने हैं, दृष्टिगत रखकर उस अवधि से पूर्व ही बजट पारित करना चाहिए। उदाहरण के लिये, यदि वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है तो सुविधाजनक यह होगा कि व्यवस्थापिका अथवा विधानमण्डल 1 अप्रैल से पूर्व ही खर्चों की अनुमति दे दें।

(6) परिशुद्धता (**Accuracy**) – किसी भी सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था के लिए बजट अनुमानों की परिशुद्धता तथा विश्वसनीयता अत्यन्त आवश्यक है। वे सूचनायें, जिन पर कि बजट अनुमान आधारित हों, यथेष्ट रूप में ठीक, ब्यौरेवार तथा मूल्यांकन करने की दृष्टि से उपयुक्त होनी चाहिए। जान–बूझकर राजस्व का कम अनुमान लगाने अथवा तथ्यों को छिपाने की बात नहीं होनी चाहिए। भारत में, संसद में तथा संसदीय समितियों में यह आलोचना प्रायः की जाती है कि बजट अनुमानों को तैयार करने में एक प्रवृत्ति यह पाई जाती है कि राजस्व की प्राप्तियों का तो न्यूनांकन (Under-Estimation) किया जाता है और राजस्व–व्यय का अत्यंकन (Over-Estimation)। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि आय का कम अंकन करने वाले व्यय का अधिक अंकन करने की इस प्रवृत्ति से बजट का रूप ही बिगड़ जाता है।

(7) सत्यशीलता (**Integrity**) – इसका अर्थ है कि राजकोषीय कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ठीक उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार कि बजट में उसकी व्यवस्था की गई हो। यदि बजट उस प्रकार क्रियान्वित नहीं किया जाता है जिस प्रकार कि उसका विधानीकरण किया गया था, तो फिर बजट बनाने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि बजट के द्वारा उन उद्देश्यों को प्राप्त करना है जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था, अर्थात् सत्यनिष्ठ एवं कुशल वित्तीय प्रशासन की स्थापना, तो ऊपर उल्लेख किये गये सिद्धांतों का पालन होना ही चाहिए।

बजट की रचना (**Formulation of the Budget**)

बजट रचना के मुख्यतः दो भाग हैं– प्रथम बजट की तैयारी और द्वितीय बजट का अधिनियम जिसमें बजट अनुमानों को व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करना, व्यवस्थापिका द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान करना, व्यवस्थापन आदि सम्मिलित हैं।

बजट की तैयारी (**Preparation of Budget**) – भारत में वित्तीय वर्ष । अप्रैल को आरम्भ और 31 मार्च को समाप्त होता है। बजट अनुमान तैयार करने का कार्य आगामी वित्त के आरम्भ होने से 7–8 माह पूर्व प्रारम्भ होता है। बजट की रूपरेखा तैयार करने का सारा उत्तरदायित्व वित्त मंत्रालय का होता है, किन्तु इस कार्य में प्रशासकीय मंत्रालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों में वित्त मंत्रालय को प्रशासकीय आवश्यकताओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। योजना आयोग योजनाओं की प्राथमिकता के संबंध में मंत्रणा देता है और नियंत्रक महालेखा परीक्षक प्राक्कथन तैयार करने हेतु लेखा कौशल उपलब्ध कराता है। बजट अनुमान तैयार करने की शुरूआत वित्त मंत्रालय द्वारा जुलाई अथवा अगस्त माह से ही शुरू कर दी जाती है अब वह विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों तथा विभागाध्यक्षों को व्ययों के प्राक्कथन तैयार करने के लिए एक प्रपत्र (Form) भेजता है। विभागाध्यक्ष इन छपे हुए निर्धारित प्रपत्रों को स्थानीय कार्यालयों को भेज देता है। प्रपत्र में कुछ खाने होते हैं जिन्हें निम्न प्रकार दर्शाया जाता है:

1. विनियोगों के शीर्ष तथा उपशीर्ष,
2. गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय,
3. वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान,
4. वर्तमान वर्ष के संशोधित अनुमान,
5. आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन, तथा
6. घटा–बढ़ी का विस्तार

अनुमान प्रपत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है :

(Budget Estimates)

Minor Heads & Sub-heads of Appropriation	Revised Estimates for the current year	Budget Estimates for the next year	Explanation for Increases or Decreases

स्थानीय कार्यालयों द्वारा ये प्रपत्र तैयार करके प्रशासकीय, मंत्रालयों के संबंधित विभागों को भेज दिये जाते हैं। विभागों के अध्यक्ष अनुमानों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं और आवश्यकतानुसार संशोधन करके अपने–अपने विभागों के लिए उन्हें एकीकृत करते हैं। इसके बाद प्रशासकीय मंत्रालय इन प्राक्कलनों को नवम्बर के मध्य में वित्त मंत्रालय को प्रेषित कर देते हैं। प्रत्येक विभाग अपने प्राक्कलनों की एक प्रतिलिपि भारत के 'महालेखापाल' के पास पहुँचा देता है। इस कार्यालय में विभिन्न मदों की जाँच की जाती है। उसके पश्चात् महालेखापाल अपनी टिप्पणियाँ वित्त मंत्रालय के पास भेज देता है। वित्त मंत्रालय द्वारा बजट अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण मुख्यतः मितव्ययिता से संबंध रखता है, नीति से नहीं। व्ययों संबंधी नीति को देखना तो मुख्य रूप से प्रशासकीय मंत्रालयों का ही काम है। प्रशासकीय मंत्रालयों द्वारा प्रेषित बजट अनुमानों को मोटे रूप से तीन भागों में बांटा जाता है :

(i) स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय (**Standing Charges**)– इसमें स्थायी संस्थानों (Permanent establishments) के वेतन, भत्ते तथा अन्य व्यय सम्मिलित हैं। इनसे संबंधित अनुमान सूक्ष्म पुनरावलोकन हेतु वित्त मंत्रालय के बजट संभाग (Budget Division) को भेजे जाते हैं।

(ii) नयी योजनाओं या कार्यक्रम (**New Schemes**) – वित्त मंत्रालय द्वारा प्राक्कलनों की वास्तविक जाँच इसी क्षेत्र में की जाती है। नवीन योजनाओं के संबंध में संसाधनों के आधार पर विभिन्न मदों की प्राथमिकता के संबंध में विचार किया जाता है। इस बारे में आयोग तथा वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग (Department of Economic Affairs) से भी सलाह ली जाती है।

(iii) प्रचलित योजनाएं अथवा कार्यक्रम (**Continuing Schemes**) – दूसरे विभाग में वे विषय रहते हैं जो वर्ष प्रतिवर्ष निरन्तर चलते रहते हैं। इन प्रचलित योजनाओं के प्राक्कलनों की जाँच व्यय–विभाग (Department of Expenditure) द्वारा की जाती है। इस सूक्ष्म परीक्षण द्वारा यह देखा जाता है कि जारी योजनाओं में कहाँ तक प्रगति हुई, उनके संबंध में की गयी वचनबद्धताएँ कहाँ तक पूरी की गयी हैं, आदि। यह परीक्षण निरन्तर चलता रहता है।

Methods of use for Budgets

बजट तैयार करने के लिए निम्नलिखित पाँच विधियों का इस्तेमाल किया जाता है–

(1) संवितरण अधिकारियों द्वारा प्रारम्भिक अनुमानों की तैयारी करना।

(2) नियंत्रण अधिकारियों द्वारा इन अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा।

(3) महालेखाकार तथा प्रशासनिक विभाग द्वारा संशोधित अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा।

(4) वित्त मंत्रालय द्वारा संशोधित अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा

(5) मंत्रिमंडल द्वारा समेकित अनुमान पर अन्तिम विचार।

उपर्युक्त विधियों का क्रमानुसार निम्नवत् विश्लेषण किया जा सकता है –

(1) संवितरण अधिकारियों द्वारा तैयारी (**Preparation by the Disbursing Officers**) – बजट तैयार करने का कार्य अगला वित्तीय वर्ष प्रारम्भ होने के 6 से 8 माह पहले से ही शुरू हो जाता है। चूंकि भारतीय वित्तीय वर्ष प्रत्येक वर्ष पहली अप्रैल को शुरू हो जाता है, इसलिए बजट तैयार करने का कार्य अगस्त–सितम्बर के माह से शुरू हो जाता है। महालेखाकार जुलाई या अगस्त के महीने में विभिन्न विभागों के प्रमुखों को पृथक्–पथक् राजस्व और व्यय के अनुमानों के लिए निर्धारित प्रपत्र भेजता है। विभाग प्रमुख संवितरण अधिकारियों तथा स्थानीय कार्यालयों के प्रमुखों को ये प्रपत्र भेजते हैं जो प्रारम्भिक अनुमान तैयार करते हैं। अनुमान तैयार करने का कार्य अत्याधिक महत्वपूर्ण कार्य है। श्री पी॰ के॰ बट्टल के शब्दों में, "यह विगत वर्षों के औसत निकालकर उन्हें किसी सुरक्षित आंकड़े में रखने का एक सामान्य गणितीय कार्य नहीं है जोकि बिल्कुल पिछले वर्ष के निष्पादन की पुनरावृत्ति की तरह नहीं दिखाई देगा। इन आंकड़ों के पीछे प्रशासन की वास्तविकताएं छुपी होती है। किसी भी एक वर्ष की परिस्थितियाँ पिछले वर्ष की परिस्थितियों के बिल्कुल समान नहीं होती हैं और फिर भी वे नितान्त भिन्न भी नहीं होती हैं। इसलिए असमानताओं और समानताओं का अनुमान लगाने तथा प्रत्येक को उचित महत्व देने में स्व–विवेक का

इस्तेमाल करना पड़ता है।" इसलिए अनुमान तैयार करने में सावधानी बरती जानी चाहिए। अनुमान तैयार करते समय स्थानीय अधिकारियों को निर्धारित प्रपत्र के चार स्तंभों को भरना होता है –

(i) पिछले वर्ष के वास्तविक आंकड़े।

(ii) चालू वर्ष के स्वीकृत अनुमान।

(iii) चालू वर्ष के संशोधन अनुमान, और

(iv) अगले वर्ष के बजट का अनुमान ।

कभी–कभी बजट अनुमानों तथा खर्च किए गए या खर्च किए जाने वाले वास्तविक धनराशि के बीच काफी अन्तर रह जाता है। यह मुख्यः दो महत्त्वपूर्ण कारकों के कारण होता है। प्रथम, अनुमान लगभग 18 महीने पहले तैयार किए जाते हैं और दूसरे, भारतीय अर्थव्यवस्था मानसून का जुआ है तथा अनुमान मानसून आने से बहुत पहले ही तैयार कर लिए जाते है। इसके अलावा जैसा कि श्री अशोक चन्दा ने कहा है, "बजट में शामिल किए जाते समय नए परियोजनाओं के अनुमानों की तैयारी अधिकांश मामलों में कठिन होती है। इस प्रकार के अनुमान बहुधा केवल प्रत्याशाओं पर न कि ठोस और सकारात्मक पहलुओं पर आधारित होते हैं। फिर भी जब तक कि बजट अनुमानों में शामिल किए जाने हेतु कोई आंकड़ा वित्त मंत्रालय को नहीं भेजा जाता है तब तक इस स्कीम को शुरू नहीं किया जा सकता है।"

(2) नियंत्रण अधिकारियों द्वारा अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा (**Scrutiny and Review of Estimates by Controlling Officers**) – स्थानीय अधिकारी अपने–अपने नियंत्रण अधिकारियों या विभाग प्रमुखों को संवीक्षा और समीक्षात्मक अनुमान भेजते हैं। संवीक्षा नितान्त प्रशासनिक किस्म की होती है। नियंत्रण अधिकारी को पूर्णरूपेण विभाग के संभावित अनुदान को ध्यान में रखते हुए नए व्यय के लिए अपने विभाग के विभिन्न शाखाओं और अनुभागों के अपेक्षित महत्त्व का औचित्य सिद्ध करना पड़ता है। इसलिए उसे उनमें से कुछ को स्वीकार करना पड़ता है और दूसरों को अस्वीकार करना पड़ता है। फिर वह समूचे विभाग के अनुमानों को समेकित करता है और अक्तूबर के प्रारम्भ तक के प्रपत्र बजट अधिकारियों के हाथों में चले जाते हैं। महालेखाकार तथा प्रशासनिक विभाग द्वारा संवीक्षा और समीक्षा (Scrutiny and Review by the Accountant General and the Administrative Department) – नियंत्रण अधिकारियों के पास से अनुमान प्रपत्र चले जाने के उपरान्त राजस्व तथा स्थायी प्रभारों यथा स्थायी स्थापना, यात्रा भत्ता आदि से संबंधित अनुमानों का भाग। महालेखाकार तथा सामान्य प्रशासन विभाग के पास संवीक्षा तथा समीक्षा

के लिए प्रस्तुत किया जाता है। सामान्य प्रशासन विभाग राज्य सरकारों में होते हैं। सामान्य समीक्षा के अतिरिक्त, महा–लेखाकार के कार्यालय को ऋण, जमा तथा प्रेषण शीर्षों के अन्तर्गत अनुमान भी तैयार करने होते हैं नवम्बर के मध्य तक ये अनुमान वित्त मंत्रालय के बजट विभाग के पास चले जाते हैं।

(4) वित्त मंत्रालय द्वारा संवीक्षा (**Scutiny by the Ministry of Finance**) – विभिन्न विभागों से इस प्रकार प्राप्त हुए अनुमानों की वित्त मंत्रालय द्वारा संवीक्षा की जाती है तथा संशोधन और विभागों से इस प्रकार प्राप्त हुए अनुमानों की वित्त मंत्रालय द्वारा संवीक्षा की जाती है तथा संशोधन और पुनरीक्षण के उपरान्त उन्हें सरकार के बजट में पूर्णरूपेण समेकित कर लिया जाता है। श्री पी॰ के॰ वट्टल के शब्दों में, "वित्त विभाग द्वारा की गई संवीक्षा प्रशासनिक विभाग द्वारा की गई संवीक्षा से स्वभावतः भिन्न होती है। प्रशासनिक विभाग व्यय की नीति अथवा उसकी आवश्यकता से संबंधित है और इसीलिए उसका कार्य विभागों न की मांग को उपलब्ध नीधियों के भीतर बनाए रखना है। प्रशासनिक विभागों तथा वित्त विभाग के बीच अनसुलझे मतभेदों को निर्णय के लिए सरकार को प्रस्तुत किया जाता है।" वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की संवीक्षा वित्तीय दृष्टिकोण अर्थात् अर्थव्यवस्था एवं निधियों की उपलब्धता के अनुसार की जाती है। फिर वित्त मंत्रालय भारत सरकार के आय और व्यय का अनुमान तैयार करता है। अनुमानित व्यय के आधार पर बजट में नए करों के बारे में प्रस्ताव किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, बजट दो भागों में विभाजित होता है – आय पक्ष और व्यय पक्ष। इस रूप में समेकित बजट दिसम्बर माह तक तैयार हो जाता है।

(5) मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदन (**Approved by the Cabinet**) – वित्त मंत्री जनवरी में किसी समय बजट अनुमानों की जाँच करता है और प्रधानमंत्री के परामर्श से कराधान आदि के बारे में अपनी वित्तीय नीति तैयार करता है। इसके पश्चात् संयुक्त विचार–विमर्श के लिए बजट मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि मंत्रिमंडल की नीति ही सामान्य दिशा निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी है। मंत्रिमंडल द्वारा बजट का अनुमोदन कर दिए जाने पर उसे संसद में पेश किए जाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय बजट, जिसे "वार्षिक वित्तीय विवरण" कहा जाता है, के दो भाग होते हैं–

(क) वित्त मंत्री का बजट भाषण, और (ख) बजट अनुमान। वित्त मंत्री के भाषण में देश की सामान्य आर्थिक दशाओं की जानकारी, सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली वित्तीय नीति, चालू वर्ष के बजट अनुमानों तथा संशोधित अनुमानों के बीच पाए जाने वाले अन्तर का स्पष्टीकरण तथा व्याख्यात्मक ज्ञापन होता है जो चालू वर्ष के मूल अनुमानों में होने वाले उतार–चढ़ाव के कारणों की व्याख्या करता है। मंत्री का बजट भाषण राष्ट्र के वार्षिक क्रियाकलापों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। केवल व्यावसायिक समुदाय ही नहीं बल्कि समुदाय के प्रत्येक वर्ग द्वारा इसकी बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती है। भारत की समेकित निधि पर प्रभारित आय तथा भारत के लोक लेखा पर प्रभारित व्यय के लिए पृथक्–पृथक् अनुमानों को दर्शाने वाला वार्षिक वित्तीय विवरण संसद में प्रस्तुत किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार निम्नलिखित व्ययों को भारत की समेकित निधि पर प्रभारित माना जाता है –

(क) राष्ट्रपति की परिलब्धियाँ एवं भत्ते तथा उसके कार्यालय से संबंधित अन्य व्यय।

(ख) राज्य सभा के अध्यक्ष सभा के और उपाध्यक्ष तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते। इस रूप में बजट निर्माण की विधि पूरी होती है।

बजट अधिनियम (Enactment of Budget)

(क) प्रस्तुतीकरण – सभी लोकतांत्रिक देशों में कार्यपालिका द्वारा तैयार किए जाने के बाद बजट संसद में विचार एवं स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संसद में बजट प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका और मंत्रिमंडल का होता है। भारत में सामान्य बजट वित्त मंत्री द्वारा और रेल बजट रेल मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ यह

स्पष्ट करना उचित होगा कि सामान्य विधेयक (Ordinary Bill) तथा वित्त विधेयक (Money Bill) में आधारभूत अन्तर होता है। आम विधेयक में सरकार के लिए कुछ कार्यक्रम प्रस्तावित होते हैं जबकि वित्त विधेयक में ऐसे कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए सरकार को धनराशि खर्च करने का अधिकार दिया जाता है। इस कारण भारतीय संविधान के अनुच्छेद 112 से 117 तक वित्त विधेयक से संबंधित निम्न प्रावधान किए गए हैं :

1. बजट अनुमानों से संबंधित हर एक मांग मुख्य कार्यपालिका अध्यक्ष (राष्ट्रपति) की अनुशंसा से ही की जाएं।
2. कोई भी व्यय प्रस्ताव राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद के समक्ष नहीं रखा जा सकता।
3. विधेयक को किसी कर में कमी करने अथवा समाप्त करने का अधिकार तो है किन्तु वह नया कर लगाने या कर दर में वृद्धि करने का अधिकार नहीं रखती।
4. भारत की संचित निधि में संबंधित व्यय (Charges) पर संसद में बहस हो सकती है। किन्तु मतदान नहीं किया जा सकता है।
5. विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill) में संसद की ओर से कोई ऐसा संशोधन नहीं किया जा सकता जिसमें किसी अनुदान का उद्देश्य या किसी प्रभारी व्यय राशि में परिवर्तन हो जाये।
6. वित्त विधेयक के मामले में लोक सभा के अधिकार राज्य सभा की अपेक्षा बहुत अधिक है। अनुदान मांगों के लिए मत देने का अधिकार केवल लोक सभा को ही प्राप्त है। वित्त विधेयक पर लोक सभा की स्वीकृति मिलने के पश्चात् उसे राज्य सभा के पास भेजा जाता है जिसे 14 दिनों के भीतर पास कर अथवा अपनी सिफारिशों के साथ लोक सभा को लौटा देना होता है। लोक सभा यदि उचित समझे तो राज्य सभा के किसी सुझाव पर पुनर्विचार कर सकती है अन्यथा वित्त विधेयक को अपने मूल रूप से पारित कर देती है तथा इसे संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाएगा। सर्वप्रथम 1977 में जनता शासन के आगमन के समय राज्य सभा में कांग्रेस का बहुमत होने की वजह से राज्य सभा में वित्त विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ निचले सदन के पास भिजवा दिया था। किन्तु लोक सभा की सर्वोपरिता की पुष्टि का यह अब तक का पहला या अन्तिम उदाहरण माना जा सकता है। यदि राज्य सभा 14 दिनों के अन्दर–अन्दर वित्त विधेयक को नहीं लौटाती है तब भी संविधान के अनुच्छेद् 109 के अनुसार उसे दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है।

यहाँ पर यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं, इस बात का निर्णय भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 110 के तहत लोक सभा के अध्यक्ष (Speaker) को करने का अधिकार है।

(ख) बजट पर सामान्य वाद–विवाद (**General Discussion on Budget**) – लोक सभा के कार्य संचालन नियम संख्या 207(1)(2) में बजट प्रस्तुतीकरण के कुछ दिन पश्चात् सामान्य चर्चा का दिशा–निर्देशन करते हुए कहा गया है कि, 'सदन को इस बात की अनुमति होगी कि वह संपूर्ण बजट अथवा उसमें प्रस्थापित सिद्धांत के किसी प्रश्न के बारे में विचार–विमर्श कर सके परन्तु इस समय कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा एवं न ही सदन में बजट का मतदान लिया जा सकेगा। इस आम चर्चा के दौरान व्यय के किसी भी मद को परिचर्चा से बाहर नहीं रखा जाता तथा हर एक मुद्दे पर प्रशासनिक नीतियों की संक्षिप्त आलोचना तथा टीका–टिप्पणी की जा सकती है। करीब एकाध सप्ताह के अन्दर बजट पर सामान्य चर्चा समाप्त हो जाती है। तथा अन्तिम दिन वित्त मंत्री एक संक्षिप्त जवाब भी देता है।

(ग) अनुदान मांगों पर ब्यौरे–वार चर्चा तथा मतदान (**Voting on Demands of Supplies**) – बजट के तीसरे चरण में मंत्रालयों के अलग–अलग सभी क्रम–वार अनुमान मांगें एक प्रस्ताव के रूप में लोक सभा के समक्ष प्रस्तुत की जाती है जो कि निम्नवत् होते हैं – "31 मार्च 199.... को समाप्त होने वाले वर्ष की अवधि में (गृह मंत्रालय से संबंधित)

व्ययों की अदायगी के लिए एक धनराशि, जो कि रुपये से ज्यादा न हो, को राष्ट्रपति को खर्च करने के लिए स्वीकृत की जानी चाहिए।" इस प्रकार की अनुदान मांगे प्रत्येक मंत्रालय के लिए अलग से प्रस्तावित की जानी चाहिए जब तक यह कठिनाई न हो कि किसी अनुदान राशि को अलग–अलग मंत्रालयों को बांटना असंभव हो। लोक सभा कार्यवाही नियम 131 के तहत प्रत्येक अनुदान मांग को समग्र रूप में तथा उसके अन्तर्गत मद–वार ब्यौरे के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। भारत सरकार का आम बजट 109 अनुदान मांगों में विभाजित रहता है, जिनमें से 103 मांगे लोक व्यय से संबंधित हर मंत्री मांगों को प्रस्तुत करते समय एक संक्षिप्त भाषण भी देता है जो आर्थिक नीतियों का प्रतिबिम्ब होने के बजाय प्रायः राजनीतिक रंग लिए होता है।

संसदीय कार्यवाही नियम 132 तथा 133 के तहत लोक सभा का अध्यक्ष सदन के नेता से विचार–विमर्श के पश्चात् एक निश्चित अवधि निर्धारित करता है जिसमें अनुदान मांगों पर विचार–विमर्श पूरा हो जाना चाहिए। भारत में आमतौर पर 26 दिनों की अवधि इस हेतु निर्धारित की गई है। एक–एक करके अनुदान मांगों पर विचार होते समय विपक्षी सदस्यों द्वारा बजट की तीखी आलोचना की जाती है। तथा अनेक प्रकार के कटौती प्रस्ताव सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। ये कटौती प्रस्ताव तीन प्रकार के होता हैः

(i) नीति संबंधी कटौती प्रस्ताव (**Policy Cut Motion**) – किसी अनुदान मांग के पीछे निहित सरकारी नीति को अस्वीकृत करने की सिफारिश के उद्देश्य से सदस्य द्वारा मांग की जाती है कि "मांग की धनराशि घटा कर एक रुपया कर दी जानी चाहिए।" इस प्रस्ताव को लाने वाला सदस्य नीति संबंधी मुख्य मदों की समीक्षात्मक आलोचना करते हुए सदन के विचार–विमर्श की वैकल्पिक नीति की प्रतिस्थापना की ओर अग्रसर करने का प्रयत्न करता है। इस अवधि में प्रशासन की कमियों को उजागर करते हुए सरकार की तीखी आलोचना की जाती है।

(ii) मितव्ययिता संबंधी कटौती प्रस्ताव (**Economy Cut Motion**) – सरकारी व्यय में संभावित दुरुपयोग या अपव्यय की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से सदन का कोई सदस्य इस प्रस्ताव को पेश करते हुए मांग कर सकता है कि, "अनुदान मांग की राशि में से विशिष्ट धनराशि कम कर दी जानी चाहिए। ये कटौती प्रस्ताव किसी मांग की किसी विशेष मद में कमी, उसकी पूर्ण समाप्ति अथवा सम्पूर्ण अनुदान में से एक मुश्त धनराशि कम करने के लिए पेश किए जाते हैं। वाद–विवाद के समय सदस्यों को केवल विचारणीय मुद्दे पर ही अपने विचार रखने की अनुमति दी जाती है।

(iii) प्रतीकात्मक कटौती प्रस्ताव (**Token Cut Motion**) – संसदीय नियम 209 के अन्तर्गत कोई भी सदस्य सरकार के किसी विशेष कार्य के बारे में शिकायत करते हुए यह प्रस्ताव ला सकता है कि संबंधित अनुदान "मांग की धनराशि में 10000 रुपये की कटौती की जानी चाहिए।" यह प्रस्ताव प्रतीकात्मक ही होता है ताकि सरकार का ध्यान किसी विशेष समस्या की ओर आकर्षित किया जा सके।

हमारी संसदीय प्रणाली में प्रायः प्रतीक कटौती प्रस्ताव ही लाए जाते हैं तथा अध्यक्ष द्वारा इन पर बहस की अनुमति देने के पश्चात् वाद–विवाद होता है। बहस की समाप्ति पर संबंधित मंत्री सदस्यों की आलोचनाओं का जवाब देता है तथा सदस्यों द्वारा बतलायी शिकायतों को दूर करवाने का आश्वासन भी देता है। तथापि ऐसा कहा जाता है कि भारतीय संसद में बहस का स्तर बहुत अच्छे स्तर का नहीं होता। श्री एस॰एल॰ शकधर ने लिखा है कि, "बजट संबंधी वाद–विवादों में एक प्रमुख दोष पाया जाता है और वह यह है कि बजट संबंधी बहस केवल सिद्धांतों पर आधारित होता है और अनुमानों के ब्यौरे के संबंध में जरा भी बहस नहीं की जाती। सदन अपने आपको इस विषय में संतुष्ट नहीं करता कि अनुमानों के विस्तृत आंकड़े ठीक प्रकार तैयार किए गए हैं। विभिन्न सेवाओं, पूर्तियों, संस्थानों, प्रयोजनाओं तथा कार्यक्रमों के लिए जो विविध धनराशियाँ दिखाई गयी हैं क्या वे न्यायोचित हैं, क्या अनुमानों में दिए गए व्यय उपलब्धियों से मेल खाते हैं, और क्या सरकारी विभागों द्वारा वास्तव में व्यय की गई

धनराशियाँ विनियोजन अधिनियम के अथवा उसमें निहित उद्देश्य के अनुसार थीं अथवा क्या कोई दुर्विनियोजन या अन्य कोई वित्तीय अनियमितता थी।"

(घ) मतदान प्रक्रिया (**Voting Process**) – भारतीय संसद में कुल 26 दिनों के भीतर श्अनुदान मांगों को पास करने की परम्परा है। अध्यक्ष द्वारा किसी अनुदान मांग पर बहस के लिए निर्धारित समय के अन्तिम दिन सायं 5 बजे मतदान का कार्य आरम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया से सभी विभागों की अनुदान मांगे गुजरती है। किन्तु पूरी बहस के लिए निर्धारित दिनों के अन्तिम दिन शेष बची सभी मांगों पर भी मतदान हो जाता है चाहे फिर उन पर ब्यौरेवार बहस हुई हो या न हुई हो। इस प्रकार अन्तिम दिन करोड़ों रुपयों की अनुदान मांगें बिना बहस के ही पास कर दी जाती हैं। हिल्टन यंग ने इस प्रक्रिया के दोषपूर्ण प्रचलन की ओर संकेत करते हुए कहा था कि, "वर्ष के कुल व्यय के एक तिहाई से आधे भाग पर किसी आलोचना अथवा वाद–विवाद के बिना घंटे भर में मतदान हो जाता है। इसरो अधिक असंतोषजनक स्थिति की कल्पना कदाचित ही की जा सकती है। इससे सदन द्वारा व्यय पर नियंत्रण करने संबंधी संपूर्ण श्रम साध्य प्रक्रिया एक ढोंग प्रतीत होती है।"

(ड़) लेखानुदान (**Vote on Account**) – भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 116(1) के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि बजट प्रक्रिया के पूर्ण होने से पूर्व ही वित्तीय वर्ष के प्रथम दो माह के लिए कार्यपालिका को अग्रिम अनुदान स्वीकृत कर खर्च करने की अनुमति प्रदान करें। संविधान में ऐसा उपलब्धि किया गया है जिसके अन्तर्गत लेखानुदान द्वारा अग्रिम अनुदान देने की शक्ति लोक सभा को दी गई है जिससे सरकार अनुदानों की मांगों पर मतदान होने तथा विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के पारित होने तक अपना कार्य चला सके। सामान्यतः इसकी राशि अनुदानों की विभिन्न मांगों के अधीन समस्त वर्ष के लिए प्राक्कलित व्यय के छठे भाग के बराबर होती है। इस परिपाटी के प्रारम्भ होने के कारण अब अनुदान मांगों पर 1 अप्रैल के पश्चात् भी बहस जारी रखी जाती है। इस प्रकार की पद्धति अपनाए जाने से संसद को बजट संबंधी प्रस्तावों पर अधिक व्यापक बहस करने का अवसर मिलता है। ताकि प्रशासकीय कमियों को उजागर करके कार्यपालिका को अधिक सचेष्ट किया जा सके।

(च) विनियोजन विधेयक (**Appropriation Bill**) – अनुदान मांगों पर संसद में मतदान होने जाने का मतलब यह नहीं है कि सरकार को सार्वजनिक कोष (Public Fund) से पैसा निकालने का हक प्राप्त हो गया है। संविधान की धारा 110(1) (क) में कहा गया है कि, "भारत की संचित निधि में से कोई भी धनराशि विधि द्वारा विनियोजन के बिना नहीं निकाली जा सकती।" जब सभी अनुदान मांगों पर मतदान हो जाता है तो इनको संचित निधि सहित विनियोजन अधिनियम में एकीकृत कर लिया जाता है और इस प्रकार धन खर्च करने के अधिकार को प्राप्त करने के लिए विनियोजन बिल को पास करवाने की क्रिया सम्पादित करनी होती है। इस विधेयक का आशय निधि में से व्यय के विनियोग के लिए सरकार को कानूनी अधिकार देता है। विनियोग विधेयक पर चर्चा उसमें शामिल अनुदानों में निहित लोक महत्व के विषयों पर प्रशासनिक नीति तथा ऐसे मामलों तक, जो अनुदानों की मांगों पर चर्चा करते समय पहले उठाये गए हों, सीमित रहती है। इस पर कोई संशोधन पेश नहीं किए जा सकते। अन्य मामलों में विनियोग विधेयक संबंधी प्रक्रिया भारत में वित्तीय प्रशासन वही होती है जो कि अन्य विधेयकों के संबंध में होती है। विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित किए जाने के पश्चात अध्यक्ष उसे 'धन विधेयक' होने के रूप में प्रमाणीकृत करता है और उसको राज्यसभा के पास भेज देता है। राज्य सभा को धन विधेयक पर अपनी स्वीकृति देनी ही होती है। तत्पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(छ) वित्त विधेयक (**The Finance Bill**) – बजट में दो हिस्से होते हैं – व्यय प्रावधान तथा आय प्राप्ति प्रस्ताव विनियोजन विधेयक (Appropriation Act) पारित हाने के साथ सरकार के राजकोष से धनराशि खर्च करने का अधिकार मिल जाता है। किन्तु इस व्यय की पूर्ति के लिए वित्तीय साधनों की प्राप्ति कर प्रस्तावों द्वारा संभव होती है। इस प्रकार संसद के समक्ष सरकार द्वारा वित्त विधेयक प्रस्तुत किया जाता है जिसमें नये कर या वर्तमान करों की

दरों में संशोधन संबंधी प्रस्ताव होते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 265 में यह कहा गया है कि, "कानूनी सत्ता के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है एवं न ही वसूल किया जा सकता है।" वित्त विधेयक में पूर्व में प्रचलित तथा नये दोनों प्रकार के कर प्रस्तावों को शामिल किया जाता है। आय–कर, उत्पादन शुल्क, निगम कर आदि कुछ स्थायी कर होते हैं, जिनकी प्रचलित दरों में सरकार आवश्यकता अनुसार प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए परिवर्तन प्रस्तावित करती है। यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि भारत की संघीय वित्त व्यवस्था (Federal Financial System) के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को जिन करों को लगाने या उनकी दरों में परिवर्तन करने का अधिकार है उन्हीं को वित्त विधेयक में शामिल किया जाता है। कर प्रस्तावों को प्रस्तुत करते समय कार्यपालिका को यह देखना होता है कि अनेक अनुत्पादक करों (Unproductive Taxes) के बजाय कुछ प्रमुख उत्पादक करों (Productive Taxes) को ही वित्त विधेयक में शामिल करें। विनियोजन विधेयक तथा वित्त विधेयक में कछ मौलिक अन्तर होता है। विनियोजन विधेयक में प्रायः कोई परिवर्तन नहीं किया जाता जबकि वित्त विधेयक में बहस के दौरान सदस्यों द्वारा करों की दरों में परिवर्तन के लिए संशोधन प्रस्तुत किए जाते हैं (किन्तु कर, बढ़ाने को नहीं), तथा कभी–कभी सरकार सदन की भावना को ध्यान में रखते हुए कर कटौती प्रस्तावों को स्वीकार भी कर लेती है। सदस्यों की सहमति पर सरकार कई बार आय–कर, पोस्टल टेरिफ या कतिपय उपभोक्ता वस्तुओं पर लगाए गए उत्पादन शुल्क में कमी करने को तैयार हो जाती है। लोकमत के दबाव के कारण रेलवे बजट में भी यात्री भाड़े तथा मालभाड़े की दरों को घटाने संबंधी संशोधन भी सरकार द्वारा स्वीकार किए जाने के अनेक उदाहरणों को भारतीय संसद के इतिहास में देखा जा सकता है।

(ज) वित्त विधेयक पर चर्चा करना और उसे पारित करना (**Discussion on Finance Bill and Enactment**) – सदन में वित्त मंत्री यह प्रस्ताव रखता है कि, वित्त विधेयक को विचारार्थ लिया जाना चाहिए, वित्त मंत्री के इस प्रस्ताव के साथ विचार–विमर्श प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् विधेयक को सदन की प्रवर समिति (Select Committee) को सौंप दिया जाता है। प्रत्येक पर समीक्षात्मक टिप्पणियां तथा सुझाव देकर समिति उसे वापस लौटा देती है। इसके पश्चात् सदन में धारा–वार बहस होती है और इसी दौरान सदस्यों द्वारा कर कटौती प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए जाते हैं। बहस की समाप्ति वित्त मंत्री के उत्तर द्वारा होती है। जिसमें सदन के रुख को ध्यान में रखते हुए यथासंभव कर प्रस्तावों की कटौती की घोषणा भी कर सकता है। इसके पश्चात् वित्त विधेयक को पारित करने के मामले में एक प्रस्ताव सदन में पेश किया जाता है। चूंकि सरकार बहुमत वाले दल की होती है इसलिए वित्त विधेयक को पारित करवाने में सरकार को कोई असुविधा नहीं होती है। लोकसभा में वित्त–विधेयक पास हो जाने पर राज्य सभा के पास भेज दिया जाता है जो 14 दिनों के भीतर उसे लौटाने को बाध्य है। विनियोजन विधेयक की भांति वित्त विधेयक पर भी राज्य सभा की शक्तियाँ सीमित हैं। जब दोनों सदन वित्त विधेयक को पारित कर देते हैं तो उसे राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् विधेयक कानून बन जाता है, तथा सरकार को कर राजस्व वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(झ) राष्ट्रपति का विशेषाधिकार (**Veto of the Executive Head**) – जब विधेयक राष्ट्रपति के पास जाता है तो राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर कर बिल को वापिस कर देता है या फिर उसे अपनी सिफारिशों के साथ 5 या 10 दिन के भीतर लोक सभा को लौटाना होता है। यदि सिफारिशों के साथ बिल वापिस होता है तो लोक सभा मूल रूप से ही बिल को पास करके राष्ट्रपति को पुनः हस्ताक्षर के लिए भेज देती है। निर्धारित अवधि में राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर कर दे तो ठीक अन्यथा अवधि की समाप्ति के पश्चात वित्त बिल स्वतः कानून बन जाता है।

सरकार द्वारा बजट क्रियान्वयन (Execution of Budget by Government)

जब संसद द्वारा केन्द्रीय बजट पारित कर दिया जाता है तब इसे लागू करने की कार्यवाही शुरू की जाती है। इस प्रक्रिया में मुख्यतया दो सिद्धांतों का पालन करना अत्यंत आवश्यक माना जाता है :–

1. बजट पर क्रियान्वयन विनियोजन के अनुरूप होना आवश्यक है।
2. बजट क्रियान्वयन से संबंधित सरकारी मशीनरी पूर्ण निष्ठा तथा कुशलता से कार्य करने के लिए प्रेरित होनी चाहिए।

इन दो सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में बजट पर क्रियान्वयन में पाँच प्रक्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं जो निम्नलिखित हैं:–

(1) वित्तीय स्रोतों का एकत्रीकरण (Collection of Financial Sources)

(2) एकत्रित साधनों का रक्षण (Custody of Collected Resources)

(3) वित्तीय साधनों का वितरण (Disbursement)

(4) सरकारी आय–व्यय का लेखा (Accounting)

(5) अंकेक्षण तथा प्रतिवेदन (Audit & Reporting)

बजट क्रियान्वयन की इन अवस्थाओं की विस्तृत रूपरेखा के संदर्भ में हमारे प्रशासनिक तंत्र की कुशलता तथा निष्ठा का मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः इन्हें ब्यौरे–वार समझाना जरूरी है।

(1) वित्तीय स्रोतों का एकत्रीकरण (Collection of Financial Sources)

वित्त विधेयक में प्रस्तावित कर प्रस्तावों के अन्तर्गत सर्वप्रथम संभावित आय प्राप्ति का अनुमान करना होता है तथा उसके बाद वसूली का कार्य किया जाता है। आय प्राप्ति के अनुमान लगाते समय उच्च स्तर के निर्णय की आवश्यकता होती हैं। जबकि वसुली करने वाले व्यक्तियों से उच्च किस्म की निष्ठा, ईमानदारी तथा सुनिश्चितता की अपेक्षा की जाती है।

आय स्रोतों के मूल्यांकन तथा वसूली की जिम्मेदारी अलग–अलग व्यक्तियों को सौंपी जाये अथवा किसी एक ही संस्था को यह एक विवाद का विषय माना जाता है। किन्तु आम राय किसी एक एजेन्सी को दोनों कार्य सौंपने के पक्ष में रही है। यद्यपि सुविधा की दृष्टि से इसके उप–विभाग बनाये जा सकते हैं। भारत में यह कार्य राजस्व विभाग को सौंपा जाता है जो सीधे वित्त मंत्रालय के नियंत्रण में होता है। यह विभाग केन्द्रीय राजस्व बोर्ड के नाम से जाना जाता है। केन्द्रीय राजस्व बोर्ड में सचिव के स्तर का एक अध्यक्ष होता है तथा संयुक्त सचिव स्तर के चार सदस्य होते हैं तथा इनकी सहायता के लिए नीचे के स्तर के लिए कई और अधिकारी होते हैं। बोर्ड में तीन निरीक्षण निर्देशक होते हैं जिसमें दो आय–कर के लिए तथा एक सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्क के लिए होता है। इस बोर्ड से जुड़े अन्य निम्न विभाग हैं :–

(i) आय–कर, अतिरिक्त लाभ तथा व्यावसायिक कर, (ii) स्टैम्प्स विभाग,

(iii) सीमा शुल्क (भूमि तथा वायु सीमा शुल्क सहित), (iv) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क; तथा

(v) अफीम विभाग वे विभाग केन्द्रीय सचिवालय स्तर पर होते हैं तथा इनकी शाखाएँ विभिन्न राज्यों के जिला स्तरों तक होती हैं। उदाहरणार्थ, जिला स्तर पर आयकर अधिकारी होता है जो केन्द्र की ओर से आय–कर एकत्रित करने के कर्तव्य का निर्वाह करता है।

राज्यों में राजस्व

भारतीय संविधान में राज्यों के वित्तीय स्रोतों को अलग से परिभाषित किया गया है। राज्यों के वित्तीय स्रोतों में मुख्यतया भू–राजस्व, बिक्री–कर; उत्पाद शुल्क कृषि कर, मनोरंजन कर तथा जंगलात का नाम लिया जा सकता है। इनकी वसूली के लिए केन्द्रीय ढंग पर ही राज्य स्तर पर राजस्व बोर्ड का गठन किया जाता है। जो राज्य के वित्त

मंत्रालय के नियंत्रण में होता है। जिला स्तर पर वित्तीय स्रोतों से वसूली की व्यवस्था होती है। चूंकि भू–राजस्व राज्य सरकार की आय का प्रमुख स्रोत होता है अतः इसके लिए ही राजस्व बोर्ड का गठन किया जाता है तथा इस राजस्व की वसूली में जिला प्रशासन जिसमें कलक्टर, तहसीलदार तथा पटवारी शामिल हैं, की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

(2) एवं (3) एकत्रित कोषों का संरक्षण तथा वितरण (**Custody of Funds & their Disbursement**)

एकत्रित राजस्व की संरक्षण व्यवस्था के संदर्भ में दो बातों को विशेष ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है :–

(i) वित्तीय साधनों के गबन अथवा दुरुपयोग से सुरक्षा,

(ii) वित्तीय लेन–देनों का सुविधाजनक तथा त्वरित संचालन।

धन के संरक्षण तथा संवितरण की व्यवस्थाएं प्रत्येक देश में अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में विकसित की जाती हैं। इस समय हमारे देश में 300 राजकोष (Treasuries) तथा 1200 उपराजकोष (Sub-Treasuries) कार्य कर रहे हैं। ये राजकोष जिला तथा तहसील स्तर पर सरकार की ओर से भुगतान स्वीकार करते हैं तथा सरकार के नाम पर भुगतान करते हैं। इसके अलावा रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा भारत सरकार तथा सरकारों के कोषों के संरक्षण तथा संवितरण का कार्य किया जाता है। सरकार को यदि कोई भुगतान किया जाना है तो दो प्रतियों में चालान भरकर या तो कोषागार में या केन्द्रीय बैंक की किसी शाखा या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया अथवा उसकी सहायक बैंकों को किसी शाखा में पैसा जमा कराना होता है। इसके विपरीत, यदि किसी व्यक्ति अथवा इकाई को धनराशि प्राप्त करनी हो तो उस व्यक्ति के द्वारा सरकारी राजकोष के किसी उपयुक्त अधिकारी के हस्ताक्षरयुक्त चैक अथवा प्राप्ति बिल अधिकृत बैंक की शाखा में प्रस्तुत करना होता है। इस प्रकार की सम्पूर्ण व्यवस्था वित्त मंत्रालय के दिशा–निर्देशन में चलती है। बजट पास होने के तुरन्त बाद वित्त मंत्रालय विभिन्न मंत्रालयों को स्वीकृति अनुदानों की सूचना दे देता है। विभिन्न मंत्रालय बजट प्रावधानों तथा प्रशासनिक स्वीकृतियों की सूचना विभागाध्यक्षों को भिजवा देते हैं। यह प्रक्रिया जिला स्तर तक चलती है जहां से वितरण अधिकारी सरकारी कोषों के संरक्षण तथा संवितरण का कार्य राजकोष उप–राजकोष तथा अधिकृत बैंक की किसी शिक्षा के माध्यम से नियमानुसार करता रहता है।

राजकोष की भूमिका

राजकोष के द्वारा केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों की ओर से धन की प्राप्ति तथा भुगतान का कार्य प्रतिदिन किया जाता है तथा दोनों लेखे भी अलग–अलग रखे जाते हैं। उप–राजकोषों द्वारा नियमित रूप से अपने लेखे जिला राजकोष के पास भिजवाये जाते हैं, जहां इनका वर्गीकरण तथा सूचीबद्धता की जाती है। इसके पश्चात् उप–राजकोषों से प्राप्त लेखों तथा जिला राजकोषों के लेखों को प्रति 15 दिन के पश्चात राज्यों के महालेखापाल के पास भेजा जाता है। प्रत्येक लेखे के साथ खर्च के प्रमाणक तथा आय प्राप्ति की चालान रसीदें भी भिजवायी जाती है। इस प्रकार राजकोष व्यवस्था भारतीय वित्तीय प्रशासन की एक आधारभूत कड़ी है जो इतने विशाल क्षेत्र में फैले देश के कोने–कोने में केंद्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों तथा भुगतानों की समुचित व्यवस्था करती है तथा बजट लेखों के सुव्यवस्थित संचालन को सम्भव बनाती है। यह उल्लेखनीय है राजकोष द्वारा भुगतान के तकनीकी पहलुओं पर बिल पास करने के पूर्व अथवा चैक का निस्तारण करने के पूर्व पूरी तरह से छानबीन की जाती है तथा सभी औपचारिकताएं पूरी करवायी जाती हैं। संवितरण अधिकारी की जिम्मेदारी इससे भी अधिक रहती है। उसे किसी भी धनराशि के भुगतान के पूर्व यह देखना होता है कि :

(i) क्या यह बजट प्रावधानों के अनुरूप है ?

(ii) भुगतान के लेखे की समुचित व्यवस्था है या नहीं ?

(iii) क्या प्रशासनिक तथा तकनीकी औपचारिकताएं पूर्ण कर ली गयी हैं ? तथा

(iv) क्या भुगतान की मांग उचित है ?

बैंकिग के विस्तार के कारण अब सरकारी कोषों का भण्डारण रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक अथवा उसकी शाखाओं में किया जाता है। इसके अलावा राजकोष अथवा उप–राजकोष भी इस दायित्व का निर्वाह करते हैं। भारत में प्रचलित वित्तीय कोषों के संरक्षण तथा संवितरण की राजकोष व्यवस्था के आलोचकों का कहना है कि इसके कारण भारत के नियन्त्रक तथा महालेखा (Comptroller & Accountant General) को भारत की संचित निधि से भुगतान किए जाने वाले धनराशि पर प्रभावी नियंत्रण रखने में कठिनाई होती है। इस आलोचना के बावजूद भी यह बात महत्वपूर्ण है कि भारत की कोषागार पद्धति बहुत हद तक सरकारी व्यय को नियमानुसार निर्देशित करने में उपयोगी रही है। धन का पुनर्विनियोजन विधान मंडलों द्वारा स्वीकृत धनराशियों को संबंधित विभाग द्वारा बजट प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व 31 मार्च तक खर्च करना होता है अन्यथा अनुदान की स्वीकृति समाप्त हो जाती है। पर यदि किसी विशिष्ट अनुदान की किसी एक मद में धन बच जाए और यदि दूसरे मद से अधिक खर्च हो जाए तो विभागाध्यक्ष को एक सीमा तक स्वविवेक का उपयोग करते हुए धन का स्थानान्तरण करने का अधिकार होता है। इस प्रकार कुल व्यय–राशि को बिना परिवर्तित किए किसी एक शीर्ष की एक मद अथवा इकाई में से दूसरी इकाई में धन के हस्तान्तरण की व्यवस्था को पुनर्विनियोजन क्रिया कहा जाता है। यह स्पष्ट होना चाहिए कि पुनर्विनियोजन एक अनुदान शीर्ष से दूसरे शीर्ष में नहीं किया जा सकता। यह तो केवल व्यवस्थापिका द्वारा ही किया जा सकता है।

इसके अलावा, बजट तथा लेखों की शुद्धता की दृष्टि से भी इस प्रकार पुनर्विनियोजन उचित नहीं माने जाते। तृतीय, व्यवस्थापिका ने किसी अनुदान शीर्ष में कटौती कर दी हो तो पूरा करने के लिए भी पुनविर्निंयोजन की वैधानिक अनुमति नहीं होती। चतुर्थ, प्रभारित मदों में यदि कुछ बातें रही हों तो उसे मतदान वाले व्यय मदों में पुनर्विनियोजन नहीं किया जा सकता। अन्त में, राजस्व तथा पूँजीगत व्यय शीर्षों में भी पुनर्विनियोजन करने की कानूनी तौर पर कोई व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार पुनर्विनियोजन का अधिकार विभागाध्यक्षों को बहुत सीमित दायरे में ही अपने स्वविवेक का उपयोग करने की अनुमति देता है तथा 31 मार्च के पश्चात् अनप्रयुक्त राशि में स्वीकृति स्वतः समाप्त हो जाती है।

(4) वित्तीय कोषों का लेखांकन (**Account of Funds**) – बजट क्रियान्वयन में लेखांकन का अत्याधिक महत्त्व है। भारत में लेखांकन को कार्यपालिका से अलग करके उसके लिए लेखा तथा अंकेक्षण विभाग की अलग स्थापना की गयी है। नियंन्त्रक तथा भारत का महालेखा परीक्षक इसका मुखिया होता है महालेखापाल उसे लेखांकन कार्य में सहायता करते हैं। रेलवे को छोड़कर प्रत्येक केन्द्रीय नागरिक विभाग के लिए एक महालेखापाल होता है, तथा प्रत्येक राज्य में भी इनका एक पद होता है लेखांकन के सामान्य नियम भारत के लेखा परीक्षक द्वारा प्रदान किए जाते हैं। इन नियमों के अनुसार लेखाओं की तैयारी चार स्तरों पर सम्पादित होती है :

(i) प्रारम्भिक लेखा इन्द्राज उस कोषागार स्तर पर होती है जहाँ किसी प्रकार का लेन–देन होता है,

(ii) व्यय शीर्षों के अनुसार सभी लेन–देनों का ब्यौरे–वार वर्गीकरण करना,

(iii) लेखाधिकारियों द्वारा लेखों का मासिक संकलन करना, तथा

(iv) भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा लेखों का वार्षिक संकलन।

राज्य सरकार के खर्च से जिला स्तर पर कार्यरत कोषागार केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों के लेखे रखता है। रेलवे, पोस्ट तथा टेलीग्राफ, सार्वजनिक निर्माण विभाग तथा जंगलात से संबंधित भुगतान तो कोषागार द्वारा किए जाते हैं

किन्तु इनके लेखे विभागीय अधिकारियों द्वारा रखे जाते हैं। प्रत्येक महीने की 11 तथा 12 तारीख को कोषाधिकारी द्वारा संबंधित अवधि में किए गए भुगतानों की सूचना (मय वाउचर्स) महालेखाकार को भेजी जाती है।

(5) लेखा परीक्षा (**Audit**) – प्रत्येक माह की पहली तारीख तक गत माह के हिसाब–किताब महालेखाकार कार्यालय में पहुँच जाते हैं जहाँ प्राप्तियाँ तथा खर्चों का लेखा शीर्ष के अनुसार वर्गीकरण होता है। इस प्रकार के वर्गीकरण से पूरे देश भर की लेखा पद्धति में समानता स्थापित करने तथा बजट संबंधी पूर्वानुमान लगाने में काफी सुविधा रहती है। महालेखाकार के कार्यालय स्तर पर भारत सरकार की ओर से निम्न चार शीर्षों में प्रमुखतया लेखा सूचनाएँ संकलित की जाती हैं :

(i) राजस्व खाता (ii) पूँजीगत खाता

(iii) ऋण खाता (iv) दूरस्थ प्राप्तियाँ

प्रथम करों तथा अन्य संबंधित मदों से प्राप्त राजस्व तथा उससे जुड़े हुए खर्च के हिसाब को रखा जाता है जबकि पूँजीगत खाते में उधार लिए गए तथा एकत्रित हुए कोषों तथा इनसे संबंधित व्यय के लेखे रखे जाते हैं। तीसरे खाते में ऐसी प्राप्तियों के भुगतानों का लेखा–जोखा रखा जाता है जिसके कारण या तो सरकार देनदार बनती है या फिर लेनदार। चौथे लेखे में उन लेखा–देनों का हिसाब रखा जाता है। जो मुख्यतया पोस्टल सेवाओं, सार्वजनिक निर्माण सेवाओं, सुरक्षा सेवाओं तथा जंगलात से संबंधित लेन–देन हों तथा अन्य कोई राशि जो पूर्व किसी लेखे में सम्मिलित न की गयी हो। महालेखाकर के कार्यालय में छोटे शीर्षों तथा उप–शीर्षों में प्राप्त होने वाले लेखों को बड़े शीर्षों में वर्गीकृत किया जाता है ताकि उन्हें उस रूप में तैयार किया जा सके जिस रूप में व्यवस्थापिका द्वारा बजट अनुदान मांगे पास की गयी थीं।

बड़े शीर्षों में वर्गीकरण के पश्चात् इन लेखों का अंकेक्षण होकर इन्हें अधिकारियों के पास भेजा जाता है, जो प्रत्येक माह इनको संलग्न करके हर अगले माह सरकार के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं। भारत में महालेखा परीक्षक द्वारा लेखों का वार्षिक आधार पर संकलन किया जाता है तथा उनके द्वारा वित्तीय लेखे विनियोजन लेखे तथा अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट राज्य के राज्यपाल अथवा देश के राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाती है, जो प्रतिवर्ष संसद (या विधानमंडल) के बजट 48 सत्र या तंत्र के समय संसद के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका द्वारा बजट का प्रस्तुतीकरण व्यवस्थापिका द्वारा उसे पास करने की प्रक्रिया तथा सरकार आय–व्यय लेखों की सुव्यवस्थित व्यवस्था से जुड़ी क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। स्वस्थ लोकतंत्रीय व्यवस्था में ये क्रियाएं नागरिक हितों का संवर्द्धन होती है तथा प्रशासकों को इस बात का अहसास कराती रहती है कि लोकसत्ता ही सर्वापरि है एवं उन्हें अपने क्रियाकलापों के लिए लोक प्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेह होना पड़ता है।

बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत (Important Principles of the Budget)

विभिन्न देशों के लम्बे अनुभव से बजट के संबंध में कुछ सिद्धांत प्रतिपादित हुए हैं। ताकि बजट को अधिक सार्थक और उपयोगी बनाया जा सके। यद्यपि इनमें से कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसे अनुलंघनीय माना जा सके तथापि एक स्वस्थ बजट के लिए इनका होना उपयोगी माना जाता है। बजट के इन सिद्धांतों को व्यापक रूप से हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम, वे जिनका संबंध कार्यापालिका से है और द्वितीय, वे जो व्यवस्थापिका से संबंध रखते हैं।

कार्यपालिका से संबंधित सिद्धांत (Principles Related to Executive)

बजट कार्यपालिका के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय का एक मुख्य स्रोत है। इसके द्वारा अपव्यय और पुनरावृत्ति

को कम किया जा सकता है। बजट बनाते समय सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन हो जाता है और अनावश्यक क्रियाओं को समाप्त करने का आधार मिलता है। बजट से प्रशासन में अनुशासन आता है, इसके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन के सभी भाग मिलकर कार्य करते हैं। कार्यपालिका की दृष्टि से बजट को प्रभावशाली और उपयोगी बनाने के लिए जो सिद्धांत अपनाये जाते हैं वे मुख्यतः निम्नांकित हैं :–

1. मुख्य कार्यपालिका का पर्यवेक्षण – बजट एक प्रकार से मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम की रूपरेखा है। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि बजट पर मुख्य कार्यपालिका का सीधा पर्यवेक्षण हो।
2. कार्यपालिका का दायित्व – मुख्य कार्यपालिका द्वारा तैयार किया गया बजट ऐसा होना चाहिए जो व्यवस्थापिका के उद्देश्यों को पूरा करता हो और साथ ही उसमें मितव्ययता का अनुपालन भी किया गया हो।
3. आवश्यक साधन – बजट की तैयारी और क्रियान्विति का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से कार्यपालिका पर होता है। इसे पूरा करने के लिए आवश्यक है कि मुख्य कार्यपालिका को पर्याप्त प्रशासनिक उपकरण अथवा साधन प्रदान किए जाएं।
4. आवश्यक सूचना – बजट बनाते समय जो अनुमान बनाए जाएं तथा यदि उन्हें व्यवस्थापिका में प्रस्तुत कर क्रियान्वित किया जाए, तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर संबंधित अधिकारियों के प्रतिवेदनों को आधार बनाया जाए। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से ही बजट को उपयोगी और सार्थक बनाया जा सकता है। इनके अभाव में यह अन्धा और निराधार होगा। इससे इसकी उपयोगिता भी नष्ट हो जाएगी।
5. स्वविवेक के लिए अवसर – बजट के अनुमान मोटे तौर पर निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि समय के परिवर्तन के साथ मुख्य उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों का चुनाव किया जा सके।
6. एक सहकारी प्रयास – बजट में कुशलता के साथ–साथ सभी विभागों तथा उपविभागों का सक्रिय सहयोग भी प्राप्त होना चाहिए। बजट की रचना केवल एक केन्द्रीय कार्यालय का ही कार्य नहीं, वरन् एक ऐसी प्रक्रिया है जो संपूर्ण प्रशासकीय संरचना का एक महत्वपूर्ण कार्य है।
7. लोचशीलता – बजट के रूप में इतनी लोचशीलता होनी चाहिए कि बदलती हुई आवश्यकताओं के साथ उनमें परिवर्तन किए जा सकें।

उपर्युक्त सिद्धांत यह स्पष्ट करते हैं कि बजट निर्माण करना एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। कार्यपालिका से अत्यन्त योग्यता और सजगता की अपेक्षा की जाती है।

व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धांत (**Principles Related to the Legislature**)

बजट के माध्यम से व्यवस्थापिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। प्रारम्भ में यह नियंत्रण केवल राजस्व के स्रोतों एवं मात्रा को बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता था किन्तु बाद में इसमें व्यय को भी समाविष्ट किया गया। व्यवस्थापिका का नियंत्रण यह स्पष्ट करता हैं कि उसकी स्वीकृति के बिना कोई कर एकत्रित नहीं किया जा सकता और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का समुचित नियंत्रण स्थापित करने के लिए कुछ निम्नलिखित सिद्धांत विकसित किए गए है :–

(i) प्रचार (**Publicity**)– सरकारी बजट विभिन्न सोपानों में से होकर गुजरता है। इनके प्रचार और प्रकाशन द्वारा बजट को सार्वजनिक जानकारी का विषय बना लेना चाहिए। बजट पर विचार–विमर्श करते समय व्यवस्थापिका के गुप्त अधिवेशनों की आवश्यकता नहीं है। बजट का पर्याप्त प्रचार और प्रकाशन होने पर ही देश की जनता और समाचारपत्र उसके संबंध में अपनी राय प्रकट कर सकते हैं।

(ii) **स्पष्टता** (**Clarity**)– बजट यदि अस्पष्ट और उलझन पूर्ण हुआ तो निश्चय ही यह सामान्य जनता की समझ से बाहर रहेगा। बजट की सार्थकता और सफलता के लिए उसे इतना स्पष्ट होना चाहिए कि जनता इसे भली प्रकार समझ सके।

(iii) **एकता** (**Unity**)– बजट में जो व्यय दिखाए जा रहे हैं, उन सभी की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए सरकार को सभी प्राप्तियां एक सामान्य विधि में एकत्रित करनी चाहिए। राजस्व को पृथक् करना एक अच्छे बजट का लक्षण नहीं है।

(iv) **व्यापकता** (**Comprehensiveness**) – बजट के अन्तर्गत समस्त सरकारी कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए व्यय और राजस्व को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए। बजट के देखने पर स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होना चाहिए कि सरकार द्वारा कौन–कौन से नए कर लगाए जा रहे हैं और किन–किन मदों पर सरकार द्वारा व्यय किया जाएगा। सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले नए ऋण भी बजट में सम्मिलित होते हैं। बजट देखने में सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का बोध हो सकता है।

(v) **नियतकालीनता** (**Periodicity**) – बजट द्वारा सरकार को विनियोजन तथा व्यय करने का जो अधिकार दिये जाए वह एक निश्चित समय के लिए होना चाहिए। यदि धन का उपयोग इस समय के अन्तर्गत नहीं किया जाता है, तो उसे प्रयोग करने का अधिकार समाप्त हो जायेगा और केवल पुनर्विनियोजन करने पर ही उसे व्यय किया जा सकेगा। सामान्य रूप से बजट–अनुदान वार्षिक आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। वित्त–वर्ष प्रारम्भ होने से पूर्व ही बजट की मदें स्वीकार कर ली जाती हैं।

(vi) **निश्चितता** (**Accuracy**) – बजट की विभिन्न मदें तथा अनुमान यथासंभव निश्चित एवं परिशुद्ध होने चाहिएं। बजट के अनुमान पर्याप्त सूचनाओं पर आधारित हों, ठीक हों, व्यवस्थित हों और मूल्यांकन करने की दृष्टि से उपयुक्त हों। तथ्यों को गोपनीय रखकर या राजस्व का कम अनुमान लगाकर बजट की परिशुद्धता को समाप्त करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।

(vii) **ईमानदारी** (**Integrity**) – विभिन्न कार्यक्रम उसी प्रकार क्रियान्वित किए जाएं जिस प्रकार उनको बजट में प्रदर्शित किया गया है, अन्यथा बजट निरर्थक हो जाता है। बजट की रचना के समय जो उद्देश्य निर्धारित किए हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए ईमानदार एवं कार्यकुशल प्रशासन का होना नितान्त आवश्यक है।

कुछ अन्य सिद्धांत (**Some Other Principles**)

एक स्वच्छ और अच्छे बजट की रचना में उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धांत भी अपनाए जाने चाहिएं :–

1. संतुलित बजट (**Balanced Budget**) – बजट संतुलित होना चाहिए। यह अनुमानित व्यय अनुमानित आय तथा राजस्व से अधिक नहीं होना चाहिए। यद्यपि सरकारी वित्त में अधिक लोचशीलता होती है, क्योंकि अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए आवश्यक धन का प्रबंध किया जा सकता है, तथापि इसकी भी एक सीमा होती है। जो देश लगातार इस सीमा को पार करता रहेगा वह दीर्घकाल में दिवालिया हो जाएगा और उसकी अर्थव्यवस्था चरमरा जायेगी। जब बजट में व्यय और राजस्व बराबर होते हैं तो उसे हम संतुलित बजट कहते हैं किन्तु जब व्यय राजस्व की अपेक्षा कम होता है तो उसे आधिक्य या बचत बजट (Surplus Budget) कहा जाएगा और यदि व्यय अनुमानित राजस्व की अपेक्षा अधिक है तो उसे घाटे का बजट कहा जाएगा। यदि कभी घाटे का बजट बन जाए तो कोई चिन्ता की बात नहीं है, किन्तु निरन्तर ऐसा होना राज्य के स्थायित्व और वित्तीय साख के लिए खतरनाक होता है। भारत के बारे में यही बात लागू हो रही है। अनवरत् रूप से पेश किये जाने वाले घाटे के बजटों के कारण देश की अर्थव्यवस्था को गंभीर खतरों से

जूझना पड़ रहा है। प्रधानमंत्री पी॰ वी॰ नरसिंहराव और वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह इन खतरों की तरफ अपने कार्य काल में ध्यान दिलाते रहे। आधुनिक अर्थशास्त्री घाटे की अर्थव्यवस्था को कुछ परिस्थितियों में सहनीय और आवश्यक मानते हैं। उनके कथनानुसार घाटे की व्यवस्था का मुकाबला करने के लिए जनता के लिए अधिक काम तथा आय की व्यवस्था करना आवश्यक है। राज्य ऐसा तभी कर सकता है जब वह सार्वजनिक कार्यों पर सरकारी व्यय की वृद्धि करें। इस व्यय की वित्तीय व्यवस्था घाटे के बजट द्वारा की जा सकती है। इन विचारकों का कहना है कि एक संतुलित बजट अपनी जनता को कुछ वापिस कर देता है जो उसके ऋण अथवा करों के रूप मे जनता से लिया है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत घाटे का बजट जब आय से अधिक व्यय का प्रावधान करता है तो उसे पूरा करने के लिए वह कागजी मुद्रा का सहारा लेता है। इस प्रकार राज्य जनता से जितना धन लेता है उससे अधिक प्रदान करके जनता की क्रय–शक्ति को बढ़ाता है। व्यापारिक मंदी का मुकाबला करने के लिए घाटे की व्यवस्था एक लोकप्रिय साधन बन चुकी है।

2. मिश्रित बजट (**Composite Budgeting**) – स्वस्थ बजट का एक दूसरा सिद्धांत यह है कि वह विशुद्ध न होकर मिश्रित होना चाहिए अर्थात् प्राप्तियों तथा व्यय दोनों के सभी लेन–देन पूरी तरह से दिखाए जाने चाहिए, न कि केवल उनकी विशुद्ध स्थिति को ही। इस नियम की अवहेलना करने पर वित्तीय प्रक्रिया अस्पष्ट हो जाएगी, वित्तीय नियंत्रण प्रभावहीन बन जाएगा और लेखे अपूर्ण बन जाएंगे। उदाहरण के लिए, यदि एक विभाग के व्यय का अनुमान 4 लाख रुपए है और आय का अनुमान दो लाख रुपये है। यदि बह विशुद्ध बजट की रचना करे तो व्यवस्थापिका से केवल दो लाख रुपये का अनुदान चाहेगा और इस प्रकार वह व्यवस्थापिका को अपने आधे व्यय पर नियंत्रण रखने से वंचित कर देगा।

3. बजट के दो भाग (**Two Parts of the Budget**) – बजट के दो भाग किए जाने चाहिएं। एक भाग में चालू व्यय और आय होनी चाहिए तथा दूसरे भाग में पूंजीगत भुगतान तथा प्राप्तियां होनी चाहिएं। प्रथम भाग राजस्व बजट कहलाएगा और दूसरा भाग पूँजीगत बजट कहलाएगा। यदि इस प्रकार का अन्तर न किया गया तो समस्त आर्थिक चित्र धुंधला रह जाएगा। इसलिए दोनों भागों को अलग रखा जाता है और अलग–अलग संतुलित किया जाता है।

4. बजट तथा लेखों की समानता (**Similarity of Budget and Accounts**) –बजट का एक अन्य सिद्धांत यह है कि इसका रूप लेखों के रूप से मिलता हुआ होना चाहिए। ऐसा करने से बजट की रचना में सुविधा होगी, बजट पर नियंत्रण रखा जा सकेगा और लेखों को भी ठीक प्रकार रखा जा सकेगा। भारत में प्राक्कलन समिति द्वारा प्रस्तावित सुझावों पर विचार करने के बाद वित्तमंत्री बजट का रूप निश्चित करता है।

5. बजट का नकदी आधार (**The Cash Basis of the Budget**) – बजट में आय और व्यय अनुमान वर्ष की वास्तविक प्राप्ति या व्यय से संबंधित होने चाहिए। नकद बजट का काम यह है कि इसके आधार पर एक वित्तीय वर्ष के लेखों की अन्तिम तैयारी वर्ष के समाप्त होते ही की जाती है। इस प्रणाली का दोष यह है कि वर्ष के लिए वित्तीय तस्वीर सही–सही नहीं उभर पाती। आगामी वर्षों में किए जाने वाले भुगतानों को हटा कर घाटे के स्थान पर वर्तमान वर्ष के बजट में अतिरेक की स्थिति दिखाई जा सकती है। यद्यपि बजट का राजस्व भाग दोष से बचा रहता है, किन्तु यह अन्तिम लेखों की तैयारी और प्रस्तुतीकरण को प्रकट करता है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ए॰ प्रेमचन्द एण्ड जस्सी बुर्क हैड, कम्पैरेटिव इंटरनेशनल बजटिंग एण्ड फाइनैंस, लंदन, ट्रांसैक्शन बुक्स, 1984
2. अहल्या एस॰ भट्ट, बिल्डिंग बजट फरोम बिलो, दिल्ली, न्यू यूनिफेम, 200
3. पी॰एस॰ गुप्ता, बजट सिस्टमः प्रोसिजर एण्ड फोर्मस, दिल्ली, रणजीत, 196
4. एफ॰ डब्ल्यू॰ क्राउजे, परफोरमेन्स बजटिंग इन इंडिया, इ॰सी॰ए॰एफ॰इ॰ जर्नल, 1966
5. एस॰एस॰ विश्वनाथन, बजटिंग इन गवर्नमेन्ट, आई॰आई॰पी॰एम॰, नई दिल्ली, 1972
6. एम॰एम॰ शूरी, गवर्नमैंट बजटिंग इन इंडिया, नई दिल्ली, कॉमनवैल्थ, 1990
7. राजशेखर सिंह, यूनियन बजट्स एण्ड फाईनैन्सियल एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप, 1988
8. ए॰के॰ सैनगुप्ता, गवर्नमैंट बजटिंग इन इंडिया, लखनऊ, प्रिंट हाउस, 1991

कुछ संभावित प्रश्न

- भारत में केन्द्रीय स्तर पर बजट निर्माण कैसे किया जाता है?
- भारत में केन्द्रीय स्तर पर बजट अधिनियम कैसे बनता है ?
- बजट क्रियान्वयन की प्रक्रिया का वर्णन करो।

Semester-I

Unit-II

अध्याय–5 (Chapter-6)

इकाई – बजट एक वित्तीय नियन्त्रण तथा सामाजिक–आर्थिक विकास के यन्त्र के रूप में

(Budget as a Tool of Financial Control and Socio-Economic Development)

रूपरेखा :–

- बजट की वित्तीय नियन्त्रण में भूमिका
- बजट की सामाजिक–आर्थिक विकास में भूमिका
- बजट धन आवंटन का साधन
- बजट द्वारा आर्थिक नीति का संचालन
- बजट द्वारा मुद्रण नीति का संचालन
- बजट की सामाजिक भूमिका
- सारांश
- उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

अध्याय–6

बजट एक आर्थिक व प्रशासनिक यन्त्र के रूप में

(Budget as an Instrument of Economic & Administrative Development)

बजट तथा प्रशासनिक विकास

(Budget & Administrative Development)

सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक विकास के लिए बजट का महत्व, किसी भी सरकार का प्रभावशाली होना इस बात पर निर्भर करता है कि इसके पास कितनी प्रभावशाली प्रशासनिक प्रणाली है। क्योंकि प्रशासनिक मशीनरी ही कार्यपालिका द्वारा निर्धारित की गई नीतियों को लागू करती हैं।

1. इसके अलावा प्रशासकीय प्रक्रिया एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा आम जनता की आवश्यकताओं का मूल्यांकन व संचालन करके सरकार तक पहुंचाया जा सकता है। इसलिए एक कुशल प्रशासनिक व्यवस्था का होना जरूरी है। क्योंकि यह देश के आर्थिक, राजनैतिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है लेकिन यह सब तभी संभव है। जब एक ठोस आर्थिक आधार हमारे पास होगा। और इस आधार को मूलरुप देने के लिए 'बजट' का सहारा लिया जाता है, क्योंकि आर्थिक विकास जनसंख्या में परिवर्तन, लोगों की आवश्यकताओं में लगातार बढ़ोत्तरी तथा समस्यायें तथा शिक्षा, यातायात, मानव कल्याण आदि के क्षेत्र में बढ़ती हुई आवश्यकताएँ सरकार के लिए चुनौती का काम करती हैं। जिसके लिए सरकार को अतिरिक्त प्रशासनिक प्रक्रिया को introduce करना पड़ता है तथा इन प्रक्रियाओं को किस प्रकार कार्यक्रमों के अनुसार लागू करें और सबसे महत्वपूर्ण बात है कि किस प्रकार Finance किया जाए।
2. प्रभावशाली वित्तीय योजनाओं के लिए तथा विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों को एकजुट करने के लिए 'Budget' ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा लोगों का सरकार के प्रति विश्वास समाज कल्याण और राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता मिल सकती है जिससे प्रशासन में उच्च स्तर की कुशलता प्राप्त की जा सकती है। तथा आर्थिक उन्नति को भी वास्तविक रूप दिया जा सकता है। बजट का प्रयोग सभी आर्थिक फैसले लेते समय किया जाता है।
3. इस प्रकार बजट की योजना का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना जा सकता है। क्योंकि किसी भी योजना के लिए वित्तीय संसाधनों का बँटवारा करना होता है। इसके लिए कब कितना और क्यों? पैसा दिया जाए ये बातें बजट द्वारा निर्धारित की जाती है।
4. सभी विकासशील देशों में वित्तीय संसाधनों की कमी है, परन्तु विकास प्रशासन भी उनका मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् प्रशासन के प्रत्येक पहलू को विकसित करने के लिए वचनबद्ध है। क्योंकि इसके बिना वहाँ की जनता का सरकार में नीयत रखना सम्भव नहीं है। उपलिखित दोनों बातें तभी सम्भव हो सकती है। जब हमारे पास वित्तीय व मानवीय संसाधनों का उचित उपयोग हो। इनके कारण बजट का महत्व प्रकाश में आता है। क्योंकि ऐसा बजट के माध्यम से होता है। बजट के माध्यम से ही विकास की दशा प्रदान की जाती है। दूसरे शब्दों में बजट एक ऐसा प्रशासनिक यन्त्र है। जिसके माध्यम से आर्थिक विकास को प्राप्त किया जा सकता है।

5. बजट को मध्य नजर रखते हुये सरकार अपनी नीतियाँ निर्धारित करती है। तथा घोषणा करती है और प्रशासकीय प्रणाली का एक रूप देती है। यदि किसी भी नीति में परिवर्तन करना है तो बजट में निर्धारित प्रावधानों को Examine करना पड़ता है।

6. बजट के माध्यम से ही किसी प्रशासकीय संस्था का संगठन प्रक्रिया निर्धारित की जाती है अर्थात् विभिन्न संगठनों में कितना स्टाफ होगा, कुशलता की दृष्टि से भर्ती की क्या प्रक्रिया अपनाई जाएगी क्योंकि कई बार वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण संगठनों में मौलिक परिवर्तन करने पड़ते हैं। इसलिए प्रशासन सुचारु रूप से चलता रहे यह बात वित्तीय संसाधनों की उपलब्धि पर निर्भर करती है। तथा उपलब्ध संसाधनों के उचित व अधिकतम उपयोग पर।

7. योजना और बजट को लेकर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि इन देशों में Co-ordination होगा तो योजना बहुत ही प्रभावशाली होगी अर्थात् प्रशासन की कुशलता इन दोनों के बुद्धिमतापूर्ण मेल पर निर्भर करती है। क्योंकि बजट को substative आधार माना जाता है। इसके बिना योजना केवल व्यर्थ का अभ्यास होगा। कोई व्यवहारिक उपयोगिता नहीं होगी।

8. सरकारी प्रशासनों में सार्वजनिक कार्य सार्वजनिक उपयोगिताएँ, कल्याणकारी कार्यक्रम सामाजिक सेवाएँ, सार्वजनिक उत्पादन, उपकरण आदि शामिल किए गए हैं। इन सभी कार्यक्रमों पर वित्तीय दृष्टि से नियंत्रण रखना बहत आवश्यक है। अर्थात् किस प्रकार विभिन्न प्रतियोगी विभागों को पैसा दिया जाए तथा किस प्रकार बड़ी Projects को प्रतिबन्धित किया जाए जो कि एक बड़ी समस्या है। 'बजट' ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा इनको नियंत्रित किया जा सकता है। अब प्रत्येक प्रशासकीय विभाग के कार्यक्रमों को कार्यक्रम, कार्य गतिविधियों आदि में बाँट दिया जाता है। अब ज्यादा ध्यान Functional classification पर दिया जाता है।

9. बजट द्वारा यह सम्भव है कि विभिन्न Projects और क्रियाओं मे चुनाव प्रबन्धकीय नियंत्रण व मूल्यांकन को लागू किया जाता है। और इनके खर्चे में कुशलता और आर्थिकता द्वारा एक सदुपयोग की प्रक्रिया को प्राप्त किया जा सकता है। वारतव में बजट एक Execialive Agency का कार्य करता है। क्योंकि इन Projects के management में इसी का महत्वपूर्ण Role रहता है।

10. जब कोई भी विभाग अपनी योजनाएँ तैयार करता है, सम्मिलित करता है नियंत्रण एवं मूल्यांकन करने के बाद Report तथा पुनर्निरीक्षण आदि में कार्य करता है। तो इन सभी का एक जगह मूल्यांकन बजट के माध्यम से किया जाता है। अतः सारी प्रशासकीय प्रक्रिया में बजट का महत्वपूर्ण रोल रहता है। जैसे :–

(i) सभी प्रशासकीय विभागों को वित्त प्रदान करना।

(ii) वित्तीय संसाधनों को संचालित करना और प्रशासनिक दृष्टि से, कुशलता एवं मूल्यांकन की दृष्टि से सरकार के निर्धारित मूल्यों को प्राप्त करना शामिल है। लेखांकन की प्रक्रिया में जो व्यय के साथ–साथ Record की जाती है। मैं इस बात की समीक्षा 'बजट' के माध्यम से की जाती है कि किसी प्रशासनिक विभाग के लिए क्या काम था तथा उसकी क्या Performance रही। इनके माध्यम से बजट एक प्रशासकीय प्रक्रिया को एक व्यवहारिक रूप देता है।

(iii) प्रबन्धकीय फैसले लेते समय– क्मबपेपवद उंमत को Guidance देता है।

(iv) फैसलों को लागू करते समय क्या Procedure अपनाना है। निर्देशन देता है।

(vi) It is a communication media.

बजट एक आर्थिक विकास के यन्त्र के रूप में

(Budget as an Instrument of Economic Development)

पुराने समय में जबकि राज्य के कार्य बहुत सीमित थे तो बजट को एक यन्त्र के रूप में माना जाता था जिसके माध्यम से वित्तीय मामलों में क्रमबद्धता लाई जा सके और मुख्य Focus इस बात पर था कि किस प्रकार खर्चे में मितव्यता और लोगों पर कम से कम कर का भार पड़े। ये दो मुख्य उद्देश्य बजट के थे लेकिन आजकल बजट का कार्यक्षेत्र काफी बढ़ गया है। और विभिन्न विभागों के बीच प्रतियोगिता को मध्य नजर रखते हुए बजट का कार्य समृद्धता और कल्याण को बढ़ावा देना है। अर्थात् बजट अब आर्थिक नीति का माध्यम बन गया है।

अब बजट का सम्बन्ध

(1) यह पैदावार बढ़ाता है।

(2) आय तथा व्यय के बँटवारे में असमानता को धीरे–धीरे खत्म करना।

(3) कीमतों में वृद्धि पर नियंत्रण करना जो किसी संकट या युद्ध के समय पैदा हुई हो।

(i) आम जनता के लिए रोजगार के साधन उपलब्ध कराना।

(ii) बजट उत्पादन की प्रक्रिया में सहायक इस प्रकार हो सकता है कि ये उद्योग एवं कृषि की पूर्ण सुरक्षा दे तथा Subsidy (छूट) प्रदान करे।

(2) आय तथा व्यय में असमानता दूर करने के लिए कर प्रणाली में आवश्यक सुधारों का सुझाव दिया जाए। तथा विभिन्न करों से प्राप्त पैसे को गरीब वर्ग की शिक्षा, आवास तथा कल्याण योजनाओं पर खर्च किया जा सके।

(iii) कीमतों में तेजी को रोकने के लिए जो युद्ध या संकट के द्वारा अतिरिक्त संचालित किया जाता है उसे वापिस ले लिया जाए।

(iv) जनता को रोजगार के मामले में बजट सार्वजनिक व विकासशील स्कीमों में ज्यादा पैसा खर्च करके दे सकता है या निजी रोजगार के लिए Loan Provide कर सकता है।

सामान्यतः बजट को आर्थिक क्षेत्र में तीन मुख्य कार्य करने पड़ते हैं।

(1) पैसा निर्धारित करना। (Asa Tool of Allocation of Money)

(2) आर्थिक नीति का संचालन (As a Tool of Fiscal Policy) (वित्त सम्बन्धी)।

(3) मुद्रण नीति का संचालन (As a Tool of Monetary Policy) (मुद्रा संबंधी)।

(1) पैसा निर्धारित करना :

(As a Tool of Allocation of Money)

किसी भी आर्थिक व्यवस्था में सर्वांगीण आर्थिक विकास के लिए बजट को धन वितरण का संचालन करना पड़ता है। कि हमारे पास कितने वित्तीय संसाधन है। और विकास को लेकर प्राथमिकता का क्रम क्या है। साधारणतया बजट के माध्यम से वितरण की प्रक्रिया को अन्तिम रूप दिया जाता है।

(i) इसके अतिरिक्त बजट को "As a tool of control of public expenditure (खर्च)"

(ii) As a tool of finance management.

(iii) As a tool of economic planning.

(iv) As a tool of evolution of various development schemes & plans.

(i) जहाँ पर वित्तीय प्रक्रिया में व्यय पर नियन्त्रण की बात है। इसके लिए बजट बनाते समय एक निश्चित प्रक्रिया का रूप दिया जाता है। जिस पर बजट लागू होने के बाद व्यवहारिक रूप से अमल किया जाता है। अर्थात् वित्तीय

अधिनियम व उपनियमों के तहत एक निश्चित प्रक्रिया को रखा गया है। जिसके माध्यम से खर्चे की प्रक्रिया पर सामयिक लागत तथा नतीजों को ध्यान में रखकर समीक्षा की जाती है।

(ii) Financial management के लिए बजट इसलिए सहायक है कि जब वित्तीय फैसले किए जाते हैं तो बजट उनके Guide के रूप में कार्य करता है और अधिक विकास के उद्देश्य को भी प्राप्त करता है तो फैसले की प्रक्रिया मे बजट के निर्देशन को स्वीकार करना पड़ेगा।

(iii) इसी प्रकार योजना बनाते समय बजट को ध्यान में रखते हुए यह तय करने का फैसला किया जाता है कि विभिन्न प्रशासकीय क्षेत्रों वित्तीय संसाधनों के उचित उपयोग को ध्यान में रखकर योजनाएँ बनाई गयी है।

(iv) मूल्यांकन के लिए बजट किसी भी विभाग के कार्यों का निरीक्षण कर सकता है। इसके लिए इसके पास पर्याप्त मशीनरी है। प्रत्येक विभाग की कार्यशैली के लिए वित्तीय संदर्भ में कुछ निश्चित मापदण्ड स्थापित किए हैं जिनकी परिधि में विभाग को अपना काम करना पड़ता है।

(2) आर्थिक नीति का संचालन :

(Budget as a Tool of Fiscal Policy)

किसी देश की वित्तीय नीति बजट में Reflected (प्रतिबिम्बित) होती है। सार्वजनिक व्यय व आय का स्पष्ट रूप दर्शाने वाले दस्तावेज का नाम Fiscal policy है। आर्थिक विकास के लिए वित्तीय नीति एक ठोस संगठन के तौर पर कार्य करती है अर्थात् आर्थिक नीति में :

(i) (कर व्यवस्था) Taxation system

(ii) (निवेश नीति) Investment policy

(iii) (प्रशासन की आय तथा व्यय) Revenue & expenditure of administration (i) कर व्यवस्था : बजट का सरकार की कर नीति पर क्या प्रभाव पड़ा अर्थात् आने वाले वर्ष में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों का क्या अनुपात होगा तथा किस प्रकार से वे कर ज्यादा अर्थपूर्ण हैं तथा किन–कि Tax को छोड़ देना चाहिए। ये सब बातें वित्तीय नीति में तय की जाती है, जिसकी सलाह बजट द्वारा की जाती है। कर प्रणाली की प्रकृति बजट द्वारा तय की जाती है।

(ii) निवेश नीति : किसी देश की आर्थिक नीति का निवेश नीति पर भी प्रभाव पड़ताहै। यह बात अलग है कि निवेश नीति का निर्धारण बजट द्वारा किया जाता है अर्थात् कितना निवेश करना है। किस Sector में करना है, कब करना है, प्रकृति क्या होगी आदि बातें बजट द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके अलावा Private sector में भी बजट 'कर नीति' द्वारा इसे नियंत्रित करता है। इस प्रकार निवेश नीति के माध्यम से बजट का आर्थिक विकास में बहुत महत्व है।

(iii) प्रशासन की आय तथा व्यय रू बजट को सरकार की वित्तीय योजना का स्वामी कहा जा सकता है। यह ही सम्भावित आय तथा व्यय को सरकार के सामने पेश करता है। आय तथा व्यय की क्रियायें भी सुचित करता है। बजट preparation के समय देश की वित्तीय व्यवस्था का पूर्ण ब्यौरा दिया जाता है।

(3) मुद्रण नीति का संचालन :

(As a Tool of Monetary Policy)

Monetary Policy का अर्थ है कि मुद्रा बाजार में इसका क्या प्रभाव व लागत है किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में मुद्रा के circulation का क्या प्रभाव है। कितनी मुद्रा संचालित की जाए – यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है। किसी देश का आर्थिक विकास इसी बात पर निर्भर करता है। मुद्रा के संचालन पर विभिन्न आर्थिक विकास के पहलू होते हैं, अर्थात् मुद्रक नीति विभिन्न तरीकों से आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती है।

(i) मुद्रा संचालित करके Currency Circulation.

(ii) Currency Credit (साख जमा)

(iii) Borrowing of Govt. (सरकार की उधार)

(i) Currency Circulation से देश के आर्थिक विकास को रूप दिया जाता है। इसी के माध्यम से विभिन्न वस्तुएँ व सेवाएँ विनिमय की जाती हैं, उत्पादन की प्रक्रिया में पैसा तेल का कार्य करता है। पैसे की कुल उत्पादन से ज्यादा circulate किया या कम। इस बात का निर्धारण बजट द्वारा किया जाता है। यदि देश के आर्थिक विकास में कोई रुकावट आती है तो कुल उत्पादन के मूल्य से ज्यादा पैसा circulate किया जा सकता है।

(ii) इसी प्रकार सरकार की साख नीति भी आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं क्योंकि इसके द्वारा नियत किया जाता है कि सरकार को कितना पैसा credit (जमा) में है, ताकि आर्थिक व्यवस्था ठीक रहे, क्योंकि आर्थिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण घटक सरकार की साख नीति पर निर्भर करता है।

(iii) इसके इलावा सरकार की उधार नीति का निर्धारण व नियंत्रण भी बजट के माध्यम से किया जाता है कि कितना किस योजना के लिए उधार लिया जाए तथा उधार के क्या माध्यम होंगे (राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय उधार) का निर्धारण बजट द्वारा किया जाता है। विकासशील देशों में जहाँ पूँजी निवेश को लेकर काफी समस्या है, वहाँ बजट का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इन देशों के सार्वजनिक निवेश के माध्यम से ही तीन व संतुलित आर्थिक विकास को लाने की योजना बनाई गई है। इन देशों में पूंजी निवेश की दर में लगातार वृद्धि हो रही है। इस बढ़ते हुए खर्च का प्रबन्ध के लिए क्या किया जाए यह एक व्यापक समस्या है। इसलिए इन बातों की जिम्मेवारी बजट पर आ गई है। बजट के प्रभाव दूरगामी होते हैं जिसका प्रभाव अपने देश के अतिरिक्त दूसरे देशों पर भी पड़ता है। इसलिए सार्वजनिक खर्च की मात्रा, प्रक्रिया का निर्धारण–सूझबूझ से तथा सामंजस्य से करना चाहिए। Govt. के पास इसका खर्चा होना चाहिए। Demands for Grant के पास होने के बाद Appropriation bill पर voting होती है? जब राज्य सभा सारे माँग अनुदानों पर मतदान करके पास कर देती है। तो इन सब पास की गई माँग अनुदानों को एक बिल का रूप दे दिया जाता है। इस विनियोग बिल को नये सिरे से लोक सभा में पेश किया जाता है। व्यवहारिक रूप से इस बिल का ज्यादा महत्व है केवल मांग अनुदानों में निर्धारित राशि को वैधता प्रदान करने के लिए ऐसा किया जाता है। ताकि मन्त्रालयों को अपने–अपने खातों से पैसा निकलवाने की Authority मिल जाए।

1. भारतीय संविधान में Art. 166(1) के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि भारतीय संचित निधि से एक भी पैसा नहीं निकाला जा सकता जब तक विनियोग बिल पास न हो जाए। विनियोग बिल के पास होने की प्रक्रिया वही है जो सामान्य बिल पर लागू होती है।
2. विनियोग बिल पेश करने के बाद किसी तरह का संशोधन Allowed नहीं है। क्योंकि माँग अनुदान की राशि पहले ही संसद पास कर चुकी है। विनियोग बिल पर बहस के समय charged item 42 मतदान नहीं होता लेकिन इन पर बहस की जा सकती है। विनियोग बिल पर बहस करते समय – विभिन्न मुद्दों को लेकर सरकार की कार्य प्रणाली से संबंधित कुछ सुझाव व टिप्पणियाँ दी जा सकती हैं। इसके अलावा जिन मुद्दों के लिए प्रस्तावित खर्चा रखा गया है उसमें भी विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। विनियोग बिल के माध्यम से हम सामान्य बजट तथा रेल बजट को कानूनी रूप प्रदान कर सकते हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ए॰ प्रेमचन्द, कन्ट्रोल ऑफ पब्लिक एक्सपैंडिचर इन इण्डिया, अलाइट, नई दिल्ली, 1963
2. एम॰एम॰ शूरी, गवर्नमेंट बजटिंग इन इण्डिया, कामनवेल्थ, नई दिल्ली, 1990

कुछ संभावित प्रश्न :

- बजट एक प्रबन्धन का यन्त्र है। वर्णन करो।
- बजट एक सामाजिक तथा आर्थिक विकास का साधन है। वर्णन करो।

Semester-I

Unit-III

अध्याय–7 (Chapter-7)

इकाई – वित्त मंत्रालय

रूपरेखा :–

- वित्त मंत्रालय का संगठन
- वित्त मंत्रालय के कार्य
- वित्त मंत्रालय द्वारा बजट पूर्व जाँच पड़ताल
- वित्त मंत्रालय की बजट लागू करने में भूमिका
- सारांश
- उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

अध्याय–7

सार्वजनिक वित्त पर वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण

(Finance Ministry's Control Over Public Finance)

वित्त मन्त्रालय कार्यपालिका का वह प्रभावशाली यन्त्र है जिसके द्वारा सरकारी व्यय पर नियन्त्रण रखा जाता है। इस विभाग का कार्य व्यय करने वाले विभिन्न विभागों (Spending Departments) पर नियन्त्रण रखना है और उनमें समन्वय तथा सामंजस्य बनाए रखना है। इसी विभाग की सहायता से सरकार के आय और व्यय के अनुमान तैयार किये जाते हैं और आर्थिक व वित्तीय नीतियों तथा कार्यक्रमों का आयोजन होता है। वित्त मन्त्रालय का महत्व इस तथ्य से प्रकट होता है कि कोई मन्त्रालय जब कोई नई योजना चलाना चाहता है है तो इसे वित्त मन्त्रालय से राय लेनी पड़ती है और इसकी 'काम चलाऊ' (Tentative) स्वीकृति मिल जाने के बाद ही उक्त विभाग अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार की नीतियाँ और योजनायें जब संसद द्वारा स्वीकृत हो जाती हैं तो उसी विभाग पर बजट को कार्यान्वित करने और तदर्थ नियन्त्रण तथा जाँच पड़ताल करते रहने का उत्तरदायित्व होता है।

वित्त मंत्रालय के बजट संबंधी कार्य

(Budgetary Functions of Ministry of Finance)

इस प्रकार के नियंत्रण के अतिरिक्त वित्त मंत्रालय निम्नांकित बजट संबंधी कार्य सम्पादित करता है :–

1. यह देखना कि प्रशासकीय विभाग वित्तीय वर्ष में आवश्यकता से अधिक रकम नहीं पा जाते हैं और जो कुछ वे खर्च नहीं कर सके उस बची रकम को वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व लौटा देते हैं।
2. समय–समय पर विभागों से रिपोर्ट मांगकर यह देखते रहना कि व्यय की क्या प्रगति है और जहाँ कहीं आवश्यक प्रतीत हो उन्हें चेतावनी देते रहना।
3. केन्द्रीय राजस्व आयोग के द्वारा संग्रहित होने वाले राजस्व पर दृष्टि रखना। यह आयोग केन्द्र के कुछ मुख्य करों, यथा – कस्टम, आय कर आदि की उगाही करता है।
4. नियन्त्रक अफसरों की मर्यादा के बाहर पुनः विनियोजनों (Reappropriations) को स्वीकृति प्रदान करना।
5. सामान्यतः प्रशासनिक मन्त्रालयों को वित्तीय सलाह देना और मार्गदर्शन करना। वित्त मंत्रालय का दायित्व केन्द्रीय सरकार का वित्त प्रबन्ध करने और सारे देश पर प्रभाव डालने वाले सभी वित्तीय मामलों को निपटाने का है। यह मन्त्रालय विकास और अन्य सार्वजनिक वित्त पर वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण आवश्यकताओं के लिए देश–विदेशों से साधन जुटाने की व्यवस्था करता है और सरकार की कर लगाने तथा ऋण लेने की नीतियों का नियमन करता है। यह अन्य सम्बद्ध मन्त्रालयों के सहयोग से राज्यों और सरकारी क्षेत्रों के उपक्रमों के लिए किये जाने वाले अन्तरणों सहित भारत सरकार के सम्पूर्ण व्यय का नियन्त्रण करता है, चाहे वह देश में किया जाता हो या विदेश में। यह मंत्रालय बैंक कारोबार, बीमा मुद्रा, सिक्का–ढलाई और विदेशी मुद्रा से संबंधित मामले भी निपटाता है।

वित्त मंत्रालय विभाग का संगठन

(Organisation of Finance Ministry)

वित्त मन्त्रालय भारत सरकार के सभी विभागों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग है। यह मन्त्रालय इस समय आर्थिक मामलों के विभाग, राजस्व विभाग (Revenue Department) तथा व्यय विभाग (Expenditure Department) में विभक्त है। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष एक सचिव है और विभागों में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रधान सचिव (Principal Finance Secretary) होता था परन्तु अब इसे समाप्त कर दिया गया है। इस मन्त्रालय का मन्त्री कैबिनेट स्तर का एक वरिष्ठ मंत्री होता है। उसकी सहायता के लिए राज्यमंत्री और उपमंत्री होते हैं। वित्त मंत्रालय का प्रादुर्भाव सन् 1810 में 'वित्त विभाग' के रूप में हुआ था। सन् 1947 में वित्त विभाग का नाम 'वित्त मन्त्रालय' किया गया। केन्द्रीय वित्त–मन्त्रालय की रिपोर्ट वर्ष 1974–75 के अनुसार वित्त–मन्त्रालय के चार विभाग थे – राजस्व और बीमा विभाग, व्यय विभाग, आर्थिक कार्य विभाग और बैंकिंग विभाग। लेकिन 1975–76 के प्रतिवेदन से प्रकट हुआ कि मन्त्रालय को पुनर्गठित कर तीन भागों में बाँट दिया गया है – (1) व्यय विभाग, (2) आर्थिक कार्य विभाग, तथा (3) राजरव और बैंकिंग विभाग। मन्त्रालय की 1977–78 की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में भी इसके तीन विभाग हैं, किन्तु इतना और परिवर्तन कर दिया गया है कि भूतपूर्व राजस्व और बैंकिग विभाग की बैंकिंग प्रशाखा को जुलाई 1977 से आर्थिक कार्य विभाग में मिला दिया गया है।

वर्तमान में इस मन्त्रालय के तीन विभाग हैं :

1. आर्थिक कार्य विभाग; (Department of Economic Affairs)
2. व्यय विभाग; और (Departinent of Expenditure, and)
3. राजस्व विभाग (Department of Revenue)

अब हम इन विभागों का वर्णन विस्तारपूर्वक करेंगे :

1. आर्थिक कार्य विभाग (**Department of Economic Affairs**) : यह विभाग अन्य बातों के साथ–साथ मौजूदा आर्थिक प्रवृत्तियों का परिवीक्षण करता है और आन्तरिक तथा बाह्य प्रबन्ध को प्रभावित करने वाले सभी मामलों के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देता है जिसमें वाणिज्यिक बैंकों तथा सर्वाधिक ऋणदाता संस्थाओं का कार्य–चालन, पूँजी निवेश का विनियमन, विदेशी सहायता आदि शामिल हैं। भारत संघ तथा उन राज्य सरकारों और विधान–मण्डल वाले संघ राज्य क्षेत्रों के जब वे राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत हों, बजट तैयार करने और उन्हें संसद में पेश करने की जिम्मेदारी भी इस विभाग की है। आर्थिक कार्य विभाग के सात प्रमुख प्रभाग निम्नलिखित हैं :

(i) आर्थिक प्रभाग (Economic Division)

(ii) बीमा प्रभाग (Insurance Division)

(iii) बजट प्रभाग (Budget Division)

(iv) बैंकिग प्रभाग (Bank Division)

(v) निवेश प्रभाग (Investment Division)

(vi) मुद्रा और सिक्का प्रभाग (Currency and Coinage Division)

(vii) विदेशी वित्त प्रभाग (External Finance Division); और

(viii) प्रशासन प्रभाग (Administration Division)

(i) आर्थिक प्रभाग (Economic Division) : आर्थिक कार्य विभाग का आर्थिक प्रभाग, वित्त मन्त्रालय का एक प्रमुख स्कन्ध है जो आर्थिक नीति संबंधी मामलों में सरकार की सहायता के लिए जिम्मेदार है। प्राथमिक रूप में इसकी भूमिका सलाहकार की है। इस प्रभाग का कार्य देश और विदेशों की वार्षिक प्रवृतियों और घटनाओं का और इन प्रवृत्तियों और घटनाओं से आर्थिक नीतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन और विश्लेषण करना है ताकि मंत्रालय को इनकी जानकारी और आर्थिक सलाह दी जा सके। यह प्रभाग सरकार की सम्पूर्ण मूल्य नीति से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है। इस प्रभाग को पांच मुख्य एककों में संगठित किया गया है – (i) मूल्य, उत्पादन और वेतन नीति, (ii) सरकारी वित्त, मुद्रा बैंकिग और ऋण नीति, (iii) राजकोषीय नीति, (iv) भुगतान–संतुलन व विदेशी व्यापार और (v) आर्थिक सूचना। यह प्रभाग भारतीय रिजर्व बैंक. योजना आयोग, केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन और अन्य मन्त्रालयों के आर्थिक और सांख्यिकी विभागों के निकट सहयोग से काम करता है। आर्थिक समीक्षा (दी इकानामिक सर्वे) नामक दस्तावेज इसी प्रभाग द्वारा तैयार की जाती है। यह प्रभाग सरकारी उपयोग के लिए वित्त, विदेशी व्यापार और भुगतान संतुलन के संबंध में सांख्यिकी संकलन और सामान्य आर्थिक निर्देश भी तैयार करता है। यह संभाग कराधान, सरकारी वित्त, मुद्रा और बैंकिग मूल्य और वेतन नीति, विदेशी व्यापार, भुगतान–संतुलन, विदेशी सहायता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्त संबंधी प्रश्नों और समस्याओं के सम्बन्ध में समय–समय पर तकनीकी विश्लेषण करके विभाग के अन्य प्रभागों को सहायता प्रदान करता है। अर्थ प्रभाग मन्त्रिमण्डल के लिए आर्थिक स्थिति का तिमाही प्रतिवेदन भी तैयार करता है। यह प्रतिवेदन हमारे विदेश स्थित दूतावासों को भी भेजा जाता है। यह प्रभाग सरकार की सम्पूर्ण मूल्य–नीति के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार है और अर्थ–व्यवस्था में मूल्य–वृद्धिकारी दबाओं को रोकने, प्राथमिकता वाली आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने और साधनों के आवश्यक निर्धारण में प्रशासनिक मन्त्रालयों के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करने के काम में उत्तरोत्तर अधिक भाग ले रहा है। इस प्रभाग का कई तकनीकी समितियों और कार्यकारी दलों, जैसे आयोजनों के लिए वित्तीय साधन विषयक कार्यकारी दलों के कार्य से भी निकट संबंध है। यह प्रभाग संयुक्त राष्ट्र महासभा, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक, भारत–सहायता संघ, एशिया और प्रशान्त महासागरीय प्रदेशों के लिए आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्, एशियाई विकास बैंक, व्यापार और टैरिफ संबंधी सामान्य करार, संयुक्त राष्ट्र संघीय व्यापार और विकास सम्मेलन, राष्ट्र–मण्डलीय वित्तमन्त्रीय सम्मेलन, राष्ट्र–मण्डल के राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन, गुट–निरपेक्ष राष्ट्रों के सम्मेलन आदि जैसी विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि मण्डलों के उपयोग के लिए आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त विवरण और ज्ञापन तैयार करता है। यह प्रभाग अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ किए जाने वाले विचार–विमर्श के सिलसिले में आँकड़े एकत्र करने, उनका संकलन, समन्वय और विश्लेषण करके सामग्री प्रस्तुत करने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है और ऐसे विचार–विमर्श के लिए सूचना–सामग्री और आधार–सामग्री भी तैयार करता है।

(ii) बीमा प्रभाग (**Insurance Division**) : बीमा प्रभाग डाक–तार विभाग, जो डाकघर जीवन बीमा निधि के नाम से एक योजना चला रहा है, सहित विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागों को बीमांकिक परामर्श प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त बीमा प्रभाग, जीवन तथा साधारण दोनों किस्म के बीमा उद्योग से सम्बन्धित सभी मामलों का पर्यवेक्षण करता है। इस प्रभाग पर राष्ट्रीयकृत बीमा उपक्रमों अर्थात भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय साधारण बीमा निगम एवं उनकी कम्पनियों के कार्य–चालन के प्रशासन सहित नीति तैयार करने और बीमा संबंधी कानूनों के प्रशासन का भी दायित्व है।

बीमा–प्रभाग निम्नलिखित अधिनियमों का प्रशासन देखता है – बीमा अधिनियम, 1938, जीवन बीमा निगम अधिनियम

1956, आपात जोखिम (माल) बीमा अधिनियम, 1962, आपात जोखिम (कारखाना) बीमा अधिनियम 1962 समुद्री बीमा अधिनियम 1963, साधारण बीमा (आपात व्यवस्था अधिनियम 1971, आपात जोखिम (माल) बीमा अधिनियम 1971, आपात जोखिम (उपक्रम) अधिनियम, 1971, साधारण बीमा कारोबार (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1972 और युद्ध जोखिम (समुद्री जहाज) बीमा योजना। इसके अलावा इस पक्ष पर विस्थापित व्यक्ति ऋण समायोजन अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत स्थापित बीमा दावा बोर्ड के प्रशासन का दायित्व भी है। बीमा नियंत्रक शिमला का कार्यालय और आपात् जोखिम बीमा योजना निदेशालय, बीमा पक्ष के अधीन क्रमशः सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालय हैं। जीवन बीमा और विविध बीमा, दोनों का राष्ट्रीयकरण होने से बीमा नियन्त्रक कर्त्तव्यों में कमी आई है।

(iii) बजट प्रभाग (**Budget Division**) : इस प्रकार का काम रेलवे–बजट से अलग केन्द्रीय सरकार का बजट, अनुदानों की अनुपूरक माँगे और अतिरिक्त अनुदानों की माँगें तैयार कर उन्हें प्रस्तुत करना है। राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत आने वाले राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के बजटों और उनकी अनपरक माँगों को तैयार करने का काम भी इसी प्रभाग में होता है। इसके अलावा यह प्रभाग सरकारी ऋण, केन्द्र और राज्यों के बाजार–उधार और राष्ट्रीय बचत संगठन से सम्बन्धित सभी मामलों की देख–रेख करता है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और राज्य सरकारों की अर्थोपाय सम्बन्धी स्थिति की निगरानी और भारत की आकस्मिक निधि का प्रबन्ध बजट प्रभाग की जिम्मेदारी है। भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों और शक्तियों व लेखापरीक्षक और लेखाओं के बारे में सभी प्रश्नों. वित्त–आयोग से सम्बन्धित सभी विषयों, केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाने ऋण के व्याज की दरें निर्धारित करने सम्बन्धी प्रश्नों और समय–समय पर उनकी समीक्षा करने, केन्द्रीय राजकोष के नियमों के प्रशासन और नियन्त्रण महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों को संसद के दोनों सदनों में पेश करने का काम भी यही प्रभाग करता है।

(iv) बैंकिंग प्रभाग (**Banking Division**) : आर्थिक कार्य विभाग का बैंकिग प्रभाग बैंकिंग प्रणाली से सम्बन्धित सभी मामलों के लिए उत्तरदायी है और सरकारी क्षेत्रों के बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और वित्तीय संस्थाओं का प्रशासनिक प्रभारी भी है। सरकारी क्षेत्र के कुल 28 बैंकों, अर्थात् भारतीय स्टेट बैंक, इसके 7 अनुषंगी बैंक और 20 राष्ट्रीयकृत बैंक है। देश में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक जो 380 जिलों में फैले हुए हैं। बैंकिंग प्रभाग के नियंत्रण के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न वित्तीय संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं :

1. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
3. भारतीय औद्योगिक वित्त तथा निवेश निगम
4. भारतीय औद्योगिक पुननिर्माण बैंक जिसे औद्योगिक एककों की पुर्नस्थापना के लिए गठित किया गया है।
5. भारतीय निर्यात–आयात बैंक
6. कृषि और ग्रामीण विकास योजनाओं को पुनर्वित सहायता प्रदान करने के लिए स्थापित किया गया राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।
7. आवास वित्त पोषण के लिए राष्ट्रीय आवास बैंक
8. पर्यटन के निधिकरण और अन्य सम्बन्धित मामलों के लिए भारतीय पर्यटन वित्त निगम
9. लघु औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए लघु उद्योग विकास बैंक।

आर्थिक कार्य विभाग का बैंकिंग प्रभाग, जीवन बीमा निगम और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया को छोड़कर वाणिज्यिक बैंकों तथा दीर्घकालीन वित्तीय संस्थाओं के कार्य–भालन पर प्रभाव डालने वाली सरकारी नीतियों के

निर्माण और उनके कार्यान्वयन से सम्बन्धित है। यह प्रभाग भारतीय रिजर्व बैंक से सम्बन्धित कार्य करता है तथा वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का परिचालन शासित करने वाली संविधियों, नियमों और विनियमों आदि के कार्यान्वयन प्रशासन का पर्यवेक्षण करता है।

बैंकिग प्रभाग के निम्नलिखित कार्यकारी उप–प्रभाग हैं – (क) बैंकिंग परिचालन तथा प्रशासन प्रभाग, (ख) औद्योगिक वित्त प्रभाग, (ग) विकास तथा समन्वय प्रभाग तथा (घ) औद्योगिक सम्बन्ध तथा सतर्कता प्रभाग।

(v) निवेश प्रभाग (**Investment Division**) : निवेश प्रभाग निम्नलिखित विषयों से सम्मानित कार्य करता है – (1) पूँजी निर्गम नियन्त्रण, (2) विदेशी निवेश नीति, (3) विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, (4) संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में बहुराष्ट्रीय निगमों की आचार संहिता, (5) भारतीय निवेश केन्द्र, (6) अनिवासी भारतीयों को भारत में निवेश के लिए सुविधाएँ, (7) शेयर बाजार, और (8) भारतीय यूनिट ट्रस्ट।

(vi) मुद्रा और सिक्का प्रभाग (**Currency and Coinage Division**) : यह प्रभाग मुद्रा और सिक्का निर्माण, जिसमें टकसालों और उनके धातु परीक्षण कार्यालयों का प्रशासन शामिल हैं, सिक्योरिटी पेपर मिल, इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस, बैंक नोट, प्रेस और सिल्वर रिफाइनरी से सम्बन्धित सभी विषयों की देख–रेख करता है। यह सिक्यूरिटीज कंट्रेक्ट्रस (रेग्यूलेशन) एक्ट, 1956 का प्रबन्ध करने तथा देश में काम कर रहे शेयर बाजारों पर नियन्त्रण रखने का काम भी करता है। बम्बई, कलकत्ता और हैदराबाद की टकसालें इसी प्रभाग से सम्बन्धित हैं।

(vii) विदेशी वित्त प्रभाग (**External Finance Division**) : विदेशी वित्त प्रभाग भारत को विदेशों से मिलने वाली सहायता, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, एशियाई विकास बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास निधि, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम कम तथा राष्ट्रमण्डल तकनीकी सहयोग निधि के साथ भारत के सम्बन्धों, भारत द्वारा दूसरे देशों को दी जाने वाली सहायता, विदेशी मुद्रा नियन्त्रण और विदेशी मुद्रा बजट तैयार करने से सम्बन्धित कार्य करता है। विदेशों के साथ व्यापार और अदायगियों के करारों के सभी प्रस्तावों और विदेशी व्यापार से सम्बन्धित नीति के सामान्य पहलुओं की जाँच का काम भी इसी प्रभाग के जिम्मे है।

(viii) प्रशासन प्रभाग (**Administration Division**) : प्रशासन प्रभाग, आर्थिक कार्य सम्बन्धी विभाग तथा उससे सम्बद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों के प्रशासनिक मामलों और सतर्कता एवं संगठन तथा कार्य–प्रणाली सम्बन्धी विषयों का कार्य करता है। इस विभाग में हाल ही में स्थापित आन्तरिक कार्य अध्ययन व संगठन और कार्य–प्रणाली एकक अपने सामान्य संगठन और कार्यप्रणाली संबंधी कार्यों के अलावा मुख्य समस्याओं का पता लगाने में सहायता करते हैं और कार्य–भार का अनुमान लगाने, संगठन और कार्य–प्रणाली तथा अन्य संबंधित अध्ययनों का काम करते हैं। भारत सरकार के मन्त्रालयों संबंधी सचिवालय के विभिन्न निर्देशों के कार्यान्वयन का काम भी इसी एकक को सौंपा गया है। प्रशासन प्रभाग आर्थिक कार्य विभाग के मुख्य सचिवालय और इस विभाग से सम्बद्ध तथा अधीनस्थ संगठनों में संशोधित राजभाषा अधिनियम 1963 के अन्तर्गत गृह मंत्रालय द्वारा समय–समय पर जारी किए गये निर्देशों के कार्यान्वयन की प्रगति की देखरेख के लिए जिम्मेदार है।

(2) **व्यय विभाग** (**Department of Expenditure**) : वित्त मंत्रालय का व्यय विभाग निम्नलिखित विषयों का प्रशासन संचालित करता है : (1) वित्तीय नियंत्रण एवं प्रतिबन्ध और वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन; (2) भारत सरकार के सभी मंत्रालयों एवं कार्यालयों से संबंधित वित्तीय अनुमतियाँ, विशेषतः उप विभागों में जिन्हें कोई सामान्य अथवा विशेष आदेश प्राप्त नहीं हैं; (3) मितव्ययिता लाने के लिए सरकारी संस्थानों की भर्ती पर पुनर्विचार; (4) लागत लेखा संबंधी प्रश्नों पर मंत्रालयों तथा सरकारी उद्यमों को परामर्श देना; (5) भारतीय लेखा परीक्षण विभाग; (6) प्रतिरक्षा लेखा विभाग। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यय विभाग भारत सरकार के समस्त व्यय का नियंत्रण करता है और अपव्यय को रोकने के लिए उत्तरदायी है।

व्यय विभाग में निम्नलिखित प्रभाग हैं :

(i) योजना वित्त प्रभाग I (Plan Finance Division I);

(ii) योजना वित्त प्रभाग II (Plan Finance Division II);

(iii) वित्त आयोग प्रभाग (Finance Commission Division);

(iv) संस्थापन प्रभाग (Establishment Division);

(v) लागत लेखा शाखा (Cost Accounts Branch);

(vi) महालेखा नियंत्रक का संगठन (Controller General of Accounts);

(vi) कर्मचारी निरीक्षण एकक (Staff Inspection Unit);

(viii) रक्षा प्रभाग (Department of Defence) और

(ix) सरकारी उद्यम कार्यालय (Govt- Industry Office)

(i) योजना वित्त प्रभाग **I** (**Plan Finance Division I**) : योजना वित्त प्रभाग I केन्द्र और राज्यों की योजनाओं के लिए कुल बजट संबंधी और अतिरिक्त बजटीय संसाधनों का अनुमान लगाने के लिए वित्त मंत्रालय में एक केन्द्र बिन्दु है। यह राज्य संबंधित मामलों का निपटारा करता है।

(ii) योजना वित्त प्रभाग **II** (**Plan Finance Division II**) : इस प्रभाग द्वारा केन्द्रीय योजना से संबंधित सभी मामलों को निपटाया जाता है। यह सार्वजनिक नियोजन मण्डल (Public Investment Board) के रूप में भी कार्य करता है।

(iii) वित्त आयोग प्रभाग (**Finance Commission Division**) : इस प्रभाग को आजकल व्यय विभाग में रखा गया है। इस प्रभाग को ये कार्य सौंपे गये हैं –

(क) वित्त आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन पर नजर रखना;

(ख) राज्यों के वित्त के सम्बन्ध में अध्ययन करना और ऐसे शोध पत्र और आँकड़े प्रकाशित करना, जिनका इससे सम्बन्ध है। इस प्रभाग ने सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों और राज्यों के साथ नवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर अनुवर्ती कार्यवाही की। यह प्रभाग वर्तमान में दसवें वित्त आयोग के उपयोग के लिए राज्यों के वित्तों से सम्बन्धित आँकड़ों/सूचना एकत्र करने तथा उसका विश्लेषण करने में व्यस्त है।

(iv) संस्थापन विभाग (**Establishment Division**) : संस्थापन प्रभाग मुख्यतः विभिन्न वित्तीय नियमों और विनियमों को प्रशासित करने के लिए जिम्मेदार है जिनमें केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की सेवा–शर्तों से सम्बन्धित नियम और विनियम भी शामिल हैं। वित्त मन्त्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन 1991–92 के अनसार सरकार के सेवा सम्बन्धी नियमों का सरलीकरण करने तथा कार्य–विधियों को सुप्रवाहित करने के लिए कुछ उपाय किए गये हैं और अधिक उपायों पर विचार किया जा रहा है। सेवारत/सेवानिवृत्त होने वाले सरकारी कर्मचारियों, पेंशनभोगियों और परिवार पेन्शनभोगियों को और आगे लाभों की मंजूरी देने के लिए भी विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं। संस्थापन प्रभाग में कार्यान्वयन कक्ष शामिल है। तीसरे वेतन आयोग की सिफारिशें पर कार्यवाही करने के लिए कार्यान्वयन कक्ष की स्थापना अप्रैल, 1973 में की गयी थी। यह कक्ष थोड़े से कर्मचारियों से ही कार्य–संचालन कर रहा है।

(v) लागत लेखा शाखा (**Cost Accounts Branch**) : इस शाखा का प्रशासनिक नियंत्रण सार्वजनिक वित्त पर वित्त

मंत्रालय का नियन्त्रण वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग द्वारा किया जाता है। इसका प्रधान मुख्य लागत लेखा अधिकारी होता है जो भारत सरकार के संयुक्त सचिव की हैसियत का है। मुख्य लागत लेखा अधिकारी केन्द्रीय लागत लेखा पूल का अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए कुछ अन्य अधिकारी होते हैं।

वित्त मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार लागत लेखा शाखा के मुख्य कार्य ये हैं :–

(क) मूल्य निर्धारण करने, सामान और मजदूरी के मूल्य में होने वाली वृद्धि की मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय करने, निर्यात के सम्बन्ध में नकद सहायता की मात्रा का निर्णय करने, अपनाई जाने वाली लागत लेखा प्रणालियों के सम्बन्ध में सलाह देने आदि के उद्देश्य से विभिन्न मंत्रालयों से प्राप्त हुए सन्दर्भो के आधार पर सरकारी और गैर–सरकारी दोनों क्षेत्रों के विभिन्न एककों में लागत सम्बन्धी अध्ययन करना,

(ख) सरकार द्वारा नियुक्त की गई विशेषज्ञ समितियों में जब भी आवश्यक हो, सदस्य के रूप में कार्य करना और

(ग) सलाह के लिए भेजे गए लागत और लेखा सम्बन्धी मामलों पर भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों विभागों तथा सरकारी उपक्रमों को सलाह देना। लागत लेखा ने लगभग 190 लागत रिपोर्ट जारी की जिसमें गैर–सरकारी क्षेत्रों के कई लागत सम्बन्धी अध्ययन शामिल हैं, जिनका प्रयोजन मूल्य निर्धारण, निर्यात सम्बन्धी दावों का विनियमन, उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क में कमी करने की आवश्यकता पर विचार करने आदि शामिल हैं। इस शाखा के अधिकारी महत्वपूर्ण समितियों में काम करते रहे हैं। वर्ष 1977 से मुख्य लागत लेखा अधिकारी को, प्रबन्ध सूचना और लेखा कार्य प्रणाली को स्थापित करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों का मार्ग दर्शन करने और परामर्श देने संबंधी उच्च स्तरीय सलाहकार समिति का सदस्य नामित किया गया है। इस शाखा ने भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों को उनके द्वारा समय–समय पर भेजे गये विभिन्न लागत सम्बन्धी और वित्तीय मामलों पर सलाह भी दी है।

(vi) महालेखा नियन्त्रण संगठन (**Controller General of Accounts**) :–महालेखा नियन्त्रक के संगठन की स्थापना लेखा परीक्षा से लेखाओं के अलग होने और केन्द्रीय सरकार के लेखाओं का विभागीकरण किए जाने के बाद 1967 में की गई थी। मंत्रालय में यह शीर्ष नीति निर्मात्री संस्था है और संघीय तथा राज्य सरकारों के लेखाओं का स्वरूप निर्धारण करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 150 अ के अन्तर्गत राष्ट्रपति की शक्तियों का पालन अब इस संगठन के माध्यम से किया जाता है।

(vii) कर्मचारी निरीक्षण एकक (**Staff Inspection Unit**) : कर्मचारी निरीक्षण एकक का गठन पूर्णतः अथवा अधिकाँश रूप से सरकारी अनुदानों पर आश्रित सरकारी कार्यालयों और संस्थाओं में प्रशासनिक कार्यकुशलता के अनुरूप कर्मचारियों की संख्या में किफायत करने और कार्य निष्पादन करने और कार्य निष्पादन सम्बन्धी मानक एवं कार्य के प्रतिमान तैयार करने के उद्देश्य से 1964 में किया गया। 1964–77 के वर्षों के दौरान इस एक ने कर्मचारियों सम्बन्धी 651 समीक्षाएं की जिनके अन्तर्गत 1,09,805 पद आ जाते हैं। इन समीक्षाओं के परिणामस्वरूप लगभग 13.25 करोड़ रुपए की प्रत्यक्ष किफायत (अर्थात् वर्तमान पदों को कम करके) तथा 12.07 करोड़ रुपए की निरोधक किफायत (अर्थात् नये पदों की माँग को अस्वीकृत करके) हुई। 1971 के दौरान कर्मचारी निरीक्षण एकक ने 28 समीक्षाएँ पूरी की जिनमें से 25 समीक्षाएँ कर्मचारियों के अध्ययन 6 तथा 3 प्रतिमानों से संबंधित अध्ययन थे। कार्यालयों के लिए कर्मचारियों का निर्धारण करने के लिए प्रतिमान तैयार करने तथा आन्तरिक कार्य अध्ययन की रिपोर्टों का परीक्षण–पड़ताल करने के अलावा कर्मचारी निरीक्षण एक वित्तीय परामर्श सम्बन्धी कार्य के सम्बन्ध में अध्ययन करके वित्तीय सलाहकारों की सहायता करता है। कर्मचारी निर्धारण करने संबंधी ज्ञान का तथा अनुभव रखने वाला एक केन्द्रीय अभिकरण होने के नाते, कर्मचारी निरीक्षण एकक एक यह भी कार्य करता है कि वह अन्य मन्त्रालयों/विभागों के कार्यालयों को संगठित करने तथा उनके लिए कर्मचारी निर्धारण करने के सम्बन्ध में सहायता प्रदान करे।

(viii) रक्षा प्रभाग (**Department of Defence**) : इस प्रभाग का अध्यक्ष वित्त सलाहकार (रक्षा सेवाएँ) है जिसका पद

अपर सचिव के स्तर का है। वित्त सलाहकार रक्षा व्यय के क्षेत्र में वित्त मन्त्रालय का मुख्य प्रतिनिधि होता है। इस प्रभाग का गठन इस प्रकार किया गया है कि जिससे रक्षा व्यय पर समुचित वित्तीय नियन्त्रण रखा जा सके और साथ ही रक्षा प्राधिकारियों को उन अधिकारियों से, जो रक्षा मंत्रालय और तीनों सेनाओं की संगठन सम्बन्धी समस्याओं और आवश्यकता से भली–भाँति परिचित हों, नीति–निर्माण योजना और उनके कार्यान्वयन सम्बन्धी कार्यो के साथ रक्षा सम्बन्धी गतिविधियों के सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में वित्तीय सलाह मिल सके। 1977–78 की रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सलाहकार (रक्षा सेवाएँ) की सहायता के लिए 3 अपर वित्तीय सलाहकार (संयुक्त सचिव) और बहुत से उप–गिलोय सलाहकार हैं जिनमें से प्रत्येक को रक्षा संगठन की एक–एक महत्वपूर्ण शाखा से सम्बद्ध किया गया है। इसकी रिपोर्ट के अनुसार रक्षा प्रभाग में डेरक अधिकारी योजना आरम्भ की गयी और शुरू–शुरू में 14 डेस्क बनाए गए हैं जिनमें 21 डेस्क कार्यकर्ता हैं।

(ix) सरकारी उद्यम कार्यालय (**Government Industry Office**) : यह कार्यालय अप्रैल, 1965 में सरकारी उद्यमों के लिए सेवा समन्वय और मूल्यांकन अभिकरण के रूप में स्थापित किया गया। उसका उद्देश्य परियोजनाओं के तकनीकी, आर्थिक और वित्तीय पहलुओं तथा सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के संचालन में समन्वय और मूल्यांकन से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ करना और उनको सुदृढ़ बनाना है। यह कार्यालय सरकारी उद्यमों के प्रबन्ध से सम्बन्धित प्रशासनिक मन्त्रालयों के साथ निकट सम्पर्क रखते हुए काम करता है। उद्यम–कार्यालय इन उद्यमों की समस्याओं का निरन्तर अध्ययन करता है तथा उनके कार्य संचालन में सुधार के उपाय ढूंढने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता है।

1977–78 की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी उद्यम कार्यालय के छः प्रमुख प्रभाग हैं अर्थात् प्रशासन एवं समन्वय, उत्पादन, निर्माण, वित्त, प्रबन्ध, सूचना एवं अनुसन्धान। यद्यपि सरकारी उद्यम कार्यालय के इन छः प्रभागों को अलग–अलग कार्य सौंपे गए हैं, फिर भी वे आपस में पूरी तरह मिल कर कार्य करते हैं। सरकारी उद्यम कार्यालय का सर्व प्रमुख अधिकारी अपर सचिव एवं महानिदेशक हैं। सरकारी उद्यम कार्यालय, सरकारी उद्यमों में उत्पादन बढ़ाने तथा उनकी प्रबन्धकीय समस्याओं पर विचार–विमर्श करने के लिए सम्मेलन और संगोष्ठियाँ आयोजित करने में सरकारी उद्यम विषयक स्थायी समिति (स्कोप) और अनेक प्रबन्धकीय संस्थाओं तथा प्रशिक्षण अभिकरणों को सहयोग प्रदान करता रहता है।

(3) राजस्व विभाग (**Department of Revenue**) : राजस्व विभाग, संघीय प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों से सम्बन्धित राजस्व मामलों के सम्बन्ध में दो सांविधिक बोर्डों अर्थात् प्रत्यक्ष कर बोर्ड तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा सीमा शुल्क बोर्ड के माध्यम से नियन्त्रण रखता है। इस विभाग को केन्द्रीय विक्रय–कर, स्टाम्प शुल्क, स्वर्ण नियन्त्रण, विदेशी मुद्रा और अन्य संगत वित्तीय अधिनियमों से सम्बन्धित कानून में दिए गये नियन्त्रणों तथा विनियामक उपायों के प्रशासन तथा प्रवर्तन का काम भी सौंपा गया है। राजस्व विभाग के मुख्यालय प्रशासन को तीन भागों में बांटा गया है:

(i) केन्द्रीय प्रभाग (Central Division);

(ii) प्रत्यक्ष कर प्रभाग (Direct Taxes Division); तथा

(iii) अप्रत्यक्ष कर प्रभाग (Indirect Taxes Division)।

(i) केन्द्रीय प्रभाग (**Central Division**) : राजस्व विभाग के इस प्रभाग का सम्बन्धआयोगों, अपीलीय, अप्रत्यक्ष कराधान जाँच समिति और प्रवर्तन निदेशालय (Directorate of Enforcement) से होता है।

(ii) प्रत्यक्ष कर प्रभाग (**Direct Taxes Division**) : केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाने वाले

प्रत्यक्ष करों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, जो केन्द्रीय राजस्व बोर्ड, अधिनियम, 1963 के अन्तर्गत 1 जनवरी, 1964 को गठित किया गया था, अपने सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालयों के कार्य पर नियन्त्रण रखता है और उनकी देखभाल करता है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड एक शीर्षस्थ संगठन है जो आय–कर विभाग पर नियन्त्रण रखता है। यह कर प्रशासन में सम्बन्धित सभी नीतियों को तैयार करने के लिए उत्तरदायी है तथा उपर्युक्त कानूनों के तहत विभिन्न संवैधानिक कार्यों को भी निष्पादित करता है। बोर्ड के अधिकारी राजस्व विभाग, वित्त मन्त्रालय में अपनी पदेन हैसियत से भी कार्य करते हैं। बोर्ड में एक चेयरमैन और 6 सदस्य होते हैं। प्रत्यक्ष कर कानूनों के प्रशासन से सम्बन्धित कार्यों का निष्पादन करने के लिए बोर्ड ने अपने नियन्त्रणाधीन सम्वद्ध और अधीनस्थ कार्यालयों को सारे देश में फैला दिया है। बोर्ड के सम्बद्ध कार्यालय निम्नलिखित हैं :

(i) आय–कर महानिदेशालय (प्रशासन), दिल्ली।

(ii) आय–कर महानिदेशालय (प्रबन्ध पद्धति), दिल्ली।

(iii) आय–कर महानिदेशालय (प्रशिक्षण), नागपुर।

(iv) आय–कर महानिदेशालय (कर–छूट), कलकत्ता।

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अन्तर्गत आने वाले अधिकारियों के कार्यों का वर्णन इस प्रकार है

(क) निरीक्षण निदेशालय आय–कर और अंकेक्षण, नई दिल्ली : इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) I.A.C. अधिकारियों द्वारा जाँच के लिए नीतियाँ बनाना और कार्यक्रम तय करना, अंकेक्षण की आन्तरिक समूहों के कार्य का पर्यवेक्षण और आगम अंकेक्षण से सम्बन्धित आपत्तियों के मामलों के सम्बन्ध में निर्णय लेना;

(ii) कार्यक्षेत्र संगठन का प्रशासनिक निरीक्षण करना;

(iii) विभागीय कर्मचारियों के लिए विभागीय परीक्षाओं का आयोजन करना;

(iv) सभी विभागों के प्रमुखों से नियुक्ति से सम्बन्धित प्राप्त सभी संदर्भों को निपटाना।

(ख) निरीक्षण निदेशालय, अन्वेषण, नई दिल्ली : इस निदेशालय में निरीक्षण के तीन निदेशक होते हैं :

(i) अनिरीक्षण विंग के कार्य (Functions of Investigation Wing)

(ii) जाँच प्रविधि में सुधार करने और कर चोरी का मुकाबला करने के लिए आय–कर सम्बन्धी सूचना को एकत्रित करने में अधिकारियों की सहायता करना।

(2) विभिन्न आय–कर केसों पर निगरानी रखना और जाँच में सहयोग करना।

(ii) सतर्कता विंग के कार्य (**Functions of Vigilence Wing**) जाँच निदेशक (सतर्कता) एक अतिरिक्त मुख्य सतर्कता अधिकारी के रूप में कार्य करता है और सतर्कता से सम्बन्धित सभी राजपत्रित और गैर–राजपत्रित कर्मचारियों के केसों पर कार्यवाही करता है।

(iii) विशिष्ट कक्ष के कार्य (**Functions of Special Cell**) यह सैल (कक्ष) बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा की जाने वाली करों की चोरी के सम्बन्ध में कार्यवाही करता है।

(ग) निरीक्षण निदेशालय, अनुसंधान, सांख्यिकी और प्रकाशन, नई दिल्ली : यह निदेशालय दो विंग अथवा शाखाओं के मिश्रण से बनी है :

(i) प्रकाशन और लोक सम्बन्ध विंग (**Publication and Public Relations Wing**)

(1) आय–कर विभाग से संबंधित विभिन्न नियमों, अधिनियमों, बुलिटेन और अन्य प्रकाशनों को संग हित और प्रकाशित करना।

(2) सामग्री का हिन्दी में अनुवाद करना और हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रयोग पर नजर रखना।

(3) लोक सम्बन्धों से सम्बन्धित सभी विषय आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) अनुसंधान और सांख्यिकी विंग (**Research and Statistics Wing**)

(1) सभी प्रत्यक्ष–करों से संबंधित अखिल भारतीय आगम सांख्यिकी को सम्पादित और उसकी आपूर्ति करना।

(2) कार्य की प्रगति की प्रतिमा की रिपोर्ट को सम्पादित करना व आँकड़े उपलब्ध कराना।

(3) केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा विभिन्न सामग्री पर अनुसंधान कार्य करना।

(घ) संगठन और प्रबन्ध सेवा निदेशालय, नई दिल्ली : इस निदेशालय के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) मानवीय संसाधनों का आदर्शतम, उपयोग करने के लक्ष्य के अनुसार कार्य करने के तरीकों को सरल बनाना।

(ii) प्रविधि अनुसन्धानों की सहायता लेकर कर्मचारियों के नियमों का मूल्यांकन करना तथा नये नियम विकसित करना।

(iii) कार्य की व्यवस्था और संगठनात्मक, संरचना का पुनरावलोकन करना।

(iv) विभागाध्यक्षों द्वारा कर्मचारियों से सम्बन्धित दिये गये सुझावों की जाँच करना।

(iii) अप्रत्यक्ष कर प्रभाग (**Indirect Taxes Division**) : केन्द्रीय उत्पाद विभाग, सह प्रभाग, कस्टम विभाग, नारकोटिक (Narcotic) विभाग और कई अन्य निदेशालयों से सम्बन्धित कार्यों को देखता है। इन सभी पर केन्द्रीय उत्पादन और सीमा शुल्क बोर्ड का नियन्त्रण रहता है। इस बोर्ड का मुख्य कार्य अप्रत्यक्ष कर (सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्क, आदि) लगाना और उनकी उगाही करना तथा तस्करी निवारण प्रयत्नों की नीति तैयार करना है। इस समय इस बोर्ड में एक अध्यक्ष तथा 6 सदस्य हैं जिन्हें भारत सरकार के पदेन विशेष सचिव का दर्जा प्राप्त है। अनेक सम्बद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालय केन्द्रीय उत्पादन शुल्क और सीमा शुल्क बोर्ड को, उसके प्रशासनिक एवं कार्यकार कार्यों के निष्पादन में सहयोग प्रदान करते हैं। ये कार्यालय निम्नलिखित हैं :

1. निरीक्षण तथा लेखा परीक्षा महानिदेशालय,
2. राजस्व अधिसूचना महानिदेशालय,
3. अपवंचनरोधी महानिदेशालय,
4. राष्ट्रीय सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं नार्कोटिक्स अकादमी,
5. संगठन और प्रबन्ध सेवा निदेशालय,
6. निवारक संकाय निदेशालय,
7. सांख्यिकी और आसूचना निदेशालय,
8. प्रकाशन निदेशालय,

9. केन्द्रीय राजस्व नियन्त्रण प्रयोगशालाय और

10. मुख्य सतर्कता अधिकारी।

बोर्ड को सौंपे गये कार्यकारी कार्य सम्पूर्ण भारत में फैले हुए सीमा शुल्क और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, समाहर्तालयों के माध्यम से निष्पादित किए जाते हैं। इस समय समाहर्तालियों की संख्या 36 है जो मुख्यतया केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से सम्बन्धित हैं और इन्हें क्षेत्रीय एककों के रूप में संगठित किया गया है। वित्त मन्त्रालय, जो सरकार के वित्तीय मामलों की देखभाल करता है, बजट की रचना के लिए प्रधानतः उत्तरदायी है। वित्त मन्त्री राष्ट्र के कोष का संरक्षक होता है। उसका यह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह राष्ट्रीय वित्त का उपयोग समझदारी तथा कुशलता से करे। वित्त मन्त्रालय राज्य के लिए आवश्यक राजस्व एकत्र करने के लिए उत्तरदायी होता है; और धनराशि निश्चित करने तथा एक सीमा तक व्ययों का स्वरूप निश्चित करने में वह प्रमुख भूमिका निभाता है। संघीय सरकार के वित्तीय नियमों के अन्तर्गत वित्त मन्त्रालय को वित्तीय अधिकार प्रदान किये गये हैं। इस व्यवस्था के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 77(3) में उल्लेख है। यह अनुच्छेद संघ के राष्ट्रपति को संघीय सरकार के संचालन सम्बन्धी नियम बनाने का प्राधिकार प्रदान करता है। वित्त मन्त्रालय वार्षिक वित्तीय विवरण (अर्थात् बजट) तैयार करने, संसद में उसका मार्गदर्शन करने, विभिन्न विभागों द्वारा इसके क्रियान्वयन के निरीक्षण, राजस्व एकत्र करने, प्रशासकीय विभागों को वित्तीय मन्त्रणा देने तथा वित्तीय नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होता है। इन अधिकारों का उपयोग वित्त मन्त्रालय ने सदैव नहीं किया। अन्य मन्त्रालयों तथा विभागों पर इसका नियन्त्रण धीरे–धीरे ही बढ़ा है– आरम्भ में गवर्नर जनरल की परिषद् के अन्य सदस्यों ने विभागीय स्वायत्तता तथा प्रतिष्ठा के नाम पर इसका विरोध किया था। सरकार पर क्रमशः लोक नियन्त्रण बढ़ने और शासन के संसदीय स्वरूप के विकास ने वित्त मन्त्रालय की स्थिति को शक्तिशाली बना दिया है। 1919 के मॉण्टफोर्ड सुधारों (Montford Reforms of 1919) ने वित्त विभाग द्वारा अन्य विभागों पर वित्तीय मामलों के नियन्त्रण की व्यवस्था की थी। विधानमण्डल की लोक सेवा समिति की रचना तथा विभागों के लेखाओं की लेखा–परीक्षा और परिनिरीक्षण करने के लिए लेखा–नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति के फलस्वरूप वित्त विभाग या वित्त मन्त्रालय की प्रतिष्ठा तथा शक्ति में बहुत वृद्धि हुई है। भारत में प्रत्येक आगामी वित्तीय वर्ष के लिए (वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल को आरम्भ और 31 मार्च को समाप्त होता है) बजट अनुमान की तैयारी में शासन के चार विभिन्न अंग – वित्त मन्त्रालय, प्रशासन मन्त्रालय, योजना आयोग और लेखा–नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक– कार्य करते हैं। बजट की रचना का सारा उत्तरदायित्व वित्त मन्त्रालय पर होता है, किन्तु प्रशासकीय आवश्यकताओं का व्यापक ज्ञान सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालयों को ही होता है। बजट योजना की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करने के लिए वित्त मन्त्रालय को योजना आयोग से निरन्तर निकट सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है। इसमें लेखा नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वही अनुमानों को तैयार करने में आवश्यक लेखा सम्बन्धी सूचनाएँ उपलब्ध कराता है।

बजट अनुमान की तैयारी सम्बन्धी कार्य आगामी वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के 6 या 8 मास पूर्व ही आरम्भ हो जाता है। इसका श्रीगणेश वित्त मन्त्रालय से होता है, जो विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा विभागों को व्यय के अनुमान तैयार करने के लिए एक पत्र भेजता है। नियम यह है कि प्रत्येक विभाग जो धन व्यय करता है उसे ही अपनी आवश्यकतानुसार आगामी वर्ष के अनुमान भी तैयार करने चाहिए। 'प्रपत्रों के ढाँचे' वित्त मन्त्रालय द्वारा प्रदान किये जाते हैं, जिनमें अनुमान तथा अन्य आवश्यक सूचनाएँ सम्बन्धित विभागों को भरनी व भेजनी पड़ती हैं। प्रशासकीय मन्त्रालय इन छपे हुए प्रपत्रों को धन व्यय करने वाले अधिकारियों अर्थात् कार्यालयों के प्रधानों (जिले में जिलाधीशों) को पहुँचा देते हैं। प्रत्येक प्रपत्र में अधोलिखित स्तम्भ होते हैं :

(1) पिछले वर्ष के यथार्थ अंक (actuals);

(2) चालू वर्ष के लिए संशोधित (sanctioned) अनुमान;

(3) चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान;

(4) आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान;

(5) चालू वर्ष के यथार्थ अंक, जो अनुमानों को तैयार करते समय प्राप्त हुए हों, तथा पिछले वर्ष के समानान्तर काल के यथार्थ अंक।

आगामी वर्ष के अनुमान निम्नलिखित आधारों पर निर्मित किये गये हैं :

(अ) चालू वर्ष के संशोधित अनुमान;

(आ) विगत तथा पिछले वर्षों के 15 महीनों के यथार्थ अंक;

(इ) गत वर्षों के अंकों की कोई मान्यतायुक्त नियमितता; तथा

(ई) परिवर्तन उत्पन्न करने वाली कोई विशिष्ट परिस्थितियाँ।

धन व्यय करने वाले अधिकारी अपने तैयार किये हुए अनुमानों को विभाग के प्रधान के पास दो भागों में भेजते हैं। पहले भाग में राजस्व तथा स्थायी प्रभार (charges) का उल्लेख होता है। दूसरे भाग को दो प्रवर्गों में विभाजित किया जाता है। पहले प्रवर्ग में उन विषयों का उल्लेख होता है जो प्रतिवर्ष निरन्तर चलते रहते हैं और दूसरे प्रवर्ग में पूर्णतः नवीन विषय होते हैं। ये अनुमान विभाग के प्रधान के पास भेज दिये जाते हैं जो आवश्यकतानुसार उनकी समीक्षा तथा संशोधन करके पूरे विभाग के लिए जोड़ता है (consolidates)। विभिन्न विभागों से प्राप्त अनुमानों को सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालयों को भेज दिया जता है; यहाँ पुनः दूसरी बार उस (मन्त्रालय) की सामान्य नीति के सन्दर्भ में निरीक्षण किया जाता है। इसके बाद प्रशासकीय मन्त्रालय इन अनुमानों को नवम्बर के मध्य में वित्त मन्त्रालय के बजट सम्भाग को भेजता है। वित्त मन्त्रालय का बजट सम्भाग प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा प्रस्तुत इन अनुमानों की सूक्ष्मतापूर्ण समीक्षा करता है। यह स्मरणीय है कि प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा किये गये निरीक्षण से बजट सम्भाग द्वारा निरीक्षण भिन्न प्रकार का होता है। यह व्ययों की नीतियों की समीक्षा नहीं करता – नीति को समीक्षा करना तो मुख्यतः प्रशासकीय विभागों एवं मन्त्रालयों की मांगों को सरकार की उपलब्ध निधियों की सीमा के अन्दर ही रखना पड़ता है। बजट सम्भाग द्वारा जाँच या निरीक्षण, वित्तीय दृष्टिकोण से अर्थात् मितव्ययता तथा निधियों की उपलब्धि के दृष्टिकोण से होती है। इस कार्य को करते समय वित्त मन्त्रालय व्यय से सम्बन्धित अनेक प्रस्तावों को विशेषज्ञ की दृष्टि से नहीं देखता। वास्तव में वित्त मन्त्रालय को 'आलोचना तथा प्रति–परीक्षण' (crossexamination) करने में एक विशिष्ट दक्षता प्राप्त है जो लम्बे अनुभव का परिणाम है, किन्तु उसमें निरन्तर समयानुकूल अभिनव परिवर्तन होता रहता है। इसके अतिरिक्त, इसका दृष्टिकोण कुछ बुद्धिमान मनुष्य जैसा होता है।' इसके द्वारा इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं: क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में आवश्यक है? यदि आवश्यक है तो अब तक बिना इसके कैसे काम चलता था? अब क्यों इसकी आवश्यकता अनुभव हुई है? अन्यत्र क्या किया जाता है? इसमें कितना व्यय होगा और वह धनराशि कहाँ से प्राप्त होगी? इस व्यय के परिणामस्वरूप किसको धन की कमी अनुभव होगी? क्या नवीन विकास इसको आवश्यक बनाते हैं?

यहाँ यह प्रकट करना उचित है कि यह परिनिरीक्षण (scrutiny) केवल नये व्ययों के लिए किये गये प्रस्तावों पर ही काम में लायी जाती है। नियमानुसार किसी भी विभाग के नये या बटे हुए व्यय सम्बन्धी कोई प्रस्ताव वित्त मन्त्रालय की सहमति के बिना बजट में सम्मिलित नहीं किये जा सकते। सरकार को जो भी सीमित साधन उपलब्ध हैं, उनको देखते हुए प्रशासकीय मन्त्रालयों को उनकी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक धन प्राप्त नहीं होना चाहिए। स्थिति यह है कि वित्त मन्त्रालय प्रशासकीय मन्त्रालयों की माँगों को पारित करता है, व्ययों के औचित्य की समीक्षा करता है और प्रत्येक मन्त्रालय के लिए एक राशि निश्चित करता है। स्मरणीय है कि इन मामलों में वित्त मन्त्रालय और वित्त मन्त्री स्वेच्छा से कार्य नहीं कर सकते। पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी आवश्यक माँगें, मन्त्रालयों के

नीति सम्बन्धी निर्णय, देश में विद्यमान परिस्थितियाँ, इन सभी बातों की झलक बजट में होती है और इसी सीमा तक वे वित्त मन्त्री के अधिकार को सीमित करते हैं। वित्त मन्त्रालय द्वारा उन सभी प्रस्तावों का बड़े ध्यान से निरीक्षण किया जाता है जो सरकार पर कोई नया या बढ़ा हुआ व्यय भार डालते हैं।

नये व्यय दो प्रकार के होते हैं क्रय एवं निर्माण आदि सम्बन्धी तथा स्थापना (Establishment) के लिए अनुदान। बड़ी रकम की खरीदारी या निर्माण कार्य, जैसे मुम्बई में परमाणु शक्ति प्रबन्धक (Atomic Energy reactor) मन्त्रिमण्डल की सहमति से प्रारम्भ किये जाते हैं। स्पष्टतः बजट में ऐसे व्यय सम्मिलित करने के सम्बन्ध में वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण सीमित है। किन्तु अतिरिक्त व्यय सम्बन्धी विभागों को वित्त मन्त्रालय बड़े ध्यान से देखता है। यदि व्यय करने वाले किसी विभाग का प्रभारी मन्त्री वित्त मन्त्रालय की 'अस्वीकृति' से सहमत नहीं होता तो वह उस मामले पर मन्त्रिमण्डल में विचार करने की माँग कर सकता है। मन्त्रिमण्डल का निर्णय सभी सदस्यों को मान्य होता है। यदि मन्त्रिमण्डल का सदस्य अपनी नीति एवं माँग पर दृढ़ रहता है और मन्त्रिमण्डल के निर्णय से सहमत नहीं होता तो वह त्यागपत्र देकर सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है। स्मरणीय है कि मन्त्रिमण्डल में वित्त मन्त्री की स्थिति विलक्षण रूप से शक्तिशाली होती है; मन्त्रिमण्डल को उसके विचारों को विशेष महत्व देना चाहिए, विशेषकर विवादग्रस्त व्यय की धनराशि पर्याप्त बड़ी होने पर। एक पूर्व वित्त मन्त्री ने एक भिन्न प्रसंग में कहा था कि "कोई भी वित्त मन्त्री केवल शक्तिशाली स्थिति में न कि कमजोर स्थिति में रहकर समुचित ढंग से कार्य कर सकता है।" उनका यह कथन वित्त मन्त्री के शक्तिशाली होने पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। विभिन्न मन्त्रालयों के व्यय के अनुमानों पर वित्त मन्त्रालय को यह नियन्त्रण क्यों दिया गया है? इसके दो कारण दिये जाते हैं; प्रथम, वित्त मन्त्रालय स्वयं कोई व्यय करने वाला मन्त्रालय नहीं है, अतः करदाता के हितों के लिए वह निष्पक्ष संरक्षक के रूप में कार्य कर सकता है। द्वितीय, इस मन्त्रालय को प्रस्तावित व्यय पूरे करने के लिए आर्थिक उपाय तथा साधन खोजने होते हैं। अतः यह उचित ही है कि उसे यह अधिकार होना चाहिए कि अमुक व्यय किया जाना चाहिए या नहीं। हैल्डेन समिति के अनुसार, "यदि उसे (वित्त मन्त्री को) हौज को भरने तथा उसमें निश्चित मात्रा में जल बनाये रखने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो उसे पानी की निकासी पर भी नियन्त्रण प्राप्त होना चाहिए।" व्यय करने वाले शासन के शेष सभी मन्त्रालयों की तुलना में वित्त मन्त्रालय की स्थिति प्रधान है; परन्तु यह स्थिति हाल में कई कारणों से आलोचना का विषय बन गयी है। ऐपल्बी का निम्नलिखित मत ध्यान देने योग्य है :

"वर्तमान प्रणाली के अधीन पूरे वर्ष की विभिन्न 'योजनाएँ' या 'परियोजनाएँ' वित्त मन्त्रालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं। इनमें से कुछ तो शीघ्र ही तय करने तथा विधियों के बँटवारे सम्बन्धी होती हैं और कुछ बाद के बँटवारों के बन्धक रूप में होती हैं। ये योजनाएँ प्रायः नीति सम्बन्धी विचारों से अधिक नहीं होती हैं। अतः उनके द्वारा ऐसे वास्तविक प्रशासकीय तथा व्यय सम्बन्धी पारवर्तन तो कभी नहीं किये जा सकते जिन पर गम्भीरता से विचार किया जा सके। इनका मुख्य दोष विलम्ब तथा भ्रम सम्बन्धी होता है। इसके लिए वित्त मन्त्रालय को ही प्रायः दोषी ठहराया जाता है। जैसे–जैसे बजट बनाने का समय निकट आता जाता है, इन सभी योजनाओं की जाँच की जाती है तथा इनमें से कुछ को चुन लिया जाता है। यही सामान्य स्थापना व्ययों के अतिरिक्त किसी मन्त्रालय विशेष का बजट होती है। वे सब योजनाएँ जो नस्ती (File) में नत्थी रहती हैं सिद्धान्ततः अनुमोदित हो चुकी होती हैं। जो योजनाएँ वास्तव में बजट में सम्मिलित नहीं की जाती वे नस्ती में नत्थी रहती हैं और किसी आगामी वर्ष में या एक वर्ष में किसी भी समय उन पर विचार आरम्भ किया जा सकता है। प्रस्तावित और सिद्धान्ततः अनुमोदित होने के वर्षों बाद उनमें से कोई एक योजना अचानक ही कार्यान्वित की जा सकती हैं, भले ही उस समय तक व्यय के प्रारम्भिक अनुमान या योजना के महत्वपूर्ण तत्व पूर्णतः अनुपयोगी हो गये हों।"

"वर्तमान प्रणाली यह आवश्यक कर देती है कि विभिन्न अभिकरण अनेक प्रकार की योजनाएँ प्रस्तुत करते रहें, यह जानते हुए भी कि इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में वे सशक्त नहीं हैं। यह सब कम व्यय वाले अनुमानों तथा हीन बजट रचना का एक नमूना उपस्थित करती है, जिसके कारण वित्त मन्त्रालय का विरत त

हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।"

"इसमें एक दूसरा तत्व भी होता है जिस पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सभी मन्त्रालय यह जानते हैं कि वित्त मन्त्रालय उनके द्वारा माँग की जाने वाली धनराशि में कमी कर देता है, अतः वे व्यय के अनुमान प्रारम्भ से ही बढ़ा चढ़ाकर रखते हैं। ऐसा करने के लिए उन्हें प्रोत्साहन भी दिया जाता है। जब कोई विशेष मन्त्रालय कोई छोटी अनुमानित परियोजना प्रस्तुत करता है तो वित्त मन्त्रालय को यह शिकायत रहती है कि "आप हमें ऐसी कठिन स्थिति में रख देती हैं कि आपकी माँगी हुई धनराशि को घटाना हमारे लिए बहुत कठिन हो जाता है।" वास्तव में एक छोटे तथा अच्छी प्रकार बनाये गये अनुमान को प्रत्येक सम्भव उपाय से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, और शीघ्र ही बिना किसी हेर फेर के उसे अनुमोदित कर देना चाहिए। इसके विपरीत, ढीले–ढाले और अनिश्चित अनुमानों के सम्बन्ध में कठोर दृष्टि अपनानी चाहिए। वित्त विभाग का प्रमुख उत्तरदायित्व यह होना चाहिए कि वह सरकारी अभिकरणों में अच्छे बजट के निर्माण की प्रवृत्ति को जाग्रत तथा प्रोत्साहित करे; और उसकी सारी समीक्षा ऐसे विश्लेषण पर आधारित होनी चाहिए जिससे खराब व हीन बजट की जाँच हो सके। यदि निरीक्षण के पश्चात् यह प्रकट हो कि बजट रचना अच्छी रही तो माँगी गयी राशि को तुरन्त अनुमोदित कर देना चाहिए।"

वित्त मन्त्रालय का बजट के पश्चात् नियन्त्रण व्यय करने वाले विभिन्न मन्त्रालयों पर वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण संसद में बजट प्रस्तुत कर देने के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता वरन् निरन्तर चलता रहता है। वह भी अनुमानों के संसदीय अनुमोदन के पूर्व तथा पश्चात् प्रभावकारी रहता है। बजट के अनुमानों को निर्धारित करते समय वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण बहुत मोटे तौर का होता है। अतः धन के वस्तुतः व्यय किये जाने से पूर्व वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण आवश्यक है। संसद तो सामूहिक रूप से सरकार (प्राविधिक शब्दों में राष्ट्रपति) को अनुदान देती है, न कि व्यक्तिगत रूप से किसी मन्त्रालय विशेष को। अतः वित्त मन्त्रालय, जो सरकार की वित्त व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है, प्रशासकीय मन्त्रालय को व्यय की अनुमति तभी देता है जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि प्रस्तावित व्यय वांछनीय है और उस पर भली प्रकार विचार कर लिया गया है। दिन–प्रतिदिन के व्ययों पर वित्त मन्त्रालय की सहमति आवश्यक नहीं होती, किन्तु नये व्ययों के लिए तो वित्त मन्त्रालय का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है। इसका यह अर्थ है कि नयी योजना पर होने वाले व्यय सम्बन्धी प्रस्ताव पर वित्त मन्त्रालय की सहमति बजट की प्रारम्भिक अवस्था में केवल अनुमानाश्रित होती है। अनुमान समिति ने अपने 1953–54 के नवें प्रतिवेदन में यह स्पष्ट किया था कि "वित्त मन्त्रालय के बजट सम्भाग (Budget Division) को वित्तीय वर्ष के अन्तिम एक या दो माह के दौरान मन्त्रालयों से विभिन्न प्रस्ताव एक साथ प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरूप, बजट सम्भाग को विस्तार के साथ प्रस्तावों का परीक्षण करने तथा प्रत्येक विषय की सावधानी के साथ जाँच करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता। फलस्वरूप, बजट सम्भाग द्वारा स्थूल रूप से परीक्षण किया जाता है और विभिन्न योजनाओं के लिए कुछ धन निर्धारित कर दिया जाता है और अगले वित्तीय वर्ष में स्वयं या वित्त मन्त्रालय को उन राशियों के व्यय सम्बन्धी पचड़े में नहीं डालता है। वर्तमान प्रणाली के अनुसार अनुमानों में जो कुछ भी सम्मिलित किया जाता है वह उन पर केवल सदन की स्वीकृति प्राप्त करने की दृष्टि से किया जाता है, और प्रशासकीय मन्त्रालय को व्यय करने का अधिकार तब तक नहीं होता जब तक कि वित्त मन्त्रालय व्यय का विस्तृत अनुमोदन प्राप्त नहीं कर लेता।"

नये व्ययों को कार्यान्वित करने से पूर्व वित्त मन्त्रालय का अनुमोदन प्राप्त कर लेने से भारत में अंग्रेजी सरकार को, जिसके कार्य अति सीमित थे, अत्यन्त लाभ हुआ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ समय पूर्व तक प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा अधीनरथ प्राधिकारियों के अधिकार इतने सीमित क्यों थे। कुछ भी हो, यह व्यवस्था प्रसारोन्मुख सरकार के लिए उपयुक्त नहीं है जिसका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना और शीघ्रातिशीघ्र सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना है। इस स्थिति के कारण पॉल ऐपल्वी ने स्पष्ट रूप से कहा कि अधिकारों के प्रदत्तीकरण (Delegation of Power) की आवश्यकता ही भारतीय प्रशासन की सबसे बड़ी कमी थी। प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा अधीनस्थ प्राधिकारियों को विस्तृत प्रदत्तीकरण किये जाने की तीव्र आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए

भारत सरकार वित्तीय नियन्त्रण को उदार बनाती रही है और उससे व्यय करने वाले मन्त्रालयों को काफी वित्तीय अधिकार प्रदान कर दिये हैं। स्थायी तथा अस्थायी पदों की रचना तथा आकस्मिक और विविध व्यय करने के सम्बन्ध में प्रशासकीय मन्त्रालयों की शक्ति में पर्याप्त वृद्धि कर दी गयी है। पूर्वोल्लेखानुसार प्रदत्तीकरण की कुछ सामान्य सीमाएँ इस प्रकार हैं :

(क) लोक राजस्व उचित प्रयोजनों पर ही व्यय किया जाना चाहिए;

(ख) अधीनस्थ प्राधिकारी व्यय का अनुमोदन उन्हीं दशाओं में कर सकता है जिनका उसे अधिकार प्राप्त है;

(ग) यदि किसी व्यय में कोई ऐसा नवीन सिद्धान्त या कार्यविधि सन्निहित हो जिससे भविष्य में व्यापार बढ़ने की सम्भावना हो, तो उसे वित्त मन्त्रालय को भेजना चाहिए; तथा

(घ) अधीनस्थ प्राधिकारी के अनुमोदन करने की शक्ति प्रदत्तीकरण करने वाले प्राधिकारी द्वारा जारी किये गये विशेष या सामान्य अनुदेश के अधीन होनी चाहिए। अधिकारों के प्रदत्तीकरण की इस योजना के एक भाग के रूप में प्रत्येक प्रशासकीय मन्त्रालय के पास एक वित्तीय शाखा होती है जिसमें वित्तीय परामर्शदाता, उपवित्तीय परामर्शदाता या सहायक वित्तीय परामर्शदाता होते हैं। इन कर्मचारियों का सम्बन्ध केवल वित्त तथा बजट के कार्य से होता है, और यह बजट में सम्मिलित किये जाने वाले प्रस्तावों के नियमन से सम्बद्ध होता है। उन सभी वित्तीय मामलों में, जिनमें प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग अन्तर्निहित है, या उन विषयों में, जिन्हें वित्त मन्त्रालय को भेजने की आवश्यकता होती है, इन कर्मचारियों से परामर्श करना आवश्यक होता है। यह विनियोजन के विपरीत व्यय को नियन्त्रित करने में मन्त्रालय की सहायता करते हैं। यह व्यवस्था है कि जिन विषयों में मन्त्रालय के वित्तीय परामर्शदाता का परामर्श स्वीकार नहीं किया जाता, उन्हें मन्त्रालय के सचिव को आदेशों के लिए निदेशित किया जाना चाहिए और यदि सचिव का मत उस परामर्श से भिन्न हो तो उस विषय को मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। ये वित्तीय परामर्शदाता विभागीय सचिव के नियन्त्रण में काम करते हैं। अब विभागीय सचिव को अपने मन्त्रालय के ऐसे व्यक्तियों से, जिनका वित्तीय ज्ञान काफी गम्भीर होता है और जो प्रवर्तन सम्बन्धी मन्त्रालय की प्रशासकीय कठिनाइयों से भी परिचित होते हैं, सूचना सम्बन्धी तथा रचनात्मक आलोचना प्राप्त होती रहती है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रदत्तीकरण प्राधिकारी का उत्तरदायित्व प्रदत्तीकरण के अन्तर्गत कम नहीं होता बल्कि प्रायः बढ़ जाता है, क्योंकि उसे अवलोकन के उपयुक्त नियमों का निर्माण करना पड़ता है और समय–समय पर उनकी समीक्षा भी करनी पड़ती है। पुनरावलोकनार्थ, वित्त मन्त्रालय को जनता के पैसे पर काफी नियन्त्रण रखना चाहिए और इस मामले में सस्ती लोकप्रियता का रास्ता नहीं चुनना चाहिए। व्यय करने वाले विभागों की एक तरह से यह अनुत्तरदायित्वपूर्ण परिपाटी ही हो गयी है जिसमें उनके व्यवहारों को देखा जा सकता है। जनता के पैसों के व्यय में हमेशा यह खतरा रहता है कि विशाल पैमाने पर उसका गलत हस्तान्तरण होता है और पैसों की बरबादी ही होती है। बजट में किसी मद में रुपये का प्रावधान यह अर्थ नहीं रखता कि वह रकम सम्पूर्णतया मान्य है। लोकसभा के द्वारा बजट के अनुमोदन के पश्चात् भी इतना आवश्यक है कि वित्त की दृष्टि से तथा अन्यान्य साधनों द्वारा उस खर्च की मद को जाँचना आवश्यक हो जाता है। यह कार्य वित्त मन्त्रालय और वित्तीय सलाहकारों द्वारा किया जाता है।

एकीकृत वित्तीय परामर्शदाताओं सम्बन्धी योजना

केन्द्रीय शासन के सभी मन्त्रालयों में 1976 से एकीकृत वित्तीय परामर्शदाताओं (Integrated Financial Advisers) की योजना का सूत्रपात हुआ है। इस योजना के अन्तर्गत वित्तीय परामर्शदाताओं की, जिनका पद अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के स्तर का है, इन पदों पर नियुक्ति की गयी। वित्तीय परामर्शदाता उस मन्त्रालय के प्रति जिसमें उसकी नियुक्ति की जाती है तथा वित्त मन्त्रालय के प्रति उत्तरदायी होता है। दूसरों शब्दों में, यह पदाधिकारी दोनों मन्त्रालयों के प्रति उत्तरदायी रहता है। वित्तीय सुधारों के प्रतिफलस्वरूप सभी मन्त्रालयों को व्यापक वित्तीय शक्तियाँ

प्रदान की गयी हैं। वित्तीय परामर्शदाता बजट निर्माण परियोजनाओं और कार्यक्रमों की समीक्षा में योग देता है। वह बजट के पारित होने के बाद उसका निरीक्षण भी करता है, और यह देखता है कि व्यय में कहीं बहुत कमी न हो जाये और न अधिक व्यय ही हो जाये। एकीकृत वित्तीय परामर्शदाता व्यय सम्बन्धी सभी योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होता है। इसके अतिरिक्त, वह मन्त्रालय के निष्पादक बजट (Performance Budget) के निर्माण में और विभिन्न योजनाओं के विकास में मार्गदर्शन करता है। ऐसे मामलों में, जो प्रचलित बजट एवं लेखांकन पद्धति से भिन्न होते हैं, वित्तीय परामर्शदाता को अनिवार्यतः वित्त मन्त्रालय के 'आर्थिक मामलों सम्बन्धी विभाग' से परामर्श करना आवश्यक है। इसी प्रकार, सम्बन्धित मन्त्रालय को विकास योजना के निर्माण के समय वित्त विभाग के 'योजना वित्तीय सम्भाग' से परामर्श करना आवश्यक है।

अन्य वित्तीय सुधार

केन्द्रीय शासन द्वारा 1976 में वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में अनेक सुधार किये गये। तभी से किसी मन्त्रालय का सचिव मुख्य लेखाकंन अधिकारी (Chief Accounting Authority) होता है। वही विनियोग लेखों (appropriation accounts) पर हस्ताक्षर करता है और अपने मन्त्रालय के वित्तीय लेखे तैयार करता है। एकीकृत वित्तीय परामर्शदाता अन्य कार्यों के अतिरिक्त ऋण और भविष्य निधि (provident fund) का विवरण रखने के लिए उत्तरदायी होता है। उस मन्त्रालय के वृत्त (circle) और वेतन अधिकारी इस कार्य में उसकी सहायता करते हैं। वह सभी बिलों की जाँच करता है और चैक द्वारा देनदारी के आदेश देता है। देनदारी का लेखांकन, बैंक के हिसाब की जाँच और अन्तिम रूप से लेखा तैयार करना संबंधित मंत्रालय का कार्य होता है न कि लेखा–परीक्षण अधिकारी का। इन वित्तीय सुधारों के सफल क्रियान्वयन के लिए प्रत्येक मन्त्रालय में एक वरिष्ठ अधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो लेखांकन का विशेषज्ञ तथा तत्संबंधी नियमों का ज्ञाता होता है।

नवीन लेखांकन व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न मन्त्रालयों को मिलाकर उनके कार्य की प्रकृति तथा सीमा के आधार पर उपयुक्त वृत्तों का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक वृत्त में एक या दो या अधिक वेतन अधिकारी होते हैं जो सभी माँगों की जाँच करते हैं, और चैक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान करते हैं। उनके द्वारा मासिक लेखे तैयार किये जाते हैं जो विभिन्न मन्त्रालयों के एकीकृत वित्तीय परामर्शदाताओं को प्रेषित किये जाते हैं। हर मन्त्रालय की अपनी लेखा–परीक्षण इकाई होती है। यद्यपि यह इकाई संगठन की दृष्टि से एकीकृत वित्तीय परामर्शदाता के कार्यालय का भाग होती है लेकिन यह मन्त्रालय के सीधे नियन्त्रण में होती है। इन आन्तरिक लेखा इकाइयों के अधीन लेखा वृत्त होते हैं। हर मन्त्रालय महालेखापरीक्षक के परामर्श से लेखांकन विधि का निश्चय करता है और लेखे का विवरण लेखा नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक को प्रस्तुत करता है। मन्त्रालयों के द्वारा उचित पद्धति का निर्माण किया जाता है, जिससे कार्य सम्बन्धी बजट और कार्य के मूल्यांकन का लेखे से सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। वित्त मन्त्रालय की विशेष स्थिति बजटोत्तर काल में एक अन्य ढंग से भी प्रकट हो जाती है। वित्त मन्त्रालय विभिन्न व्ययकर्ता विभागों के व्ययों पर मासिक व्यय विवरणों, सामयिक प्रतिवेदनों मन्त्रालय का कार्य है कि जिन व्यय राशियों को सम्बन्धित मन्त्रालयों द्वारा वित्तीय वर्ष के समाप्त होने से पूर्व व्यय नहीं किया गया है उन्हें शीघ्रातिशीघ्र वापस कर देना चाहिए। यह व्यय करने वाले मन्त्रालयों को वित्तीय मन्त्रणा देता है तथा उनका मार्गदर्शन करता है।

बजट के क्रियान्वयन काल में व्यय पर वित्त मन्त्रालय के नियन्त्रण की बड़ी आलोचना हुई है। सही रास्ता तो यह है कि प्रशासकीय मन्त्रालय को आरम्भ से ही पूर्ण विवरण सहित योजनाओं का निर्माण कर लेना चाहिए ताकि वित्त मन्त्रालय शीघ्र ही उनका अनुमोदन कर सके और बजटोत्तर परीक्षण तथा नियन्त्रण कम से कम हो जाये। सर एडवर्ड ब्रिजेज (Sir-Edward Bridges) ने 1950 में स्टाम्प मेमोरियल व्याख्यानों (Stamp Memorial Lectures) में कहा था कि आज वित्त मन्त्रालय का वास्तविक कार्य यह निश्चित करना है कि द्रव्य का व्यय कतिपय घोषित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम ढंग से अर्थात् स्त्रोतों का न्यायसंगत प्रयोग होना चाहिए। योजना आयोग का अधोलिखित मत भी महत्त्वपूर्ण है :

"आर्थिक विकास की किसी भी योजना से लोक व्यय में आधारतत्व रूप से अनिवार्यतः वृद्धि हो ही जाती है।

मितव्ययता तथा सुदृढ़ वित्तीय नियन्त्रण का महत्व – जो पहले से ही सामान्य रूप में मान्य है– राष्ट्रीय योजना की आवश्यकताओं को देखते हुए और अधिक बढ़ जाता है। वित्तीय नियन्त्रण का उद्देश्य यह निश्चित करना होता है कि (1) स्त्रोतों की बरबादी न हो, (2) सार्वजनिक धन का गलत उपयोग न हो, तथा (3) जो भी धन व्यय किया जाना है उससे उचित लाभ प्राप्त हो। प्रशासन के अधीन यह निश्चित करने का उत्तरदायित्व हो कि इन शर्तों का पालन किया गया है अथवा नहीं। प्रशासकीय प्राधिकारियों तथा वित्त विभागों दोनों पर सामान्य रूप से है, यद्यपि वित्तीय विभागों को अपेक्षाकृत अधिक कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। वित्तीय तथा प्रशासकीय अधिकारियों के मध्य प्रत्येक स्तर पर निकटतम सहयोग की सदा आवश्यकता रहती है, ताकि यदि कोई कठिनाई सामने आ जाये तो उसे व्यक्तिगत परामर्श द्वारा किसी प्रस्ताव के नियमन की प्रारम्भिक अवस्था में तथा निर्णय के पूर्व ही निपटाया जा सकता है। वित्तीय प्रक्रियाएँ, जो एक ओर समुचित नियन्त्रण निर्धारित करती हैं और दूसरी ओर अपने कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अधिकाधिक हस्तक्षेप से रक्षा करती है, पंचवर्षीय योजना के कुशल निष्पादन के लिए आवश्यक है।" लेकिन वित्त मन्त्रालय के इस नियन्त्रण को पूर्ण रूप से समाप्त करना न तो सम्भव है और न संसद के प्रति शासन के वित्तीय उत्तरदायित्व से ही मेल खाता है। प्रशासकीय मन्त्रालय को भी अपने वित्तीय उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार समझना चाहिए।

वित्त मन्त्रालय की भूमिका का मूल्यांकन

(Evaluation of the Role of Finance Ministry)

वित्त मन्त्रालय की भूमिका का मूल्यांकन निम्न प्रकार किया जा सकता है :

1. कार्यपालिका का नियन्त्रण (**Control of Executive**) : संसदीय पद्धति के अन्तर्गत बजट पर नियन्त्रण सिद्धान्त तो संसद का माना जाता है क्योंकि बजट के अन्त में संसद की स्वीकृति मिलनी चाहिए, परन्तु व्यवहार में बजट का सारा नियन्त्रण कार्यपालिका का स्थापित हो जाता है क्योंकि कार्यपालिका को ही बजट प्रस्तावित करने का अधिकार होता है चाहे घटाने या हटाने का अधिकार भले ही संसद का है।

2. कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका में सम्बन्धों की घनिष्ठता (**Close Relations between Executive and Legislature**) : भारत में संसदीय शासन व्यवस्था अपनाई गई है जिसके फलस्वरूप कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो गया है। संसद के प्रति अपने हर कार्य के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से उत्तरदायी रहते हुए मंत्रीगण संसद के नेता के रूप में उभरते हैं।

3. वित्त मंत्रालय की शक्ति में वृद्धि (**Increase in the Powers of the Ministry of Finance**) : संसदीय प्रशासन में कार्यपालिका की यह शक्ति अन्त में वित्त मंत्रालय की शक्ति बन जाती है क्योंकि जिस प्रकार पूरा वित्तीय प्रशासन चलता है उनमें वित्त मंत्रालय की भूमिका सर्वप्रथम और अत्यधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। उसी के नेतृत्व में सारा बजट तैयार होता है, उसी के निरीक्षण में सारा व्यय किया जाता है।

वित मन्त्रालय की आलोचना (**Criticism of Ministry of Finance**)

आलोचकों का कथन है कि वर्तमान समय में वित्त मन्त्रालय न केवल वित्तीय पक्ष की बल्कि विकास योजनाओं तथा उद्यमों के कार्यक्रमों की तकनीकी बारीकियों की जाँच करने का प्रयास करता है जिनमें उनकी योग्यता संदिग्ध है। इसके परिणामस्वरूप न केवल अन्य विभाग परेशान होते हैं बल्कि समय नष्ट होता है।

श्री अशोक चन्द्रा ने लिखा है, "अन्त में वित्त मन्त्रालय राजी हो जाता है, लेकिन बहुत सारी बहस के बाद और उसका नियन्त्रण प्रस्थापना प्रस्तावों (Establishment Proposals) पर स्थापित हो जाता है जो पूरी लागत का नगण्य अंश होते हैं, इसलिए वित्त मन्त्रालय मक्खी पर तो लड़ते हैं परन्तु फिर भी उन्हें ऊँट ही निगलना पड़ता है।" व्यय पर व्यापक नियन्त्रण की बात की चर्चा करते हुए अमेरिकी विशेषज्ञ डी. एपलिबी (D. Appleby) ने आलोचना की थी कि, "आवश्यकता इस बात की है कि वित्त मंत्रालय बजाय इसके कि बजट बनाने के पश्चात् खर्चों पर व्यापक

नियन्त्रण लगाए, उसको अपना अधिक ध्यान श्रेष्ठतर बजट निर्माण पर ही केन्द्रित करना चाहिए। वस्तुतः व्यय का गूढ़ एवं लाभप्रद नियंत्रण तो केवल कार्यक्रम योजनायें बनाने वाले अभिकरणों (Agencies) में भी किया जा सकता है। ये अभिकरण उपयुक्त ढंग के बजट कार्यक्रम प्रस्तुत करना उसी समय प्रारम्भ कर सकेंगे जबकि इस श्रेष्ठतर प्रकार से द्वितीय प्रबन्ध के बारे में उन्हें अनुभव होगा।

इस प्रकार वित्त मन्त्रालय अपने उत्तरदायित्व की दृष्टि से उपयुक्त प्रकार का बजट केवल तभी प्रस्तुत कर सकता है जबकि अन्य मन्त्रालय बजट निर्माण का कार्य–उन्नत तथा विकसित ढंग से करें।"

ए.डी. गोरवाला का कथन है, "वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में, वास्तविक रूप में," आवश्यकता नियन्त्रण की है हस्तक्षेप की नहीं। आज जो कुछ हो रहा है वह यह है कि छोटे–छोटे मामलों में उत्तेजनात्मक हस्तक्षेप किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप प्रशासकीय विभागों अर्थात् सरकार के एक बड़े भाग की शक्ति तथा समय का भारी अपव्यय होता है और उसमें निराशा पैदा होती है। यह स्थिति समाप्त की जानी चाहिए।

वित्त मन्त्रालय के सम्बन्ध में अनुमान समिति के सुझाव (Suggestions of Estimate Committee Regarding Ministry of Finance)

अनुमान समिति ने अपने नवें प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया कि वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासकीय मन्त्रालयों के मध्य समन्वय होना चाहिए और प्रशासकीय मन्त्रालयों को आर्थिक वित्तीय प्राधिकार (Financial Authority) सौंपी जानी चाहिए। समिति की सलाह थी कि प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा वित्त मन्त्रालयों के बीच पूर्ण सौहार्द (Cordiality) की स्थापना करने के लिए इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए जाने चाहिए ताकि वे एक–दूसरे के पूरक बने रहें और अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति में एक–दूसरे के सहायक रहें। समिति ने अपनी विस्तृत प्रबन्ध के अनेक पक्षों की आलोचना के साथ–साथ निम्नांकित सिफारिशें की थीं :

(1) **योजना के कार्यान्वयन का दायित्व** : वित्त मन्त्रालय द्वारा वित्तीय दृष्टिकोण से योजना पर सहमति प्रकट किए जाने के पश्चात् योजना के व्यापक कार्यान्वयन तथा उस पर धन व्यय करने का उत्तरदायित्व संबंधित प्रशासकीय मंत्रालय का होना चाहिए जिसको यह अधिकार भी होना चाहिए कि वह योजना के उपशीर्षकों की धनराशियों में उस सीमा तक परिवर्तन कर सके जहाँ तक की योजना की कुल लागत पर उसका प्रभाव पड़े।

(2) **योजना की समुचित रूपरेखा** : किसी भी योजना का आरम्भ करने से पहले, उसकी समुचित रूप–रेखा बनाई जानी चाहिए और इस बात की भी पड़ताल की जानी चाहिए कि उस योजना के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नहीं अथवा उपयुक्त समय पर वह उपलब्ध किया जा सकता है या नहीं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. बी॰ एम॰ चटर्जी, फाईनैन्शियल कन्ट्रोल इन गवर्नमेंट एण्ड प्राईवेट सेक्टर मैनेजमेंट, 1963
2. सी॰के॰ घोष, एक्सपेंडीचर कन्ट्रोल इन डवल्पमैंट एडमिनिस्ट्रेशन, इंडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
3. एम॰जे॰के॰ थावराज, फाईनेन्शियल कंट्रोल एण्ड डेलिगेशन, नई दिल्ली, आई॰आई॰पी॰ए॰, 1973

कुछ संभावित प्रश्न

- वित्त मन्त्रालय के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करो।
- वित्त मंत्रालय सार्वजनिक वित्त पर नियन्त्रण कैसे करती है? वर्णन करो।

Semester-I

Unit-III

अध्याय–8 (Chapter-8)

इकाई – अनुमान समिति, सार्वजनिक लेखा समिति और लोक उद्यम समिति रूपरेखाः–

(1) अनुमान समिति

- उद्‌गम
- संगठन
- कार्यप्रणाली
- सारांश

(2) लोक लेखा समिति

- महत्व
- स्वरूप
- कार्यप्रणाली
- सारांश

(3) सार्वजनिक उद्यम समिति

- स्वरूप
- कार्यप्रणाली
- सीमाएं
- सारांश
- कुछ उपयोगी पुस्तकें
- कुछ प्रश्न

अध्याय–8

अनुमान समिति, सार्वजनिक लेखा समिति और सार्वजनिक उद्यम समिति

(Estimates Committee, Public Accounts Committee and Public Undertaking Committee)

(A) अनुमान समिति (Estimates Committee)

भारतीय लोक लेखा समिति के एक सदस्य ऐरा सेजीयन (Era Sezhiyan) ने समिति के 40वें प्रतिवेदन पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि प्रतिवेदनों में बीती घटनाओं से संबंधित आलोचनाओं की बुद्धिमत्ता इस दृष्टि से परखी जानी चाहिए कि इनके द्वारा व्यवस्था की वास्तविक कमजोरियों को उद्‌घाटित करके राष्ट्रीय हित के बड़े मुद्दों के प्रति ध्यान आकर्षित किया जाता है। भारत में लोक लेखा समिति की करीब 90% सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। फलतः हर अगले वर्ष वित्तीय शासन के क्षेत्र में सुधार की संभावनाएं तो बनती ही हैं। समिति की एक आम शिकायत यह है कि सरकार उसकी सिफारिशों को गंभीरता से नहीं लेती तथा इन्हें संसदीय लोकतंत्र में पूर्ण करने योग्य औपचारिक मात्र मान लिया जाता है। जब कभी कोई अनियमितता बतलायी जाती है तो सरकार इसके लिए एक दूसरी समिति गठित कर देती है जो प्रायः विभागीय प्रकृति की होती है, न्यायिक स्वरूप वाली नहीं होती। ऐसी समितियाँ प्रायः लीपा–पोती के अलावा और कुछ नहीं करती तथा वे मंत्रालयों के कार्यों के औचित्य को सिद्ध करने के प्रयास में लगी रहती हैं।

लोक लेखा समिति सरकारी विभागों तथा विभिन्न निगम मंडलों के काम–काज के बारे में लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन के आधार पर सिफारिशें करती हैं, उससे काम–काज को अधिक सुचारू करने के अलावा भ्रष्टाचार, अपव्यय और नौकरशाही के अनियन्त्रित तरीकों पर रोक लग सकती है। लेकिन अफसोस यह है कि सरकार इस बारे में ध्यान नहीं देती और न ही प्रतिवेदनों पर कार्यवाही करती है। इसके कारण मनमानी चलती है और सरकारी धन के व्यय के प्रति कोई गंभीर नहीं होता। यद्यपि समिति के पास अपनी सिफारिशें लागू करवाने की कोई सत्ता नहीं होती तथापि इस अर्थ में उसकी सेवाएं महत्वपूर्ण हैं कि वह प्रशासन के दोषों को जनता के समक्ष प्रकट करती है तथा अधिकारियों को इस बात के लिए सचेष्ट रखती है कि उनकी लापरवाही अथवा भ्रष्ट आचरण की सूक्ष्म जाँच करने वाली वैधानिक इकाई निरन्तर उनके कार्यों पर नजर रखे रहती है। इसके अतिरिक्त इस समिति के मंच पर प्रशासनिक अधिकारी तथा राजनीतिक व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति मंच पर एकत्रित होकर जिस उच्च स्तर पर विचार–विमर्श करते हैं, उससे पूरे वित्तीय प्रशासन तंत्र में सतत् सुधार तथा निखार की संभावनाएँ बलवती बनती हैं। इस दृष्टि से लोक लेखा समिति को संसदीय वित्त नियंत्रण का एक सशक्त माध्यम माना जा सकता है। इसमें विशेषज्ञ भले ही न हों, उसके विचार–विमर्श में चाहे राजनीतिक रंगत ही क्यों न दिखायी दे तथापि यह संसदीय तंत्र का एक ऐसा अंग है जो प्रशासन तंत्र को आर्थिक कुशलता की ओर अग्रसर करने के लिए दिशा स्तम्भ की भूमिका निरन्तर निभाती रहती है।

"लोक लेखा समिति में यद्यपि सभी दलों के सदस्य होते हैं किन्तु इस समिति ने सदा एक मत से प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं तथा सभी मामलों पर निष्पक्षता से विचार किया है।" "समिति द्वारा व्यय तथा प्रशासनिक त्रुटियों की

जाँच पड़ताल का काफी प्रभाव पड़ता है तथा इससे सरकारी विभागों में अकार्यकुशलता, लापरवाही जैसे दोष नहीं आ पाते। सरकारी धनराशि को खर्च करते समय प्रशासन सावधानी बरतता है तथा प्रशासनिक कार्यवाही में कार्यकुशलता बनी रहती है।"

अनुमान समिति या प्राक्कलन समिति (Estimate Committee)

ब्रिटेन में 1912 से कोई 20 से 30 सदस्यों की एक अनुमान समिति कार्य करती रही हैं जबकि भारत में 1937 में श्री एस. सत्यमूर्ति ने केन्द्रीय विधान मंडल में एक अल्पकालीन सूचना के माध्यम से इस समिति की स्थापना की मांग की थी। लेकिन इस समिति की स्थापना स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात 10 अप्रैल, 1950 को ही करना संभव हो सका। इस समिति की स्थापना की घोषणा करते हुए तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री मावलंकर ने कहा था कि भारतीय संविधान की धारा 116 के प्रावधान के अनुसार, "कार्यपालिका के व्यय पर सदन के बेहतर नियंत्रण के लिए अनुमान समिति की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जाती थी। इसलिए निम्न समिति की समिति के समान एक स्वतंत्र समिति की स्थापना की जा रही है।"

इस घोषणा के साथ प्रारम्भ में लोकसभा के 25 सदस्यों की एक समिति चुनी गयी किन्तु 1955 से इसकी सदस्य संख्या 30 कर दी गयी। यहाँ यह याद रखना उचित होगा कि अनुमान समिति में वास्तव में स्थायी वित्त समिति की प्रतिस्थापक समिति अथवा उसी का सुधरा रूप नहीं है। ये दोनों समितियाँ 1952 तक साथ–साथ काम करती रहीं। किन्तु 1952 में स्थायी वित्त तथा रथायी सलाहकार समितियों को समाप्त कर दिया गया है।

अनुमान समिति का संगठन एवं स्वरूप

(The Nature and Organisation of Estimate Committee)

लोक लेखा की भांति अनुमान समिति भी लोकसभा की ही समिति है जिसके सदस्य एकल संक्रमणीय पद्धति के आधार पर प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। इस समिति में लोकसभा के 30 सदस्य होते हैं। लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के समान राज्य सभा के सदस्य इसके साथ सहयोजित नहीं किए जाते। इस समिति में भी राजनीतिक दलों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिलता है। समिति के सदस्यों का चुनाव पूर्व के वर्ष की समिति के अध्यक्ष के प्रस्ताव के आधार पर लोकसभा द्वारा किया जाता है। प्रत्येक वर्ष मई माह में समिति का कार्यकाल प्रारम्भ होता है तथा अगले वर्ष 30 अप्रैल को समाप्त हो जाता है।

1956–57 से प्रचलित परम्परा के अनुरूप प्रतिवर्ष समिति के एक–तिहाई सदस्य नये चुने जाते हैं तथा बाकी दो–तिहाई अगले वर्ष के लिए पुनः चुन लिए जाते हैं। इस परम्परा से अनुभवी सदस्यों के अनुभव का इस समिति को निरन्तर लाभ मिलता रहता है। समिति का अध्यक्ष लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाता है किन्तु यदि लोकसभा का उपाध्यक्ष इस समिति में चुना जाता है तो फिर यही समिति का अध्यक्ष भी चुना जाता है। आमतौर पर सत्तारूढ़ दल का कोई वरिष्ठ सदस्य इस पद पर चुना जाता है और व्यवहार में लोकसभा अध्यक्ष के स्थान पर सत्तारूढ़ दल के संसदीय बोर्ड अथवा संसदीय मामलों के मंत्री से दिशा–निर्देशित होता है। भारत में अनुमान समिति के अध्यक्ष की आंख प्रायः मंत्री पद पर लगी रहती है और इस कारण उसके व्यवहार में निष्पक्ष दृष्टिकोण का अभाव पाए जाने की संभावना रहती है।

अनुमान समिति के कार्य एवं अधिकार (Functions and Powers of Estimate Committee)

अनुमान समिति के नाम से ऐसा लगता है, मानो बजट अनुमानों से कोई इसका सीधा वारता हो। किन्तु इसके विपरीत, अनुमान समिति सरकारी व्यय में मित्तव्ययिता लाने के लिए रचनात्मक सुझाव देने वाली एक सतत् संरथा के रूप में अधिक महत्वपूर्ण रही है। इसका कार्य सामान्य वित्तीय प्रक्रिया से बाहर है अर्थात् बजट प्रावधानों पर संसदीय मतदान के पूर्व इस समिति के द्वारा बजट अनुमानों की जाँच नहीं की जाती।

संसदीय कार्यवाही नियमन नियम संख्या 310 से 312 में अनुमान समिति के कार्यक्षेत्र का विवेचन किया जाता है। पूर्व में इस समिति को बतलाना होता था कि "अनुमानों को निर्धारित करने की नीति को ध्यान में रखते हुए इनमें क्या मितव्ययिताएं लागू की जा सकती है?" किन्तु अक्टूबर, 1956 में किए गए व्यापक संशोधनों के बाद इस समिति का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक कर दिया गया है। नए प्रावधानों के अनुसार समिति को यह प्रतिवेदन देना होता है कि "सरकारी नीति संगतता के आधार पर तैयार किए गए अनुमानों में क्या मितव्ययिताएं संगठनात्मक सुधार, कुशलता या प्रशासनिक सुधार लागू किए जा सकते हैं, प्रशासन में मितव्ययिता तथा कुशलता लाने के लिए क्या नीति विकल्प हो सकते हैं तथा यह जाँच करना कि किस हद तक नीति के अनुरूप तैयार किए गए अनुमानों के लिए मौद्रिक प्रावधान सही ढंग से किए गए हैं।"

इस संशोधित कार्य–प्रणाली नियमन के अनुसार अनुमान समिति के कार्यों का सार निम्नांकित शीर्षों में दिखाया जा सकता है :–

1. सरकारी नीति के अनुरूप तैयार किए गए अनुमानों में मितव्ययिता लाने के उपाय–प्रशासनिक तथा संगठनात्मक–सुझाव;
2. संसद के समक्ष बजट अनुमानों के प्रस्तुतीकरण को बेहतर ढंग विकसित करने के लिए सुझाव देना;
3. कुशलता तथा मितव्ययिता के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये वैकल्पिक नीतियों को सुझाव देना; तथा
4. अनुमानों में सन्निहित नीति के अनुरूप मौद्रिक प्रावधानों के औचित्य की जाँच। अनुमान समिति के इन कार्यों का सूक्ष्म परीक्षण करने से ऐसा लगता है कि समिति को मितव्ययिता तथा कुशलता के मसलों पर सुझाव देने हैं जबकि नीति विषयक मुद्दों पर उसे अपनी राय जाहिर करने का सुझाव देने का अधिकार नहीं है। इस स्थिति की पेचीदगी की ओर समिति का ध्यान आकर्षित करते हुए 1959 में लोकसभा अध्यक्ष ने कहा था कि, "समिति के आधारभूत उद्देश्य प्रशासन में कुशलता तथा मितव्ययिता लाना तथा यह आश्वस्त करना कि मौद्रिक अनुमान ठीक से तैयार किए गए हैं, होते हैं। पर सूक्ष्म जाँच के बाद यदि ऐसा लगे कि किसी एक नीति के अपनाने के कारण भारी धनराशि बेकार खर्च हो रही है, तो समिति उन दोषों को भी इंगित कर सकती है।" डॉ॰ कश्यप के अनुसार "यह समिति 'स्थायी मितव्ययिता समिति' के रूप में कार्य करती है और इसकी आलोचना और सुझाव फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का काम करते हैं।"

समय–समय पर अनुमान समिति के अधिकार–क्षेत्र के संदर्भ में की गयी व्याख्याओं को देखने से प्रतीत होता है कि ब्रिटेन की अपेक्षा भी भारतीय अनुमान समिति का अधिकार क्षेत्र अधिक व्यापक है। 1964 तक भारत में सभी सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के क्रियाकलाप भी अनुमान समिति के जाँच क्षेत्र में सम्मिलित थे। किन्तु 1964 में इनके लिए अलग समिति बनाए जाने के साथ ही कोई 124 सार्वजनिक इकाइयों की जाँच का कार्य इस समिति द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 112(3) के अन्तर्गत विभाजित मतदेय, मदों तथा गैर मतदेय मदों की बजट अनुमानों में ठीक से पालन की गयी है या नहीं, इसकी जाँच भी समिति द्वारा की जाती है।

अनुमान समिति की कार्य–प्रणाली

(Workingof Estimate Committee)

प्रतिवर्ष समिति द्वारा कुछेक मंत्रालयों को अपने विशिष्ट अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है तथा जुलाई माह से जाँच कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जाती है। मंत्रालयों के चुनाव का दिशा–निर्देशन करते हुए 1958 में लोकसभा अध्यक्ष ने कहा था कि, "प्रत्येक लोकसभा के जीवनकाल में, जहाँ तक संभव हो, हर मंत्रालय के महत्वपूर्ण बजट अनुमानों की जाँच का एक दौर पूरा किया जाना चाहिए।"

अपनी इच्छा के चयन किए गए मंत्रालयों/विभागों के बजट अनुमानों की जाँच के अलावा भी लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सुझाए किसी और विषय को भी बीच में ही अध्ययन के लिए समिति द्वारा चुना जा सकता है। विषयों के चयन के पश्चात् समिति छोटे–छोटे अध्ययन दलों में बंटकर अलग–अलग विभागों की जाँच का कार्य काफी सूक्ष्मता से प्रारम्भ करती है। अपनी जाँच तथा अध्ययन के लिए वह निम्न स्रोतों से सामग्री एकत्रित कर सकती हैः

1. प्रशासनिक स्रोत,
2. प्रकाशित सामग्री,
3. निजी संस्थाएं,
4. अध्ययन दल भेजकर,
5. सरकारी गवाही द्वारा,
6. मौखिक गवाही द्वारा,
7. गैर–सरकारी गवाही द्वारा।

समिति इन स्रोतों से तथ्यों के एकत्रीकरण पर भरपूर जोर देती है तथा तथ्यों के आधार पर जाँच की कार्यवाही को आगे बढ़ाकर संबंधित मंत्रालयों के सचिवों अथवा ऊँचे अधिकारियों से वह जवाब तलब करती है। यह कार्यवाही लोक लेखा समिति द्वारा अपनाए जाने वाले ढंग के अनुरूप ही लगभग चलती है। अपनी बैठकों में विभागीय अधिकारियों से स्पष्टीकरण प्राप्त करने के अलावा संबंधित मंत्रालयों अथवा विभागों को समिति द्वारा तैयार कर भिजवायी गयी प्रश्नावली भी भरकर भेजनी होती है। इस परिपत्र में अपने विभाग के लिए तैयार किए गए अनुमानों के संदर्भ में मुख्यतया निम्न सूचनाएं देनी पड़ती हैं :

1. मंत्रालय तथा उससे जुड़े एवं नीचे के कार्यालयों का संगठन तथा कार्य'
2. उन आधारों का विस्तृत ब्यौरा, जिन पर अनुमान की तैयारी निर्भर करती हो;
3. मंत्रालय का कोई प्रतिवेदन जो अपने कार्यों के बारे में जारी किया हो;
4. मंत्रालय में कार्य की मात्रा जो वित्तीय अनुमानों की अवधि में पूरी की जानी है तथा पिछले तीन वर्षों का तुलनात्मक विवरण;
5. योजनाएं जो मंत्रालय प्रारम्भ करने या क्रियान्वयन करने जा रहा हो;
6. पिछले तीन वर्षों के दौरान का वर्तमान अनुमानों में शामिल उप–शीर्षवार वास्तविक खर्च का ब्यौरा;
7. वर्तमान वर्ष तथा पिछले वर्ष के खर्च ब्यौरे में अन्तर के कारण।

इन समस्त सूचनाओं का समिति के सचिवालय द्वारा विश्लेषण करके विशिष्ट मुद्दे समिति के सदस्यों के पास भिजवा दिये जाते हैं ताकि समिति की पूर्ण बैठक के समय प्रत्येक सदस्य अपनी ओर से भी विशिष्ट बिन्दुओं को उठा सके। अधिकारियों के साथ विचार–विमर्श के पश्चात् कुछ खास बिन्दुओं की एक सूची बना ली जाती है जिन पर सचिव जरूरी सूचनाएं तथा स्पष्टीकरण लिखित रूप से समिति के पास भिजवाने का वादा करें।

अनुमान समिति का प्रतिवेदन (Report of the Estimate Committee)

सर्वप्रथम समिति के उप–समूहों (Sub-groups) या अध्ययन दलों द्वारा विचार–विमर्श तथा एकत्रित सामग्री के अध्ययन के आधार पर कुछ खास बिन्दु अपनी ओर से प्रतिवेदन में शामिल करवाने के उद्देश्य से तैयार किए जाते हैं। सभी

समूहों के द्वारा उभारे गए बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में सचिवालय द्वारा समिति की ओर से प्रतिवेदन तैयार किया जाता है तथा अध्यक्ष की स्वीकृति के लिए पेश किया जाता है। अध्यक्ष की स्वीकृति के पश्चात् प्रतिवेदन को तथ्यात्मक पुष्टि हेतु संबंधित विभाग या मंत्रालय को गोपनीय बनाए रखते हुए भेजा जाता है। मंत्रालय से पुष्टि होने के बाद समिति का प्रतिवेदन मुख्यतया तीन भागों में विभाजित कर अन्तिम रूप से तैयार कर लिया जाता हैः

1. मितव्ययिता लागू करने हेतु सुझाव;
2. संगठनात्मक तथा कार्यात्मक सुधार हेतु सुझाव;
3. अन्य सुझाव।

प्रायः समिति का प्रतिवेदन बजट अधिवेशन के समय मंत्रालय विशेष की अनुदान मांगों पर बहस के पूर्व संसद में प्रस्तुत किया जाता है। सदन में प्रस्तुत करने के पश्चात् भी अनुमान समिति अपने सचिवालय की सहायता से संबंधित मंत्रालय द्वारा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए की गयी कार्यवाही की सूचना छः माह के भीतर मांगती है। मंत्रालय से प्राप्त होने वाले प्रतिवेदन को क्रियान्वयन प्रतिवेदन (Action Taken Report) कहा जाता है।

अनुमान समिति के कार्यों की समीक्षा

(Critical Appraisal of Estimate Committee's Functioning)

भारत में अनुमान समिति का कार्य बहुत व्यापक है। जहां एक ओर उसने केन्द्रीय सचिवालय विभागों के पुनर्गठन के लिए (दूसरी रिपोर्ट) अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी तरफ दादर घाटी योजना, हीराकुण्ड योजना, भाखड़ा नांगल योजना तथा ककरापारा योजना जैसे बहु–उद्देश्यीय योजनाओं के कार्य संचालन में प्रशासनिक कमियों को उजागर करने में महती भूमिका निभाती है। (116वां प्रतिवेदन)। प्रथम 7 वर्षों में समिति द्वारा 57 प्रतिवेदन लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किए गए।

समिति ने अपने 26वें प्रतिवेदन में सुरक्षा मंत्रालय तथा सुरक्षा सेना के प्रमुख कार्यालय के मध्य त्वरित निर्णय प्रक्रिया लागू करने का सुझाव दिया जो कालान्तर में अत्यधिक उपयोगी साबित हुआ। सुरक्षा सेना मंत्रालयों को अधिक अधिकार देने की समिति की पैरवी वस्तुतः एक रचनात्मक दिशा–निर्देशन का प्रतीक मानी जा सकती है। इसके अलावा समिति ने भारतीय नियोजन में बढ़ते गैर–योजना व्यय को कम करने, नागरिक पायलटों के प्रशिक्षण तथा रोजगार, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कार्मिक सेवा नीतियों जैसे अनेक छोटे–बड़े मुद्दों पर अपने विचार दिए हैं। चाहे विदेशी विनिमय के सदुपयोग का सवाल हो या ग्रामीण गृह निर्माण योजना को प्रभावशाली बनाने की समस्या हो या किसी विशिष्ट शोध संस्थान को सुदृढ़ करने की पेचीदगी हो, अनुमान समिति निरन्तर अपने गहन अध्ययन के आधार पर महत्वपूर्ण सुझाव देती रही है। द्वितीय लोकसभा के समय समिति का सबसे महत्वपूर्ण किन्तु विवादास्पद प्रतिवेदन 'योजना आयोग' के बाबत था। समिति ने योजना आयोग को एक सलाहकार संस्था के रूप में मानकर उसमें अनावश्यक रूप से मंत्रियों की नियुक्ति का विरोध किया। इस संस्था को योजना मूल्यांकन तथा निर्माण के पूर्णकालीन कार्य में लगाए रखने के लिए यह जरूरी है कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में इसका विशिष्ट अस्तित्व बना रहे। यद्यपि प्रारम्भ में सरकार ने नाराज होकर 33 में से केवल 7 सिफारिशें मानी, किन्तु समिति के इस प्रतिवेदन से भारतीय नियोजन को एक नयी दिशा मेली इसमें कोई शक नहीं है।

वर्ष 1950–51 में अनुमान समिति ने भारत सरकार के सचिवालय और विभागों के पुनर्गठन के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। वर्ष 1953–54 में समिति ने प्रशासनिक, वित्तीय तथा अन्य सुधार संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। वर्ष 1962–63 में समिति ने सुझाव दिया था कि विद्युत चालित करघा उद्योग के विकास के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता है। वर्ष 1967–68 में 'विदेशी मुद्रा' संबंधित प्रतिवेदन में समिति ने विदेशी मुद्रा की

गंभीर स्थिति के कारण योजना आयोग, वित्त मंत्रालय, वाणिज्य एवं औद्योगिक विकास मंत्रालय के बीच तालमेल की कमी बताया। 1965–66 में समिति ने कहा कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उन विश्वविद्यालयों को अनुदान देने में सख्ती बरतनी चाहिए, जो आयोग की अनुमति के बिना स्थापित किए गए। 1971 के अपने प्रतिवेदन में सरकारी क्षेत्र के उर्वरक कारखानों द्वारा अधिष्ठापित क्षमता से कम उत्पाद करने के लिए उनकी आलोचना करते हुए समिति ने इच्छा व्यक्त की कि सरकार को इसके कारणों का पता लगाना चाहिए। लोक व्यय पर संसदीय नियन्त्रण के व्यापक लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनुमान समिति द्वारा किए गए इन महत्वपूर्ण प्रयासों के बावजूद भी यह समिति कतिपय रचनात्मक आलोचनाओं से स्वयं को नहीं बचा पायी है। भारत के भूतपूर्व नियंत्रक तथा महा लेखापरीक्षक श्री अशोक चन्दा ने समिति की निम्न आधारों पर आलोचना की है :

1. समिति द्वारा प्रायः संगठनात्मक सुधार तथा कार्यों के पुनर्वितरण के लिए सुझाव दिए जाते हैं जिनका प्रचार महत्व अधिक होता है। सरकार ऐसी अधिकांश सिफारिशों को अस्वीकृत करने को मजबूर होती है जिससे सरकार तथा समिति दोनों की इज्जत को ठेस पहुंचती है।
2. चूँकि समिति सरकारी नीतियों के मूल्यांकन तथा विभागीय पुनर्गठन के बाबत मुद्दों पर अपनी शक्ति खर्च करने लगी है, फलतः अनुमानों की जाँच का उसका प्रमुख कार्य पृष्ठभूमि में रह गया लगता है।
3. समिति के कार्य करने का ढंग तथ्यों को खेजने की मंशा के अनुरूप नहीं है। "समिति संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित कांग्रेस की समितियों के अनुरूप व्यवहार को ग्रहण करती जा रही है और तथ्यान्वेषी तंत्र के स्थान पर छिद्रान्वेषी तंत्र बनती जा रही है।
4. समिति स्वयं को उस भूमिका की ओर ले जा रही है जो वास्तव में संवैधानिक तौर पर लोकसभा को प्राप्त है।

ये आलोचनाएं काफी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि समिति सामान्य व्यक्तियों का समूह मात्र है तथा इसके पास लोक लेखा समिति जैसे कोई विशेषज्ञ (CAG) की सेवाएँ उपलब्ध नहीं है। समिति की सिफारिशों में से 60% से 80% सिफारिशें संगठनात्मक सुधारों से जुड़ी हुई हैं, और इस प्रकार मितव्ययिता के मूल लक्ष्य से भटकाव का लांछन समिति पर लगाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उदाहरणार्थ, अपने 51%वें प्रतिवेदन में समिति ने छोटे बन्दरगाहों के निर्माण का विषय 'समवर्ती सूची' से केन्द्रीय सूची में शामिल करने की सलाह दी थी तथा अपनी 9वीं रिपोर्ट में 'इम्पीरियल बैंक' के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया था। इन बातों का मितव्ययिता से कोई सीधा संबंध नहीं है। श्री मधोक कहते हैं कि, "समिति ने न केवल पूर्व तीक्ष्णता एवं जोर–शोर खो दिया है अपितु यह सरकारी व्यय नीतियों तथा अनुमानों की जाँच समिति के बजाय उसकी सलाहकार समिति का रूप धारण करती जा रही है।"

इन आलोचनाओं में सत्य का अंश होते हुए भी यह कहना उचित होगा कि समिति निरन्तर मितव्ययिता बरतने योग्य क्षेत्रों की खोजबीन में लगी रहती है। यह अपने जाँच प्रतिवेदनों के माध्यम से संसद तथा आम जनता को सरकारी क्रियाकलापों से संबद्ध महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराती है। कभी–कभी ये सूचनाएं व्यापक जनमत को जाग्रत करने का इतना महत्वपूर्ण कार्य करती हैं कि सरकार को समिति की सिफारिशों के समक्ष झुकना पड़ता है। एन. जोन्सन समिति की महत्ता की चर्चा करते हुए ठीक ही कहते हैं कि, "यद्यपि खुले रूप में उपेक्षित होने के बावजूद भी अनुमान समिति के कार्य सरकारी क्रियाकलापों को स्पष्ट करने तथा उन्हें आम चर्चा का विषय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह वास्तव में एक स्थायी महत्व का राजनीतिक कार्य माना जा सकता है।"

यह समिति एक और मंच उपलब्ध कराती है जहां प्रशासक तथा लोक प्रतिनिधि मिलकर जनतंत्रीय शासन प्रणाली में लोक सत्ता की प्रभुता के सिद्धान्त की महत्ता को मूर्त रूप प्रदान करते हैं और इसी अर्थ में अनुमान समिति संसदीय शासन व्यवस्था का प्रभावशाली वित्त नियंत्रण तंत्र मानी जाती है। यह संतोष की बात है कि सरकार ने समिति की 70 से 80 प्रतिशत सिफारिशें स्वीकार की हैं।

(B) लोक लेखा समिति (Public Accounts Commitee)

विशिष्ट प्रयोजनों के लिए धन पर मतदान करने के संसद के अधिकार का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक उसे यह निश्चित करने का अधिकार न हो कि संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि का कार्यपालिका द्वारा उन्हीं प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है जिनके लिए संसद ने उन्हें स्वीकृत किया है। यह तभी निश्चय हो सकता है जब सार्वजनिक लेखाओं का निरीक्षण किसी स्वतंत्र अधिकारी–लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक द्वारा किया जाये; और तदन्तर उसके प्रतिवेदन की जाँच संसद की एक विशेष समिति द्वारा की जाती है जिसे लोक लेखा समिति कहते हैं। संसद की समिति का निर्माण इस दृष्टि से श्रेयस्कर है कि (1) संसद के पास इतना समय नहीं होता कि वह प्रतिवेदन का विशद् परीक्षण कर सके; (2) चूँकि परीक्षण एक विशिष्ट प्रकार का होता है, अतः वह एक समिति द्वारा ही किया जाना चाहिए; (3) समिति द्वारा परीक्षण होने पर ही वह निर्दलीय होता है, जबकि सदन द्वारा निर्दलीयता अथवा निष्पक्षता संभव नहीं है। पिछले पैराग्राफ में प्रथम दृष्टया स्पष्ट है कि यह कार्य एक संसदीय समिति को सौंप दिया जाना चाहिए कि सार्वजनिक व्यय स्वीकृति के अनुसार ही किया गया है। लेकिन ऐसी समिति की स्थापना का विचार विलम्ब से आया है। ब्रिटिश संसद ने विनियोजनों को स्वीकार करने का अधिकार 1688 की क्रांति से प्राप्त कर लिया था, किन्तु उसे यह निश्चित करने का अधिकार कि उस द्रव्य का व्यय किस प्रकार किया जाता है, केवल 1861 में ही मिला है, जब लोकसभा ने लोक लेखाओं की समिति का निर्माण किया था। "ब्रिटेन की लोक लेखा समिति का अपनी पूर्ण वित्तीय प्रशासन व्यवस्था के अनेक पहलुओं में से एक दिलचस्प पहलू है... और इसी व्यवस्था को श्रेय भी है जिसने शनैः–शनैः जड़ पकड़ कर लोक व्यय पर वास्तविक नियंत्रण कर रखा है।" भारत में केन्द्र में लोक लेखा समिति की सर्वप्रथम स्थापना 1921 के मॉण्टफोर्ड सुधारों के फलस्वरूप 1923 में हुई थी। "अपने आरम्भ से ही केन्द्रीय लोक लेखा समिति सार्वजनिक व्यय के विधायी नियंत्रण की एक व्यापक शक्ति बन गयी थी। इसके संगठन संबंधी तथा इसकी सत्ता की सीमाओं के बावजूद इसने सरकार पर सार्वजनिक धन के व्यय में मितव्ययिता के संबंध में दबाव डाला है।" केन्द्रीय सरकार के विभागों को सर्वप्रथम अपने व्यय के औचित्य को सिद्ध करने के लिए बाध्य किया गया। लेकिन यह निकाय वास्तव में संसदीय समिति नहीं थी। वित्त सदस्य ही इसका सभापति होता था, और वित्त विभाग ही समिति के सचिवालय की व्यवस्था करता था।

1950 में संविधान लागू होने के साथ ही इस समिति में से सरकारी तत्व हट गये हैं, और यह समिति सच्ची संसदीय समिति बन गयी है। आरम्भ में इसमें 15 सदस्य थे जो सब लोकसभा के ही सदस्य होते थे। 1953 में इसके सदस्यों की संख्या बढ़कर 22 हो गयी। यह वृद्धि राज्यसभा को प्रतिनिधित्व देने के लिए की गयी थी। इस समिति में उच्च सदन के सदस्यों का समिलित किया जाना ब्रिटिश परम्परा के विपरीत है, क्योंकि वहां लोक लेखा समिति में लॉर्ड सभा का कोई सदरय नहीं होता। संविधान के अनुच्छेद 151 के अन्तर्गत लोक लेखा तथा लेखा परीक्षा संबंधी प्रतिवेदन संसद के दोनों ही सदनों के समक्ष रखे जाते हैं। इस प्रकार, लोकसभा के ही ढंग पर राज्यसभा को भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह लोक लेखाओं के परीक्षण के लिए अपनी निजी लोक लेखा समिति गठित कर ले। लोक लेखा समिति संसद का ऐसा निकाय है जो प्रति वर्ष निर्वाचित किया जाता है। इसका निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत (single transferable vote) द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है, जिससे समिति में मुख्य राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके और उसके सदरयों की संख्या संसद में उनकी अपनी राजनीतिक दलीय शक्ति के अनुपात में हो। समिति का सभापति 1967 तक शासक दल का होता था। यह ब्रिटिश प्रणाली के विरुद्ध था। ब्रिटेन में विरोधी दल का कोई प्रतिष्ठित सदस्य इस स्थान को ग्रहण करता है। भारतीय संसद के विरोधी दल को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। भारत में विरोधी दलों को इस अधिकार के अभाव का कारण यह है कि यहां स्पष्ट विरोधी दल का अभाव है। 1969 से यह परम्परा पड़ी है कि विरोधी दल का ही कोई नेता लोक लेखा समिति का सभापति होता है। एम.आर. मसानी विरोधी दल का प्रथम नेता थे जो इस समिति के सभापति मनोनीत किये गये थे। लेकिन दो अवसरों पर है। केवल विरोधी दल के सदस्य अध्यक्ष चुने गये हैं। समिति के निम्नलिखित

कार्य हैं :– इसके संबंध में समिति को पूर्णतः संतुष्ट कर लेना चाहिए :

(क) लेखाओं में जिन राशियों का भुगतान दिखाया गया है वे राशियां उस सेवा या प्रयोजन हेतु, जिसमें उनका प्रयोग किया गया है या जिसके लिए वे प्रभूत की गयी हैं, वैध रूप से प्राप्य या प्रयुक्त की जा सकने योग्य थीं;

(ख) व्यय नियंत्रण करने वाली सत्ता के अनुरूप है; तथा

(ग) प्रत्येक पुनर्विनियोजन (reappropriation) का अधिकार उचित सत्ता द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार है या नहीं?

लोक लेखा समिति के निम्नलिखित कर्तव्य हैं :

(क) लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन के संदर्भ में उन सभी लेखा विवरणों का परीक्षण करना जिसमें राज्य उपक्रमों, व्यापार तथा निर्माण करने वाली योजनाओं तथा परियोजनाओं की आय तथा व्यय का उल्लेख किया गया हो। साथ ही, उनके ऐसे संतुलन–विवरणों (balance sheets), लाभ के विवरणों तथा हानि के लेखों का भी निरीक्षण कराना जिन्हें तैयार करना राष्ट्रपति आवश्यक समझते हों या तो किसी विशेष उपक्रम, व्यापारिक संस्था या परियोजना की वित्त–व्यवस्था को विनियमित करने वाले सांविधिक नियमों के प्रावधानों के अन्तर्गत बनाये गये हों।

(ख) उन स्वायत तथा अर्द्ध–स्वायत निकायों के आय–व्यय के लेखा विवरणों की परीक्षा करना जिनका लेखा–परीक्षण भारत के लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक द्वारा या राष्ट्रपति के निर्देशों या संसद द्वारा पारित किसी नियम के अन्तर्गत करना संभव हुआ हो।

(ग) लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन पर अवस्था में विचार करना, जब राष्ट्रपति ने किन्हीं प्राप्तियों की लेखा परीक्षा करने या भंडारों तथा स्कान्धों (Stocks) के लेखाओं का परीक्षण करने की आज्ञा दी हो। लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन को आधार मानकर समिति इन कार्यों को सम्पन्न करती है। एक मंत्रालय के पश्चात् दूसरे मंत्रालय के प्रतिवेदनों की जाँच की जाती है, और सचिवगण लेखा परीक्षण में उठाये गये प्रश्नों को स्पष्ट करने हेतु साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए बाध्य होते हैं। इस प्रकार समिति स्वयं अपने निष्कर्ष तक पहुंचने तथा अपनी सिफारिशों को अन्तिम रूप देने की क्षमता रखती है। लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक की सेवाएं लोक लेखा समिति को स्थायी रूप से प्राप्त रहती हैं। वस्तुतः यह अधिकारी तो इस समिति का सच्चा मार्गदर्शक है। वह परीक्षण की रूपरेखा प्रस्तावित करता है। वह उन प्रश्नों को भी सुलझाता है जिनकी सरकारी साक्षियों–सचिवों से स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है। सचमुच, उसके तथा समिति के पारस्परिक सच निकटतम तथा घनिष्टतम होते हैं। वस्तुतः वह समिति की कार्य करने वाली भुजा है। यह उसका मार्गदर्शक, दार्शनिक तथा मित्र है। वह तथा समिति आवश्यक रूप से पूरक–कार्य सम्पन्न करते हैं। अशोक चन्दा ने जो भारत के लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक रहे थे, यह कहा कि "समिति की प्रभावशीलता उस पूर्णता पर आधारित होती है जिस पूर्णता के साथ लेखा–परीक्षक का कार्य संचालित किया गया है। इसी प्रकार, लेखा–परीक्षण की आलोचना का मूल्य उस समर्थन पर निर्भर करता है जो समिति से प्राप्त होता है। इन दोनों प्राधिकारियों के कार्य ही परस्पर संबंधित नहीं होते बल्कि उनके संबंध कुछ मात्रा में अन्योन्याश्रित भी होते हैं।"

समिति यह पता लगाने के लिए कि संसद द्वारा स्वीकृत धन सरकार द्वारा उसी मद में उपयोग किया गया है, लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन की जाँच करती है। 'मांग के क्षेत्राधीन' (within the scope of the demand) वाक्यांश का अर्थ निम्नवत् है :

(क) सार्वजनिक व्यय संसदीय पूर्वानुमोदन के अभाव में संसद द्वारा स्वीकृत विनियोजनों से अधिक नहीं होना चाहिए।

(ख) किसी मांग के अन्तर्गत जिन वस्तुओं पर व्यय किया गया है, उन्हें औचित्यपूर्ण होना चाहिए। (ग) अनुदान उसी प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए जिसके लिए संसद द्वारा उसका अनुमोदन किया गया हो।

समिति इस बात की भी समीक्षा करती है कि अनुमान किस प्रकार बनाये जाते हैं जिससे "मतों की संख्या कम करने की प्रवृत्ति को रोका जा सके या बड़ी धनराशि के प्रावधानों को समिलित किया जा सके; क्योंकि यह माना जाता है कि इस प्रकार के अनुमानों पर संसदीय नियंत्रण कम हो जाता है।" समिति लेखे की भी जाँच करती है ताकि विभाग के अतिव्यय पर नियंत्रण किया जा सके।

यह समिति व्यक्तियों, कागजों तथा अभिलेखों को तलब कर सकती है, और इसके निष्कर्ष प्रतिवेदन के रूप में संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण हेतु समिति आजकल अध्ययन समूहों का गठन भी करती है। इनका संबंध प्रतिरक्षा, रेलवे आदि विशिष्ट विभागों से होता है। ये अध्ययन समूह अपना प्रतिवेदन समिति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। समिति के अर्थ को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लेखा–नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक अन्तरिम प्रतिवेदन भी देता है। समिति उन पर विचार करती है। सदन के समक्ष प्रस्तुत अन्तिम प्रतिवेदन के संदर्भ में ही वह सरकार के समक्ष अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती है। समिति के कार्य की यह कहकर आलोचना की जाती है कि जब तक समिति सार्वजनिक लेखाओं की पुनरीक्षा करती है, मामले पुराने पड़ जाते हैं। उक्त व्यवस्था इस आलोचना को निस्सार कर देती है। समिति की सिफारिशों की अधिसमय या परम्परा के कारण सरकार द्वारा स्वीकार किया जाता है। फिर भी, यदि सरकार समझती है कि अमुक सिफारिश किन्हीं कारणों से स्वीकार नहीं है तो वह उस सिफारिश के पुनर्विचार के लिए प्रार्थना कर सकती है। इस प्रकार बहुत से मामले आपसी चर्चा तथा विचारों के आदान–प्रदान से तय हो जाते हैं।

लोक लेखा समिति का संबंध ऐसे लेन–देनों तथा हानियों से होता है जो हो चुके होते हैं। यह लोक लेखाओं की शव–परीक्षा (Post-mortem) के समान है। फिर भी समिति के प्रतिवेदन मार्गदर्शन तथा चेतावनी के रूप में महत्व रखते हैं। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष के शब्दों में, "यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो इस बात की जाँच या समीक्षा करेगा कि क्या किया गया है, तथा यह कार्यपालिका के शैथिल्य या लापरवाही पर बहुत बड़ा प्रतिबंध लगाती है। यह परीक्षण यदि उचित ढंग से किया जाये तो प्रशासन में सामान्य क्षमता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। समिति की जाँच भावी अनुमानों तथा भावी नीतियों दोनों के लिए ही मार्गदर्शक के रूप में योग देती है।" यह स्मरणीय है कि लोक लेखा समिति निष्पादकीय निकाय नहीं है क्योंकि इसे कोई निष्पादकीय अधिकार नहीं दिये गये हैं। इसका कार्य केवल लोक–व्यय की पुनरीक्षा तक ही सीमित है। यह सामान्य आशा है कि समिति सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण के लिए एक प्रभावशाली शक्ति सिद्ध होगी।

लोक लेखा समिति का स्वरूप तथा बनावट

भारतीय लोक लेखा समिति वस्तुतः एक संसदीय समिति कही जा सकती है। यह लोक सभा के अध्यक्ष के मार्गदर्शन में कार्य करती है तथा लोकसभा में कार्य करती है तथा लोक सभा में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व के अनुपात में ही इस समिति में विभिन्न राजनीतिक दलों से सदस्यों का चयन किया जाता है। इस समिति के अध्यक्ष का मनोनयन लोकसभा अध्यक्ष द्वारा किया जाता है तथा लोक सभा सचिवालय इस समिति के कार्यालय की भूमिका अदा करता है। संसदीय कार्यवाही तथा प्रक्रिया नियम 143 में किए गये 4 मई, 1951 के संशोधन के अन्तर्गत लोक लेखा समिति के स्वरूप तथा बनावट को निरूपित करने के लिए निम्न प्रावधान किए गये हैं :

(1) संसद द्वारा पारित विनियोजनों से संबंधित लेखों की जाँच के लिए एक लोक लेखा समिति होगी जिसमें 15 सदस्य होंगे। समिति के सदस्यों का संसद द्वारा प्रति वर्ष अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल परिवर्तनीय मत प्रणाली (Single Transferable Vote System) की सहायता से चयन किया जाता है।

(2) यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण अनुपस्थित रहे तो स्वयं समिति अपने में से किसी सदस्य को अध्यक्ष नियुक्त कर सकती है।

(3) समिति का कार्यकाल एक वर्ष का होगा तथा इसमें जो रिक्त स्थान होते जायेंगे उनकी पूर्ति उपर्युक्त मतदान पद्धति से निरन्तर रूप से की जाती है। नव–निर्वाचित सदस्य तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक उनका पूर्ववर्ती (person in whose place the is elected) इस पद पर बना रहेगा।

(4) कार्यवाही संचालन के लिए समिति की बैठक में कम से कम चार सदस्य उपस्थित होने चाहिएं। सदस्यों में से ही लोक सभा अध्यक्ष द्वारा किसी को समिति का मुखिया (Chairman) मनोनीत किया जाता है, पर यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष ही समिति का सदस्य चुना जाता है तो फिर वही लोक लेखा समिति (P.A.C.) का अध्यक्ष नियुक्त किया जायेगा।

(5) किसी विषय पर मतदान हो और यदि बराबर मत पड़े तो निर्णय करने के लिए समिति के मुखिया को दुबारा मत देने (Casting Vote or Second Vote) का अधिकार प्राप्त होता है।

लोक लेखा समिति का पुनर्गठन

1953 में भारतीय राज्यसभा (Upper House) की नियम समिति (Rule Committee) ने अपने अध्यक्ष से लोक लेखा समिति में राज्य सभा के सदस्यों को भी मनोनीत करने की सिफारिश की, ताकि पी.ए.सी. एक संयुक्त समिति के रूप में कार्य कर सके। लोक सभा ने 23 फरवरी, 1953 को इस प्रस्ताव को एक मत से अस्वीकार कर दिया। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने दोनों सदनों के बीच बढ़ती कटुता को रोकने हेतु लोक सभा में स्वयं एक प्रस्ताव रखकर राज्य सभा से लोक लेखा समिति के लिए सात सदस्य मनोनीत करने का अनुरोध प्रस्ताव 12 मई, 1953 को पास करवा लिया। 1954 से लोक लेखा समिति में कुल 22 सदस्य होते हैं जिनमें से 15 लोक सभा से तथा 7 राज्य सभा से चुने जाते हैं।

लोकसभा में भारी बहस के समय सदस्यों ने इस परिवर्तन को लोक सभा के वित्तीय अधिकारों पर राज्य सभा का हस्तक्षेप करार दिया था। अपनी इस भावना के अनुरूप लोक सभा इसे दोनों सदनों की संयुक्त समिति मानने को तैयार नहीं थी। ऐसी स्थिति में तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष मावलंकर ने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा था कि, "यह संयुक्त समिति नहीं है। यह लोक सभा अध्यक्ष के नियंत्रण में लोक सभा समिति है। जहां पर विचार–विमर्श तथा मतदान का सवाल है उनका भी वही सम्माननीय स्थान (Status) होगा, वे भी तो आखिर सदस्य हैं। केवल यही अन्तर होगा कि वे लोक लेखा समिति के सदस्य के रूप में काम करेंगे तो वे लोक सभा अध्यक्ष के नियंत्रण में कार्य करेंगे।"

इस स्पष्टीकरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोक लेखा समिति अपने वर्तमान स्वरूप में भी एक संयुक्त समिति के रूप में कार्य नहीं करती। इसके अलावा एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 1967 तक इस समिति का अध्यक्ष शासक दल का ही कोई सदस्य हुआ करता था, जबकि ब्रिटिश परम्परा में विरोधी दल का कोई सम्माननीय सदस्य लोक लेखा समिति का अध्यक्ष हुआ करता है।

भारत में इस परम्परा का निर्वाह न होने का एक प्रमुख कारण हमारे देश में किसी स्पष्ट मान्यता प्राप्त विरोधी दल का अभाव माना जा सकता है। सन् 1969 में प्रथम बार श्री मीनू मसानी विरोधी दल के नेता बने तो उन्हें लोक लेखा समिति का अध्यक्ष भी मनोनीत कर लिया गया और इसके साथ एक स्वस्थ परम्परा की शुरूआत हमारे देश के संसदीय इतिहास में हुई ऐसा कहा जा सकता है। समिति के चुनाव प्रतिवर्ष होते हैं जबकि इसका द्वि–वार्षिक कार्यकाल होता है। इसी कारण हर समय इस समिति में कुछ अनुभवी सदस्य बने रहते हैं। फलतः समिति के अध्यक्ष के प्रभावशाली मार्गदर्शन में अधिक तत्परता, कुशलता तथा पार्टी हितों से परे हटकर यह समिति अपना कार्य करती है।

लोक लेखा समिति के अधिकार तथा कर्तव्य

(Functions and Duties of Public Accounts Committee)

लोक लेखा समिति के कार्यों की शुरूआत भारत के महालेखापरीक्षक (CAG) के प्रतिवेदन को प्राप्त करने के साथ होती है। प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात समिति की अनौपचारिक बैठक में महालेखापरीक्षक समिति को अपने प्रतिवेदन में उठाये गये मुख्य मुद्दों की पृष्ठभूमि तथा इनमें अन्तर्निहित गंभीर अनियमितताओं बाबत पूरी जानकारी देता है। यह समिति को विचारणीय बिन्दुओं की संक्षिप्त सूची बनाने तथा विभागों एवं मंत्रालयों के अधिकारियों के स्पष्टीकरण चाहने के लिए संभावित तर्क श्रृंखला के संदर्भ में भी अपनी राय बतलाता है। स्वयं ए.जी. अथवा उसका प्रतिनिधि समिति की बैठक के समय उपस्थित रहता है जब समिति द्वारा विभागीय अधिकारियों से सवाब तलब किया जाता है। भारतीय संसदीय कार्यवाही नियम 143 के तहत महालेखापरीक्षक से प्राप्त जानकारी की पृष्ठभूमि में लोक लेखा समिति के कार्यों को निम्नवत् निरूपित किया गया है :

(1) भारत सरकार के विनियोजन लेखों का सूक्ष्म निरीक्षण करना;

(2) क्या व्यय उसी अधिकारी द्वारा किया गया है जो उसके लिए अधिकृत है?

(3) लेखों में दिखायी गई राशि को क्या वैध रूप से प्राप्त किया गया है तथा क्या उसे उन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए खर्च किया गया है जिनके लिए संसद ने अपने विनियोजन अधिनियम में स्वीकृति दे रखी है;

इन आधारभूत कार्यों के अलावा लोक लेखा समिति का यह भी कर्तव्य है कि वह,

1. विभिन्न सरकारी निगमों, उत्पादक संस्थानों तथा योजनाओं (Projects) के आय–व्यय के ब्यौरे तथा उनसे संबंधित महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन में दर्शायी टिप्पणियों की जाँच करे;
2. राष्ट्रपति के विशेष निर्देश द्वारा महालेखा परीक्षक की ओर से किसी भण्डार (Stores or Stocks) की जाँच के लिए तैयार किए गये प्रतिवेदन पर विचार करना तथा
3. संसद अथवा राष्ट्रपति के आदेशों के अनुसार किसी स्वतंत्र निकाय अथवा निगम (Autonomous Bureau of Corporation) के लेखों के लिए महालेखापरीक्षक द्वारा तैयार अंकेक्षण प्रतिवेदनों की पृष्ठभूमि में इन इकाइयों के आय–व्यय लेखों की जाँच करना।

इन कर्तव्यों के निर्वाह के अलावा नियम संख्या 308(4) के अन्तर्गत समिति को किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि से किसी वित्तीय वर्ष में अधिक राशि खर्च किए जाने की स्थिति की जाँच की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी है। नियमों में यह प्रावधान है कि समिति किसी भी ऐसे लेखों की जाँच कर सकती है जो संसद के समक्ष प्रस्तुत किए गए हों। इस व्यवस्था के कारण समिति का कार्य–क्षेत्र काफी व्यापक हो जाता है फलतः वह राज्य निगमों दामोदर घाटी निगम, बन्दरगाह, न्यास, चाय बोर्ड, केन्द्रीय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शोध संस्थान जैसी संस्थाओं के लेखों की जाँच कार्य कर अपना मन्तव्य सदन के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है।

समिति प्रत्येक लेखे पर विचार करते समय विभागीय अधिकारियों से स्पष्टीकरण मांगती है, यदि उसे कहीं अपव्यय अथवा हानि दिखायी दे और इसी दौरान वह प्रशासनिक संयंत्र के कार्य–संचालन राति की समीक्षा करके सुधार के आवश्यक सुझाव भी देती है। यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि पी.ए.सी. प्रत्येक मंत्रालय अथवा विभाग के लेखों की जाँच करती है। नीति संबंधी परामर्श मुद्दों पर यह अपनी राय नहीं देती। सन् 1959 में रेलवे बोर्ड ने समिति से नीति संबंधी परामर्श चाहा या तो पी.ए.सी. के अध्यक्ष ने जवाब दिया कि, "हम नीति निर्धारक संस्था नहीं है। हम केवल लेसों की जाँच करने वाली संस्था हैं... नीति निर्णय तो सरकारी स्तर पर ही लिए जाने चाहिए।" अध्यक्ष के इस मन्तव्य से स्पष्ट होता है कि लोक लेखा समिति अपने अधिकार–क्षेत्र में रहकर कार्य करना अधिक तर्कसंगत मानती है, ताकि उसके लिए दलीय हितों के ऊपर उठकर कार्य करना संभव हो सके।

लोक लेखा समिति की कार्य प्रक्रिया

अपने गठन के पश्चात् समिति अपनी कार्यवाही की रूपरेखा तैयार कर सभी मंत्रालयों को तथा विभागों को सूचित कर देती है, ताकि उनके प्रतिनिधि नियत तिथि को समिति तथा महालेखा परीक्षक के समक्ष अपना स्पष्टीकरण देने को पूर्ण तैयारी के साथ उपस्थित हो सकें। आवश्यकतानुसार लोक लेखा समिति अपने को छोटे–छोटे कार्य समूहों में विभाजित करके अलग–अलग विभागों के लेखों की जाँच व निरीक्षण का कार्य भी करती है। लेकिन विभागीय अधिकारियों की सुनवाई किसी अलग कार्य दल द्वारा नहीं की जा सकती है। यह तो कार्यदल द्वारा तैयार प्रतिवेदन के परिप्रेक्ष्य में पूरी समिति के समक्ष ही होती है। आवश्यकता पड़ने पर समिति अपने सदस्यों के एक छोटे से अध्ययन दल को किसी योजना (Project) अथवा निगम के मौके पर निरीक्षण के लिए भेज सकती है। समिति को यह पूरा अधिकार है कि वह अपनी जाँच से संबंधित किसी दस्तावेज अथवा परिपत्र को मंगवाये अथवा किसी व्यक्ति को बुलवाये (यदि राष्ट्रीय सुरक्षा को इससे कोई खतरा उत्पन्न न हो।)

संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था में लोक लेखा समिति एक ऐसा मंच है जहां सरकारी अधिकारी तथा लोक प्रतिनिधि आमने–सामने बैठकर विचार–विमर्श करते हैं तथा सचिव स्तर के अधिकारियों को विभिन्न राजनीतिक दलों के यदा–कदा गुस्सैल सदस्यों के प्रश्नों के विनम्रता से उत्तर देने की अग्नि परीक्षा से गुजरना होता है। यदि वे अपने स्पष्टीकरण से समिति को संतुष्ट नहीं कर पाते हैं तो हार कर यह आश्वासन देना पड़ता है कि भविष्य में लोक व्यय में अपव्यय अथवा ऐसी किसी भी त्रुटि को टालने का प्रयास किया जाएगा। इस मौखिक स्पष्टीकरणों के साथ लिखित स्पष्टीकरण भी लिए जाते हैं तथा समिति की पूरी कार्यवाही का ब्यौरा शब्दशः रखा जाता है।

लोक लेखा समिति द्वारा कार्य निष्पादन समीक्षा

लोक लेखा समिति ने अर्थ–व्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों तथा सरकार की विभिन्न योजनाओं ओर संगठनों के बारे में सर्वांगीण कार्य निष्पादन परीक्षा की है। इसने इस बात पर भी ध्यान दिया है कि क्या सरकार द्वारा आरम्भ की गयी विभिन्न योजनाओं और परियोजनाओं से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हुए हैं अथवा नहीं। लोक लेखा समिति का कार्य न केवल वित्तीय अनियमितताओं को प्रकट करना है बल्कि 'समग्र सामग्री निवेश' (इन–पुट) और उससे प्राप्त 'उत्पादन' में उचित समन्वय होने या न होने को भी प्रकाश में लाना है। समिति ने उक्त चुनौतीपूर्ण कार्य को बहुत हद तक पूरा किया है। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1966–67 में समिति ने रेलवे के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन योजना लक्ष्यों के संदर्भ में किया और यह टिप्पणी की है कि सरकार द्वारा अपनायी गयी नीति और तरीके दोषपूर्ण और अवास्तविक थे और उनमें पूंजी निवेश आवश्कता से अधिक किया गया जिसका अर्थ–व्यवस्था के अन्य आवश्यक क्षेत्रों पर दुष्प्रभाव पड़ा। इसकी समीक्षा की गयी और परिणामतः चौथी पंचवर्षीय योजना में रेलवे के लिए कुल परिव्यय 1,525 करोड़ रूपये से घटाकर 1,275 करोड़ रूपए कर दिया गया।

लोक लेखा समिति के कार्यों का मूल्यांकन

(Role of Public Accounts Committee : An Estimate)

लोक लेखा समिति ने अपनी सिफारिशों को लागू कराने बाबत प्रक्रिया को नियमबद्ध कर रखा है। आन्तरिक कार्य नियम 27 में कहा गया है कि, "लोक सभा सचिवालय की लोक लेखा समिति शाखा द्वारा एक पूर्ण विवरण (Up-to-date Statement) रखा जाएगा जिसमें लोक लेखा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों द्वारा उठाये गये अथवा संभावित कदमों का ब्यौरा हो... तथा कमेटी की अगली बैठक के कम से कम एक सप्ताह पूर्व सभी सदस्यों में वितरित करने की व्यवस्था करें।" यद्यपि सरकार के लिए समिति की हर सिफारिश मानना अनिवार्य नहीं है किन्तु व्यवहार में सरकार ऐसा प्रयास करती है कि समिति की अधिकाधिक सिफारिशों का क्रियान्वित करे। मोटे तौर पर समिति की सिफारिशें तीन शीर्षों में विभाजित की जा सकती है :

1. प्रशासनिक मामलों में लोक लेखा समिति की सिफारिशें – प्रशासकों के अधिकार तथा उन्हें उपयोग करने की स्वतंत्रता एवं नियमों की अवमानना से होने वाली आर्थिक क्षति के लिए जिम्मेदार अधिकारियों को दंडित

करने से संबंधित अनेक अनुशंसाएं (Recommendations) लोक लेखा समिति द्वारा अपने विभिन्न प्रतिवेदनों में की गयी हैं।

2. वित्तीय प्रशासन से संबंधित मुद्दों पर सुझाव देना – जैसे समय पर लेखा तथा प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, बजट तथा अति–व्यय (Over expenditure) पर नियंत्रण, बिना संसदीय स्वीकृति के वित्तीय वर्ष में नयी योजनाएं प्रारम्भ करने की परिपाटी, समय–समय पर विभिन्न विभागों तथा लेखा–अधिकारियों द्वारा तैयार किए गये लेखों में समन्वय, बिना अनुमान किए योजनाओं पर व्यय करने की प्रवृत्ति, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदानों में अनियमितता, योजना प्रावधानों के अनुरूप विभिन्न योजनाएं पूरी न हो पाना, अंकेक्षण व्यवस्था का विस्तार कर आन्तरिक तथा प्रशासनिक अंकेक्षण प्रारम्भ करना, आदि मामलों पर समिति अपने सुझाव देती रहती है।
3. अन्य सामान्य मामलों में समिति सरकार के विभिन्न ठेकेदारी शर्तों, भण्डारण (Stores), कार्यशालाओं (Workshops) तथा सुरक्षा कारखानों में पायी जाने वाली अनियमितताओं की ओर भी सरकार का ध्यान आकर्षित करती रही है।

लोक लेखा समिति की छानबीन का सम्बन्ध पूर्ण हुये लेन–देन तथा की गयी हानि से होता है। यह लोक लेखाओं की शव–परीक्षा जैसी करता है। तथापि, समिति जो कुछ पाती है वह मार्गदर्शन तथा चेतावनी के रूप में मूल्य रखता है। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष के शब्दों में, "यही मालूम होता है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो इस बात की परिनिरीक्षा करेगा कि क्या किया गया है, कार्यपालिका की ढील–ढाल या लापरवाही पर एक बहुत बड़ी रोक लगाती है। वह परीक्षा, यदि उचित रीति से कार्यान्वित की जाये तो प्रशासन को सामान्य कुशलता के मार्ग पर ले जाती है। समिति की जाँच भावी अनुमानों तथा भावी नीतियों – दोनों के लिए मार्गदर्शन के रूप में लाभकारी हो सकती है।" यह स्मरण रखना उचित होगा कि लोक लेखा समिति कोई निष्पादकीय निकाय नहीं है। इसे कोई निष्पादकीय अधिकार नहीं दिये गये हैं और इसका कार्य केवल लोक व्यय की परिनिरीक्षा तक ही सीमित है। यह आशा की जा सकती है कि समिति सार्वजनिक व्यय के नियंत्रण के कार्य में एक प्रभावशाली शक्ति सिद्ध होगी। फिर भी सरकारी उपेक्षा की नियमित पुनरावृत्ति एवं परिवर्तनशीलता यह सुझाते हैं कि लोक लेखा समिति के विचार–विवेचनों का मूल्य सीमित ही है। आस्टिन चेम्बरलेन के अनुसार, "यह न्यायधीशों की एक समिति है, जो अपने कार्य के समय सभी दलीय विचारधाराओं को एक ओर रख देती है।"

(C) लोक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings)

संसद की तीन प्रमुख समितियों में से लोक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings) एक है। यह समिति 1 मई, 1964 को अस्तित्व में आई। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं जिसमें से 15 लोकसभा से तथा 7 सदस्य राज्य सभा के होते हैं। इस समिति के अन्य सदस्यों का चयन आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है।

अवधि (**Tenure**) – इस समिति की अवधि पांच वर्ष होती है। प्रति वर्ष कुल सदस्यों का 1/5 भाग क्रम से अवकाश ग्रहण करता है।

कार्य (**Functions**) – समिति के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

(1) ऐसे लोक उपक्रमों के खातों और प्रतिवेदनों (Reports) की जाँच करना जिन्हें इस उद्देश्य के लिए समिति को आवंटित किया है।

(2) नियंत्रक और महालेखाकार ने लोक उपक्रमों पर यदि कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है उसकी जाँच करना।

(3) लोक उपक्रमों की स्वायत्तता और क्षमता के संदर्भ में यह जाँच करना कि क्या लोक उपक्रमों का प्रबंध व्यवसायिक नियमों और वाणिज्यिक व्यवहारों के अनुरूप किया जा रहा है।

(4) इस कार्य को स्पीकर द्वारा समय–समय पर लोक लेखा समिति व अनुमान समिति की भाँति लोक उपक्रमों से संबंधित अन्य पक्षों व कार्यों की जाँच का कार्य सौंपना।

सीमाएं (Limitations) – लोक उपक्रम समिति निम्नलिखित पक्षों में अपना दखल नहीं दे सकतीः

(1) लोक उपक्रमों के व्यावसायिक कार्यों से अलग प्रमुख सरकारी नीतियों के संबंध में;

(2) रोजमर्रा के प्रशासनिक मामलों में; तथा

(3) जिस विशिष्ट धारा या उपबंध (Statute) के अधीन कोई विशिष्ट लोक उपक्रम स्थापित हुआ है उस उपक्रम से संबंधित मामले में।

किसी भी अन्य संसदीय समिति की भांति यह समिति किसी भी लोक उपक्रम अथवा मंत्रालय से सूचना प्राप्त करने का अधिकार रखती है। यह समिति लोक उपक्रमों से संबंधित अधिकारियों को अपने सम्मुख उपस्थित होकर लोक उपक्रमों की जाँच से संबंधित प्रमाण प्रस्तुत करने का आदेश दे सकती है। यह समिति संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के प्रमाणों की भी जाँच कर सकती है। लोक उपक्रमों की एक समिति द्वारा सामान्यतया जो जाँच की जाती है, उसमें उपक्रम के निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है। उसमें उपक्रम के सभी पक्षों जैसे नीतियों, कार्यक्रमों, प्रबन्ध, वित्तीय–कार्यप्रणाली आदि के क्रियान्वयन को शामिल किया जाता है।

समिति की कार्य प्रणाली

(Working of the Committee)

समिति ने अपना प्रथम प्रतिवेदन (Report) अप्रैल 1965 में निकाला और तभी से यह कई प्रतिवेदनों को प्रकाशित कर चुकी है। 5वीं व 6वीं लोकसभा के दौरान इस समिति ने क्रमशः 87 व 16 प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। इनमें से जो आधे प्रतिवेदन प्रकाशित हुए वह पहले सुझावों पर सरकार द्वारा उठाये गए कदमों से संबंधित थे। इस समिति को सत्य–अन्वेषक समिति (Fact-Finding Committee) माना जाता है और इस समिति का कार्य आवश्यक रूप से लोक उपक्रमों की कार्य प्रणाली पर होने वाले वार्षिक विवादों में संसद की सहायता करना है। अतः इस समिति का संबंध लोक उपक्रमों की कार्यप्रणाली से होता है।

जहां तक अनुमान समिति और लोक उपक्रम समिति का संबंध है अध्ययन समूह ने यह सुझाव दिया है कि बजट कार्यक्रम के निष्पादन की समीक्षा का कार्य एक समिति, जिसे निष्पादन समिति (Performance Committee) का नाम दिया जा सकता है, द्वारा ज्यादा अच्छी प्रकार किया जा सकता है। अतः अनुमान समिति और लोक उपक्रम समिति का निष्पादन समिति से प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। निष्पादन समिति के दो खंड होने चाहिएं। इस संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग (Administrative Reform Committee) के सुझाव को माना नहीं गया है और स्थिति को यथावत् रखा गया है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. जी॰एस॰ लाल, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, 1969
2. आर॰एन॰ अग्रवाल, फाईनन्शियल केमिरिज ऑफ दी पार्लियामेन्टः ए स्ट्डी ऑफ पार्लियामेन्ट कन्ट्रोल ओवर पब्लिक एक्सपेंडीचर, 1966

कुछ संभावित प्रश्न

- भारत की अनुमान समिति दुनिया की सबसे अधिक शक्तिशाली समिति है, वर्णन करो।
- सार्वजनिक लेखा समिति सी॰ए॰जी॰ की दोस्त, दार्शनिक एवं गाईड है, वर्णन करो।
- सार्वजनिक उद्यम समिति को अनुमान समिति तथा सार्वजनिक लेखा समिति के कार्य निभाने पड़ते हैं, वर्णन करो।

Unit-III

अध्याय–9 (Chapter-9)

इकाई – भारत के लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक

(Comptroller and Auditor General of India)

रूपरेखा :–

– उद्‌गम

– सांगठनिक ढांचा

– 1971 के अधिनियम के तहत कार्य तथा शक्तियां सीमाएं

– सारांश

– कुछ उपयोगी पुस्तकें

– कुछ संभावित प्रश्न

♦♦♦

अध्याय–9

लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक

(Comptroller and Auditor & General of India)

वित्तीय नियन्त्रण को लागू करना व्यवस्थापिका का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। सरकारी व्ययों पर संसदीय नियन्त्रण दो स्तरों पर लगाया जाता है : प्रथम नीति निर्माण के समय पर, तत्पश्चात् नीति कार्यान्वयन के नियन्त्रण के समय पर लागू होता है। बजट या वार्षिक वित्तीय विवरण जो कि अनुमानित प्राप्तियों एवं आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के व्ययों को प्रदर्शित करता है, को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है एवं उस पर बहस होती है। प्रारम्भिक संसदीय वित्त नियन्त्रण आगामी वर्ष के लिए सरकार के वार्षिक बजट अनुमानों द्वारा किया जाता है जिसे संसद के समक्ष सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। नीतियों के कार्यान्वयन पर नियन्त्रण के दूसरे स्तर का प्रयोग संसद/व्यवस्थापिका द्वारा मंजूर किये गए धनराशियों का उपयोग सही उद्देश्य के लिए किया गया है या नहीं, तथा संसद/व्यवस्थापिका के इच्छानुसार उपयोग हुआ है या नहीं इन चीजों के विश्लेषण के द्वारा करती है। संसद और राज्य विधान मण्डलों में नियन्त्रण एवं महालेखा परीक्षक संसद तथा राज्य विधान मण्डलों की सहायता करता है। लेखा परीक्षण केन्द्र एवं राज्यों की व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका का वित्तीय उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने का महत्वपूर्ण साधन है। संविधान के द्वारा लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को केन्द्र, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के लेन–देन (transactions) का लेखा परीक्षण करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। इस इकाई में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के पदों की उत्पत्ति, संवैधानिक स्थिति तथा लेखों एवं लेखा परीक्षण से सम्बन्धित उसकी शक्तियों एवं कर्तव्यों परीक्षक की भूमिका का मूल्यांकन भी किया जायेगा।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

वित्त, लेखा एवं लेखा परीक्षण इतने पुराने हैं जितना कि स्वयं इतिहास। इतिहास साक्षी है कि अच्छे लेखा एवं लेखा परीक्षण संगठन का अस्तित्व प्राचीन भारत में भी था। कौटिल्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अर्थशास्त्र" में मौर्याकाल में प्रचलित लेखांकन व्यवस्था का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। अर्थशास्त्र के अनुसार, "मौर्यनीति में वित्त के मामलों में अन्तिम प्राधिकार राजा का ही था जिसका कर्तव्य था कि प्राप्तियों एवं व्ययों के लेखों को देखें। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग की आर्थिक व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था और प्रत्येक विभाग का अपना एक लेखाकार, खजांची एवं अन्य कर्मचारी होते थे। वित्त विभाग का अध्यक्ष कलेक्टर जनरल होता था। उसके नीचे प्रदेश स्तर पर विशेष आयुक्त होता था जो कि एक प्रकार का महालेखा परीक्षक होता था जिसका कार्य था जिला एवं ग्राम समूह के लेखों का निरीक्षण करना तथा साथ ही कुछ तरह के राजस्वों को एकत्रित करने का कार्य भी करना था। लेखांकन एवं वित्त वर्ष आषाढ़ के अन्तिम दिनों में समाप्त होता था।

इसी तरह से गुप्त शासकों ने भी अपने शासन काल में लेखा एवं लेखा परीक्षण की अधिक विस्तृत एवं व्यवस्थित योजना की शुरूआत की थी। रामचन्द्र दीक्षित के भी अनुसार "अपने पूर्ववर्ती मोर्चा के काल के समय भी लेखा पूरी तरह व्यवस्थित होता था तथा उसकी समय–समय पर लेखा परीक्षण होता था एवं उसे संस्तुति के लिए रखा जाता था। यह हमें पत्युपीरिकीट (Patyupirikit) शब्द से स्पष्ट होता है। व हद रूप में जिसका अनुवाद आधुनिक "महालेखापाल" से किया जा सकता है। महालेखापाल जो लेखा विभाग की अध्यक्षता करता है अपने कार्य

के लिए मन्त्रिपरिषद के प्रति उत्तरदायी था। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त काल में लेखाओं का विस्तृत विभाग था।" इसी तरह से मध्यकालीन शासकों में सुल्तानों एवं मुगलों ने राजस्व संग्रह एवं लेखा परीक्षा पर अत्यधिक जोर दिया। मुगलों ने वित्त अधिकारी (Vasir, Dewan) को "वजीर" या "दिवान" का नाम देकर उसे अत्यधिक प्राधिकार प्रदान किया था।

यद्यपि प्राचीन एवं मध्य शासन कालों में एक सम्बद्ध लेखा एवं लेखा परीक्षण संगठन की स्थापना की गयी थी लेकिन बाद के मुगल कालों में इसका ह्रास हो गया। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने लेखांकन एवं लेखा परीक्षण की उचित व्यवस्था की शुरूआत की। आज हमारे देश में वही व्यवस्था चली आ रही है। सन 1858 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन ब्रिटिश क्राउन ने अपने हाथों में ले लिया तो भारत में महालेखापाल के एक पूरक पद की स्थापना की गई जो इंग्लैंड में हुए व्ययों के लिए लेखा तैयार करता था। समकाल में, क्राउन द्वारा इन लेखों के परीक्षण के लिए एक स्वतन्त्र लेखा परीक्षक की स्थापना की गयी। यह व्यवस्था हालांकि बहुत दिनों तक नहीं चली। सन 1860 में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के कार्यों को एक ही में सम्मिलित कर दिया गया और यह कार्य महालेखापाल के अधीन कर दिया गया जिसे महालेखा परीक्षक के नाम से जाना जाता है।

महालेखा परीक्षक को संवैधानिक मान्यता संवेधानिक सुधारों के प्रारम्भ के साथ 1919 में मिली। महालेखा परीक्षक को भारत सरकार के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया था तथा उसकी नियुक्ति राज्य सचिव द्वारा की जाती थी। वह भारतीय लेखा परीक्षा विभाग में एक प्रशासकीय अध्यक्ष की तरह कार्य करता था तथा राजा के इच्छा पर्यन्त अपने पद पर बना रहता था। भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन उसके पद के स्तर एवं महत्ता में वृद्धि हई। बाद में उसकी नियुक्ति ब्रिटिश क्राउन के द्वारा होने लगी एवं उसकी सेवा की शर्तें भी राजा की परिषद (Majesty-in-Council) ही निश्चित करती थी। परिषद के आदेशानुसार ही उसके कर्तव्यों एवं शक्ति को निर्धारित किया जाता था। उसके वेतन, भत्ता एवं पेन्शन संघ के राजस्व में से देने की व्यवस्था थी। संघीय न्यायालय के किसी जज को पदच्युत करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही उसे अपने पद से हटाया जा सकता था। भारत शासन अधिनियम 1935 तथा स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के अन्तर्गत महालेखा परीक्षक के प्राधिकार में वृद्धि हुई तथा ब्रिटेन में भारतीय लेखों के लेखा परीक्षकों को उसके प्रशासकीय नियन्त्रण में रखा गया। बाद में रियासतों (Princely States) के भारतीय संघ के संघात्मक ढांचे में एकीकृत होने पर उसके लेखा परीक्षण के उत्तरदायित्व को सम्पूर्ण भारत में बढ़ा दिया गया।

संविधान अधिनियम 1950 ने भारत के महालेखा परीक्षक का नाम बदल कर लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक कर दिया तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के साथ ही उसे भी संविधान के अनुच्छेद के अन्तर्गत यह मान्यता प्रदान की गई कि भारतीय वित्त राज्यों एवं संघ दोनों ही में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधीन रहेगा।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति (Constitutional Position of CAG)

संविधान में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को एक उच्च स्वतन्त्र वैधानिक अधिकारी माना गया है। वह ऐसा अधिकारी है जो व्यवस्थापिका की ओर से यह देखता है कि व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृति धनराशि में वृद्धि या परिवर्तन तो नहीं हुआ है या व्यय किया गया धन जिस उद्देश्य के लिए दिया गया था उसे सही ढंग से खर्च किया गया तथा वैधानिक ढंग से प्राप्त किया गया या नहीं। किसी भी विषय पर या किसी भी ढंग से लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के विवेकाधीन निर्णय को रोका नहीं जा सकता, अपने कर्तव्यों के दौरान इसकी सूचना वह व्यवस्थापिका को देता है। संविधान में निहित उसके पद की शपथ में यह कहा गया है कि उसे संविधान और विधि की मर्यादा को बनाए रखना है तथा अपने कर्तव्यों को भय, पक्षपात, प्रेम तथा बुरी भावना के बिना सम्पादित करना है।

प्रशासन की वित्तीय एकता के सर्वश्रेष्ठ स्तर को बनाए रखने के उद्देश्य एवं कर देने वालों के हितों की रक्षा तथा विधायी नियन्त्रण के उद्देश्य के लिए भी, संविधान, भारत के नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता व निष्पेक्षता को निम्न विधियों से बनाए रखता है।

(1) संविधान के अनुच्छेद 148 के अनुसार भारत के लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति अधिपत्र द्वारा राष्ट्रपति अपने ही हाथों एवं मुहर से करेगा। अपना पद ग्रहण करेगा वह 6 वर्ष तक या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, इसमें जो भी पहले हो उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायधीश की भांति तथा उसी रीति तथा उन्हीं आधारों पर उसे पद मुक्त किया जा सकता है।

(2) आगे व्यवस्था है कि लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक कार्यपालिका से प्रभावित नहीं हो सकते हैं। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 148(3) के अनुसार लेखा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तें विधि द्वारा निश्चित होंगी। उसकी नियुक्ति के पश्चात् इसमें इस प्रकार परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे उसकी हानि हो।

(3) अनुच्छेद 148(4) के अनुसार लेखा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक अपने पद से हट जाने पर भारत सरकार या राज्य सरकार के किसी भी पद पर कार्य नहीं कर सकता।

(4) अनुच्छेद 148(6) के अनुसार इस पद पर कार्यरत सभी व्यक्तियों के वेतन भत्ते एवं पेन्शन भारत की संचित निधि से देय होंगे।

(5) लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग का प्रशासकीय अध्यक्ष होता है। उसकी प्रशासकीय शक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा शासित होती है। इस तरह से संविधान लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्वतन्त्रता को बनाए रखना है और उसे कार्यपालिका, जिसके लेन–देन का वह लेखा परीक्षण करता है, के भय तथा उसके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार से परे रहता है।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य तथा शक्तियाँ (Duties & Powers of CAG)

(i) लेखा सम्बन्धी कर्तव्य (**As an Accountant**) : लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों एवं शक्तियों का लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के (कर्तव्यों, शक्तियां एवं सेवा की शर्तें) अधिनियम 1971 में उल्लेख किया गया है जिसे संविधान के अनुच्छेद 149 में सम्मिलित किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि भारत सरकार, राज्य सरकार एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों के व्ययों एवं प्राप्तियों का लेखा परीक्षण करे। उसे यह भी शक्ति प्रदान की गयी है कि निकायों या प्राधिकारों (bodies or authority) जिसे आर्थिक सहायता केन्द्र या राज्य राजस्वों से, अनुदान (granturor loans) या ऋण के रूप में प्राप्त होती है, के व्ययों एवं प्राप्तियों का लेखा परीक्षण करे। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक अधिनियम 1971 के भाग 10 के अनुसार यह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का उत्तरदायित्व है कि केन्द्रएवं प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन करे तथा वित्तीय लेखा (Finance Accounts) तैयार करे। यह भी लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य है कि लेखाओं से विनियोजन लेखा तैयार करे जिसमें केन्द्र, प्रत्येक राज्य एवं प्रत्येक केन्द्र शासित प्रदेश के उद्देश्य के लिए वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों को सम्बन्धी अध्यक्षों के अधीन दर्शाते हुए उसका विवरण हो। इन लेखाओं (वित्त लेखा) विनियोजन को राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल या केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक जैसा मामला हो, के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। वह बजटों (वार्षिक वित्तीय विवरण) की तैयारी में केन्द्र एवं राज्यों की आवश्यक सूचना देता है।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा के लेखा सम्बन्धी कार्य मुख्य रूप से इस प्रकार हैं :

1. रूपों (Form) का उल्लेख करना जिसमें केन्द्र और राज्यों के लेखाओं को रखा जाता है।

2. वित्त लेखाओं एवं विनियोजन लेखाओं को तैयार करना एवं राष्ट्रपति/राज्यपाल/केन्द्रशासित प्रदेश के प्रशासक, जैसा भी मामला हो, के समक्ष लेखाओं को प्रस्तुत करना।

3. वार्षिक बजट की तैयारी के लिए केन्द्र/राज्य सरकारों को सूचना देना।

(ii) लेखा – परीक्षण सम्बन्धी कर्तव्य (**As an Auditor**) : लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का वास्तविक कर्तव्य लेखा परीक्षण का है। मुख्य लेखा परीक्षण लेखाओं की यथार्थता (Accuracy) एवं पूर्णता को जाँचता है। वह यह देखता है कि सभी वित्तीय लेन–देन जैसे प्राप्तियाँ एवं भुगतान लेखाओं में पूर्ण रूप से दर्ज किए गये हैं या नहीं, सही ढंग से स्वीकृत किया गया है या नहीं एवं सभी व्यय एवं संवितरण प्राधिकृत तथा प्रमाणित हैं या नहीं तथा समस्त शेष धनराशि को मांगों के अनुसार दर्ज किया गया है या नहीं तथा लेखाओं में रखा गया है या नहीं। वह एक रखवाला (tchdog) की तरह कार्य करता है यह देखने के लिए कि क्या विभिन्न अधिकारियों ने वित्तीय मामलों में संविधान तथा संसद के विधियों तथा उपयुक्त विधानों नियमों एवं आदेशों के अनुसार कार्य किया है या नहीं। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक अधिनियम 1971 के अनुसार लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के लेखा परीक्षण सम्बन्धी कार्य इस प्रकार हैं :

(अ) संचित निधि से हुए समस्त व्ययों एवं प्राप्तियों का लेखा परीक्षण करना तथा प्रत्येक राज्य एवं प्रत्येक केन्द्र शासित प्रदेश, जिसके यहाँ विधान सभा है, का लेखा परीक्षण करना तथा यह पता लगाना कि लेखाओं में प्रदर्शित धन जिस उद्देश्य या सेना के लिए खर्च किया गया है वैधानिक रूप से प्राप्त किया गया या नहीं।

(ब) आकस्मिक निधि एवं लोक लेखाओं से सम्बन्धित केन्द्र एवं राज्यों के समस्त लेन–देन का लेखा परीक्षण करना।

(स) यह समस्त व्यापारिक उत्पादन, मुनाफा एवं हानि सम्बन्धी लेखाओं तथा केन्द्र एवं राज्य के किसी भी विभाग के दूसरे पूरक लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है। प्रत्येक मामलों में हुए खर्चों, लेन–देन पर रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

(द) केन्द्र या राज्य राजस्वों से सहायता प्राप्त निकायों या प्राधिकारों के प्राप्तियों तथा व्ययों का लेखा परीक्षण करता है।

(य) संसद के विधि के अन्तर्गत अथवा उसके द्वारा स्थापित कम्पनियों, निगमों के लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है।

(र) निकायों या प्राधिकारों के प्रार्थना पर उसके लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है। लेखा परीक्षण सम्बन्धी कर्तव्यों को सम्पादित करने में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक केन्द्र या राज्य के नियन्त्रण के अन्तर्गत आने वाले किसी भी लेखाओं के कार्यालय का निरीक्षण कर सकता है जिसमें प्राथमिक या अनुपूरक लेखाओं को रखने के लिए उत्तरदायी राजकोष (Treasuries) एवं कार्यालय भी शामिल होते हैं। संक्षेप में, लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक केन्द्र तथा राज्यों तथा केन्द्रों या राज्य राजस्वों से आर्थिक सहायता प्राप्त निकायों के लेखाओं के परीक्षणा के लिए उत्तरदायी है। वह स्वायत्तता प्राप्त प्राधिकारों, निगमों एवं कम्पनियों के लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है। विधि द्वारा उसको यह उत्तरदायित्व लोकहित को ध्यान में रखकर दिया गया है। अपने कर्तव्यों को सम्पादित करते समय उसे भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा विभाग से सहायता मिलती है।

लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के अन्य कर्तव्य (Other Duties of CAG)

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक केन्द्र, राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के लेखाओं की लेखा परीक्षण तथा रिपोर्ट तैयार करने से सम्बन्धित कर्तव्यों एवं कार्यों के अतिरिक्त वह संसद द्वारा बनाए या प्राधिकृत निकायों एवं

अधिकारियों के लेखाओं से सम्बन्धित कार्यों एवं कर्तव्यों को भी सम्पादित करता है। वर्तमान समय में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने अतिरिक्त कर्तव्यों में सरकारी कम्पनियों एवं वैधानिक निगमों का लेखा परीक्षण करता है। सरकारी कम्पनियों के मामलों में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक व्यवसायिक लेखा परीक्षकों के रिपोर्ट पर अपनी टिप्पणी देता है या उसे पूरा कर सकता है। उसका कर्तव्य यह भी है कि वह सार्वजनिक लेखा समिति के कार्यों में सहायता प्रदान करें।

लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक की भूमिका : एक मूल्यांकन (Evaluation of Role of CAG)

भारतीय संविधान ने लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को एक स्वतन्त्र तथा महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की है ताकि वह अपने कर्तव्यों को बिना भय या पक्षपात के सम्पादित कर सके। संविधान ने कार्यपालिका से उसकी स्वतन्त्रता के लिए उचित अभिरक्षण (Adequate Safeguard) प्रदान किया है। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद को संविधान द्वारा निर्मित किया गया है। इसका निरन्तर अस्तित्व राज्य के दूसरे संवैधानिक अंगों जैसे सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय एवं चुनाव आयोग की तरह संविधान द्वारा स्थापित किया गया है न कि संसद द्वारा। हालाँकि वह पूर्ण रूप से संसद तथा विधान मंडलों की सेवा करता है। इस प्रकार लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का भारतीय प्रजातंत्र में एक अनूठा स्थान है।

1. लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कार्यकाल एवं पंच्युति

(Appointment, Service Period and Impeachment of CAG)

संविधान लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता इस प्रकार बनाए रखता है कि उसकी नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति अधिपत्र द्वारा अपने ही हाथों एवं मुहर से करता है उसका कार्यकाल 6 वर्ष का होता है। उसे प्रमाणित दुर्व्यवहार या "अयोग्यता" को छोड़कर अपने पद से हटाया नहीं जा सकता। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में इन संवैधानिक अधिकारियों को अपने कर्तव्यों को सही ढंग से पूरा करने के लिए पूर्णरूपेण स्वतन्त्रता की आवश्कता होती है। ए.के चन्दा, भूतपूर्व लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक ने स्वायतता के पक्ष में अपना तर्क देते हुए कहा है कि "वित्त के क्षेत्र में, कार्यपालिका के कार्यों का राही तथा बिना पक्षपात के मूल्यांकन करने के लिए उनके सम्मान, स्वतन्त्रता, दृष्टि की पृथकता तथा निर्भयता को बनाए रखना अति आवश्यक है।" सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश की तरह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को उसके पद से दो आधारों पर हटाया जा सकता है। "प्रमाणित दुर्व्यवहार" या "अयोग्यता" प्रस्ताव को उसी अधिवेशन में दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा इस प्रस्ताव को पारित करने के लिए प्रत्येक सदन में विशेष बहुमत को होना आवश्यक है। प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया, निरीक्षणा दुर्व्यवहार का प्रमाण तथा अयोग्यता की प्रक्रिया को संसद के विधि द्वारा निश्चित किया जाता है। इस प्रकार पदच्युति प्रक्रिया अत्यन्त ही कठिन प्रक्रिया प्रतीत होती है।

2. नियुक्ति की शर्ते (Conditions of Appointment)

संविधान उसके वेतन एवं सेवा की अन्य शर्तों को प्रत्याभूत करता है तथा उसकी नियुक्ति के पश्चात् उनको इस प्रकार नहीं बदला जा सकता जिससे उनको हानि हो। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के वेतन तथा भत्ते भारत की संचित निधि से दिए जाते हैं। यदि वेतन तथा सेवा की शर्तों को कार्यपालिका के विवेकाधीन रख दिया जाए तो लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों में हस्तक्षेप की सम्भावना पैदा हो जायेगी। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ संसदीय मतभेद या नाराजगी के मामलों में उसका वेतन, पेन्शन या सेवानिवृत्ति की आयु में परिवर्तन संसद के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं होगा। तथा उसे सजा भी नहीं दी जा सकेगी। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक सेवानिवृत्त, त्यागपत्र या पदच्युति के बाद भारत सरकार या राज्य सरकारों के अन्तर्गत कोई लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकता। इसका उद्देश्य यह है कि उसको कार्यपालिका से किसी प्रकार का लाभ लेने के आकर्षण से पृथक रखा जाए क्योंकि यह उसे सेवानिवृत्ति से पहले उसके कार्यों तथा निर्णयों को

प्रभावित कर सकता है। वास्तविकता यह है कि इस प्रावधान की आत्मा को दृढ़तापूर्वक ग्रहण नहीं किया गया है। संविधान में यह प्रावधान है कि लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के वेतन भत्ते तथा प्रशासकीय व्ययों को भारत सरकार की संचित निधि से किया जाए। सरकार के दूसरे व्ययों के विपरीत उसके व्ययों को बजट से मतदान के लिए पेश नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उसके कार्य या व्यवहार पर संसद में बहस या मतदान नहीं हो सकता। संविधान ने इस प्रकार लेखानियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों में संसदीय हस्तक्षेप के विरुद्ध अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सुरक्षा प्रदान की है।

3. कर्तव्य एवं शक्तियाँ (Duties and Powers)

संसद ने लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों तथा शक्तियों को लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (कर्तव्य, शक्तियों एवं सेवा की शर्तों) अधिनियम 1971 के अन्तर्गत रखा है। केन्द्र सरकार के कुछ विभागों में लेखांकन को लेखा परीक्षण से अलग कर दिया गया है। जब से लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को खाद्य पुनर्स्थापना आपूर्ति विभागों लोक सभा एवं राज्य सभा सचिवालयों के लेखांकन सम्बन्धी दायित्वों से मुक्त कर दिया गया, तब से उनके लिए अलग लेखा कार्यालय बनाए गए हैं। सन् 1976 में भारत सरकार ने लेखांकन सम्बन्धी कार्य को अपने प्रशासकीय मन्त्रालय/विभाग में रख लिया जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार में लेखांकन से लेखा परीक्षण अलग होने की प्रक्रिया पूरी हो गयी। लेकिन प्रत्येक राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों (जिसके पास विधान मंडल की व्यवस्था है) के लिए पृथक वार्षिक लेखा तैयार करना तथा उसे राज्यपाल या प्रशासक को प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षण को ही सौंपा गया है। लेखा परीक्षण कार्य को एक प्राधिकार द्वारा करना यद्यपि आर्थिक दृष्टि से उचित है लेकिन लेखा परीक्षण की स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों के विपरीत है। यह लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को आंशिक रूप से कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बना देता है। वह अपने लेखांकन सम्बन्धी कर्तव्यों के लिए संसद तथा व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह हो जाता है जो कि कार्यपालिका का उत्तरदायित्व है। लेखांकन सम्बन्धी प्राधिकार के कारण अपनी लेखा परीक्षण रिपोर्ट में लेखांकन सम्बन्धी अनिश्चित्ता या लापरवाही जो कि इसके द्वारा संकलित लेखांकनों से होती है, की मुख्य घटनाओं को प्रकाशित करने में झिझक महसूस करेंगे। इस तरह से लेखा परीक्षण पूर्ण रूप से प्रभावित होगा।

संविधान के अनुसार लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को उन तरीकों (Forms) को निश्चित करने का ऐसा प्राधिकार है जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के लेखांकन को बनाए रखने का मुख्य उद्देश्य पूरा हो एवं अर्थव्यवस्था में एकरूपता को बनाए रखा जा सके। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के लेखांकन सम्बन्धी मामलों में सरकार द्वारा वार्षिक बजट की तैयारी तथा प्रस्तुति में सहायता की जाती है। इस तरह इस प्रावधान के अपने लाभ हैं। यह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को अत्यधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपता है।

1. लेखा परीक्षण रिपोर्ट (Audit Report)

संविधान में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की प्रक्रिया निर्धारित की गई है। केन्द्र सरकार सम्बन्धी लेखाओं की रिपोर्ट को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तथा राज्य सरकार के लेखाओं को राज्य के राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके बाद उसका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। लेकिन यह राष्ट्रपति/राज्यपाल के लिए आवश्यक हो जाता है कि वे संसद के सदनों/विधान मंडल के समक्ष रिपोर्ट को प्रस्तुत करें। वह तीन रिपोर्ट रखता है जैसे वित्त लेखाओं पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट, विनियोजन लेखाओं पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट तथा व्यवसायी एवं सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी उद्योगों पर लेखा रिपोर्ट तथा केन्द्र राज्य सरकारों के राजस्व प्राप्तियों पर क्रमानुसार रिपोर्ट। संविधान में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के लेखा परीक्षण रिपोर्ट के सार (Form of guidelines) के लिए कोई रूप या निर्देशन नहीं निर्धारित किया गया है। इस तरह लेखा नियन्त्रक

एवं महालेखा परीक्षक का रिपोर्टों के रूप, सामग्री तथा सार को निश्चित करने में पूर्ण स्वतन्त्रता तथा विवेकाधीन शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

सीमाएँ (Limitations)

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को कार्यपालिका एवं संसद से स्वतन्त्र बनाए रखने के लिए संविधान द्वारा विभिन्न अभिरक्षण (Safeguards) प्रदान करने के बावजूद भी उसकी स्वतन्त्रता चार तत्वों से सीमित प्रतीत होती है जैसे,

(अ) उसके बजट स्वायत्तता पर कार्यपालिका का नियन्त्रण,

(ब) स्टाफ पर नियन्त्रण की कमी,

(स) केन्द्र के वित्त मन्त्रालय के प्रति अप्रत्यक्ष, जवाबदेही तथा लेखांकन सम्बन्धी कर्तव्यों का पूरा करने के लिए राज्य सरकार के वित्त विभाग के प्रति अप्रत्यक्ष जवाबदेही,

(द) महान्यायवादी के विपरीत, अपने सरकारी कार्यों के पक्ष में संसद में प्रश्न काल के दौरान प्रत्यक्ष उपस्थिति का अभाव।

संक्षेप में, इन सीमाओं के बावजूद भी लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक वित्त प्रशासन के क्षेत्र में संविधान तथा विधि की मर्यादा को स्थापित कर भारतीय लोकतन्त्र में अनूठी भूमिका निभाता है। वह न तो संसद का अधिकारी है न ही सरकार कार्यकर्ता। वह संविधान के महत्वपूर्ण अधिकारियों में से एक है। उसका कार्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि न्यायपालिका का है।

सारांश (Conclusion)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक वित्तीय मामलों में कार्यपालिका पर संसदीय सर्वोच्चता बनाए रखता है। वह संविधान का अधिकारी है संसद का अधिकारी नहीं है। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता को संविधान विभिन्न तरीकों से प्रत्याभूत करता है जिससे कि वह कार्यपालिका के बिना हस्तक्षेप के अपने कार्यों को सम्पादित कर सके। उसका मुख्य कर्तव्य है वित्त प्रशासन के क्षेत्र में संविधान तथा विधियों की मर्यादा को बनाये रखना।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

- लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक, वार्षिक रिपोर्ट : 1971 से अब तक
- भारत तथा लेखा नियन्त्रक और महालेखा परीक्षक : भारतीय सरकार लेखा तथा टकन परिचय, 5वाँ ed. नई दिल्ली
- अशोक चन्दा, आस्पेक्ट्स ऑफ ओडिट कन्ट्रोल, नई दिल्लीः एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1966
- समीर सी॰ मुकर्जी, रोल ऑफ कम्पट्रोलर एण्ड आडिटर जनरल इन इंडियन डेमोक्रेसी, नई दिल्ली, आशीष पब्लिशिंग हाऊस, 1989

कुछ प्रश्न

- लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के कार्य बदल रहे हैं, वर्णन करो।
- 1971 के अधिनियम के तहत सी॰ए॰जी॰ के कार्य तथाशक्तियों का वर्णन करो।

Semester-I

Unit-IV

अध्याय–10 (Chapter-10)

भारतीय रिजर्व बैंक

(Reserve Bank of India)

रूपरेखा :–

- स्थापना एवं संगठन
- प्रमुख कार्य
- सरकार के बैंकर के रूप में रिजर्व बैंक की भूमिका
- सारांश
- कुछ उपयोगी संदर्भ

Semester-I

Unit-IV

अध्याय–10

भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)

भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) भारत का केन्द्रीय बैंक है। यह भारत के सभी बैंकों का संचालक है। रिजर्व बैंक भारत की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करता है। इसकी स्थापना 1 अप्रैल सन् 1935 को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 के अनुसार हुई। भारत के अर्थतज्ञ बाबासाहेब अंबेडकर ने भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना में अहम् भूमिका निभई है। उनके द्वारा प्रदान किए गए दिशा–निर्देशों या निर्देशक सिद्धांत के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक बनाई गई थी। बैंक की कार्यपद्धति या काम करने की शैली और उसका दृष्टिकोण बाबासाहेब ने हिल्टन यंग कमीशन के सामने रखा था। जब 1926 में यह कमीशन भारत में रॉयल कमीशन ऑन इंडियन करेंसी एंड फिनांस के नाम से आया था तब इसके सभी सदस्यों ने बाबासाहेब के लिखे हुए ग्रंथ दी प्राब्लम ऑफ दी रूपी – इट्स ओरीजन एंड इट्स सोल्यूशन (रुपया की समस्या – इसके मूल और इसके समाधान) की जोरदार वकालत की, उसकी पुष्टि की। ब्रिटिशों की वैधानिक सभा (Legislative Assembly) ने इसे कानून का स्वरूप देते हुए भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 का नाम दिया गया। प्रारम्भ में इसका केन्द्रीय कार्यालय कोलकाता में था जो सन् 1937 में मुम्बई आ गया। पहले यह एक निजी बैंक था किन्तु सन् 1949 से यह भारत सरकार का उपक्रम बन गया है। शक्तिकांत दास भारतीय रिजर्व बैंक के वर्तमान गवर्नर हैं, जिन्होंने 4 सितम्बर 2016 को पदभार ग्रहण किया। पूरे भारत में रिजर्व बैंक के कुल 29 क्षेत्रीय कार्यालय हैं जिनमें से अधिकांश राज्यों की राजधानियों में स्थित हैं।

मुद्रा परिचालन एवं काले धन की दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित करने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने 31 मार्च 2014 तक सन् 2005 से पूर्व जारी किए गए सभी सरकारी नोटों को वापिस लेने का निर्णय लिया है।

स्थापना : भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 के प्रावधानों के अनुसार 1 अप्रैल 1935 को हुई थी। रिजर्व बैंक का केन्द्रीय कार्यालय प्रारम्भ में कलकत्ता में स्थापित किया गया था जिसे 1937 में स्थाई रूप से बम्बई में स्थानान्तरित कर दिया गया। केन्द्रीय कार्यालय वह कार्यालय है जहाँ गवर्नर बैठते हैं और नीतियाँ निर्धारितकी जाती हैं। यद्यपि ब्रिटिश राज के दौरान प्रारम्भ में यह निजी स्वामित्व वाला बैंक हुआ करता था परन्तु स्वतन्त्र भारत में 1 जनवरी 1949 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। उसके बाद से इस पर भारत सरकार का पूर्ण स्वामित्व है।

प्रमुख कार्य (Main Functions)

भारतीय रिजर्व बैंक की प्रस्तावना में बैंक के मूल कार्य इस प्रकार वर्णित किए गए हैं :–

- बैंक नोटों के निर्गम को नियन्त्रित करना, भारत में मौद्रिक स्थायित्व प्राप्त करने की दृष्टि से प्रारक्षित निधि रखना और सामान्यतः देश के हित में मुद्रा व ऋण प्रणाली परिचालित करना।
- मौद्रिक नीति तैयार करना, उसका कार्यान्वयन और निगरानी करना।
- वित्तीय प्रणाली का विनियमन और पर्यवेक्षण करना।
- विदेशी मुद्रा का प्रबन्धन करना
- मुद्रा जारी करना, उसका विनिमय करना और परिचालन योग्य न रहने पर उन्हें नष्ट करना।

- सरकार का बैंकर और बैंकों का बैंकर के रूप में काम करना।
- साख नियन्त्रित करना।
- मुद्रा के लेन–देन को नियन्त्रित करना

निदेशक मण्डल

रिजर्व बैंक का कामकाज केन्द्रीय निदेशक बोर्ड द्वारा शासित होता है। भारतीय रिजर्व अधिनियम के अनुसार इस बोर्ड की नियुक्ति भारत सरकार द्वारा की जाती है। यह नियुक्ति चार वर्षों के लिए होती है।

केन्द्रीय बोर्ड

रिजर्व बैंक का कामकाज केन्द्रीय निदेशक बोर्ड द्वारा शासित होता है। इसका स्वरूप इस प्रकार होता है –

गठन

- सरकारी निदेशक एक पूर्णकालिक गवर्नर और अधिकतम चार उप–गवर्नर
- गैर सरकारी निदेशक रा नामित सरकार द्वाराः विभिन्न क्षेत्रों से दस निदेशक और एक सरकारी अधिकारी अन्य : चार निदेशक – चार स्थानीय बोर्डों से प्रत्येक में एक।

कार्य

बैंक के क्रियाकलापों की देखरेख और निदेशन

स्थानीय बोर्ड

• देश के चार क्षेत्रों – मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई और नई दिल्ली से एक–एक

सदस्यता :

• प्रत्येक में पाँच सदस्य

• केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त

• चार वर्ष की अवधि के लिए

कार्य

• स्थानीय मामलों पर केन्द्रीय बोर्ड को सलाह देना

• स्थानीय, सहकारी तथा घरेलू बैंकों की प्रादेशिक व आर्थिक आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करना।

• केन्द्रीय बोर्ड द्वारा समय–समय पर सौंपे गए ऐसे अन्य कार्यों का निष्पादन करना।

वित्तीय पर्यवेक्षण

रिजर्व बैंक यह कार्य वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) के दिशानिर्देशों के अनुसार करता है। इस बोर्ड की स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक के केंद्रीय निदेशक बोर्ड की एक समिति के रूप में नवंबर 1994 में की गई थी।

उद्देश्य

वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) का प्राथमिक उद्देश्य वाणिज्य बैंकों, वित्तीय संस्थाओं और गैर–बैंकिंग वित्तीय

संस्थाओं सहित वित्तीय क्षेत्र का समेकित पर्यवेक्षण करना है।

गठन

इस बोर्ड का गठन केंद्रीय बोर्ड के चार निदेशकों को सहयोजित सदस्य के रूप में दो वर्ष की अवधि के लिए शामिल करके किया गया है तथा गवर्नर इसके अध्यक्ष हैं। रिजर्व बैंक के उप गवर्नर इसके पदेन सदस्य हैं। एक उप गवर्नर, सामान्यतः बैंकिंग नियमन और पर्यवेक्षण के प्रभारी उप गवर्नर को बोर्ड के उपाध्यक्ष के रूप में नामित किया गया है।

बीएफएस की बैठकें

बोर्ड की बैठक सामान्यतः महीने में एक बार आयोजित किया जाना आवश्यक है। इस बैठक के दौरान पर्यवेक्षण विभाग द्वारा प्रस्तुत निरीक्षण रिपोर्ट और पर्यवेक्षण से संबंधित अन्य मामलों पर विचार किया जाता है। लेखा–परीक्षा उप–समिति के माध्यम से बैंकिंग पर्यवेक्षण बोर्ड बैंकों और वित्तीय संस्थाओं की सांविधिक लेखा–परीक्षा और आंतरिक लेखा–परीक्षा कार्यों की गुणवत्ता बढ़ाने पर भी विचार करता है। इस उप–लेखा परीक्षा समिति के अध्यक्ष उप–गवर्नर और केंद्रीय बोर्ड के दो निदेशक इसके सदस्य होते हैं।

बैंकिंग पर्यवेक्षण बोर्ड

बैंकिंग पर्यवेक्षण विभाग (डीबीएस), गैर बैंकिंग पर्यवेक्षण विभाग (डीएनबीएस) और वित्तीय संस्था प्रभाग (एफआईडी) के कार्य–कलापों का निरीक्षण करता है और नियमन तथा पर्यवेक्षण संबंधी मामलों पर निदेश जारी करता है।

कार्य

बैंकिंग पर्यवेक्षण बोर्ड द्वारा किये गए प्रयत्नों में निम्नलिखित शामिल हैं :

(i) बैंक निरीक्षण प्रणाली की पुनर्रचना (ii) कार्यस्थल से दूर की निगरानी को लागू करना, (iii) सांविधिक लेखा परीक्षकों की भूमिका को सुदृढ़ करना और (iv) पर्यवटिक्षत संस्थाओं की आंतरिक प्रतिरक्षा प्रणाली का सुदृढ़ीकरण।

वर्तमान लक्ष्य

- वित्तीय संस्थाओं का निरीक्षण
- समेकित लेखाकार्य
- बैंक धोखाधड़ी से संबंधित कानूनी मामले
- अनर्जक आस्तियों के निर्धारण में विविधता
- बैंकों के लिए पर्यवेक्षी रेटिंग मॉडल विधिक ढांचा

सर्वोच्च अधिनियम

- भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 : रिजर्व बैंक के कार्यों पर नियंत्रण करता है।
- बैंककारी विनियम अधिनियम, 1949 : वित्तीय क्षेत्र पर नियंत्रण करता है। विशिष्ट कार्यों को नियंत्रित करने के लिए अधिनियम
- लोक ऋण अधिनियम, 1944/सरकारी प्रतिभूति अधिनियम (प्रस्तावित): सरकारी ऋण बाजार पर नियंत्रण
- प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम, 1956 : सरकारी प्रतिभूति बाजार पर नियंत्रण

- भारतीय सिक्का अधिनियम, 1906 : मुद्रा और सिक्कों पर नियंत्रण
- विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973/विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम, 1999 : व्यापार और विदेशी मुद्रा बाजार पर नियंत्रण बैंकिंग परिचालन को नियंत्रित करने वाले अधिनियम
- कंपनी अधिनियम, 1956 : कंपनी के रूप में बैंकों पर नियंत्रण
- बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अधिग्रहण और अंतरण) अधिनियम 1970/1080 : बैंकों के राष्ट्रीयकरण से संबंधित
- बैंकर बही साक्ष्य अधिनियम, 1891
- बैंकिंग गोपनीयता अधिनियम
- परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881

अलग–अलग संस्थाओं को नियंत्रित करने वाले अधिनियम

- भारतीय स्टेट बैंक अधिकनयम, 1954
- औद्योगिक विकास बैंक (उपक्रम का अंतरण और निरसन) अधिनियम, 2003
- औद्योगिक वित्त निगम (उपक्रम का अंतरण और निरसन) अधिनियम, 1993
- राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम
- निक्षेप बीमा और प्रत्यय गारंटी निगम अधिनियम

प्रमुख कार्य

मौद्रिक प्राधिकारी

- मौद्रिक नीति तैयार करता है, उसका कार्यान्वयन करता है और उसकी निगरानी करता है।
- उद्देश्य : मूल्य स्थिरता बनाए रखना और उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण उपलब्धता को सुनिश्चित करना।

वित्तीय प्रणाली का विनियामक और पर्यवेक्षक

- बैंकिंग परिचालन के लिए विस्तृत मानदंड निर्धारित करता है जिसके अंतर्गत देश की बैंकिंग और वित्तीय प्रणाली काम करती है।
- उद्देश्य : प्रणाली में लोगों का विश्वास बनाए रखना, जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करना और आम जनता को किफायती बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराना।

विदेशी मुद्रा प्रबंधक

- विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999 का प्रबंध करता है।
- उद्देश्य : विदेश व्यापार और भुगतान को सुविधाजनक बनाना और भारत में विदेशी मुद्रा बाजार का क्रमिक विकास करना और उसे बनाए रखना।

मुद्रा जारीकर्ता

- करेंसी जारी करता है और उसका विनिमय करता है अथवा परिचालन के योग्य नहीं रहने पर करेंसी और सिक्कों को नष्ट करता है।
- उद्देश्य : आम जनता को अच्छी गुणवत्ता वाले करेंसी नोटों और सिक्कों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध कराना।

विकासात्मक भूमिका

- राष्ट्रीय उद्देश्यों की सहायता के लिए व्यापक स्तर पर प्रोत्साहनात्मक कार्य करना। संबंधित कार्य
- सरकार का बैंकर : केंद्र और राज्य सरकारों के लिए व्यापारी बैंक की भूमिका अदा करता है; उनके बैंकर का कार्य भी करता है।
- बैंकों के लिए बैंकर रू सभी अनुसूचित बैंकों के बैंक खाते रखता है। सरकार के बैंकर के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 20 की शर्तों में रिजर्व बैंक को केन्द्रीय सरकार की प्राप्तियां और भुगतानों और विनिमय, प्रेषण (रेमिटन्स) और अन्य बैंकिंग गतिविधियां (आपरेशन), जिसमें संघ के लोक ऋण का प्रबंध शामिल है, का उत्तरदायित्व संभालना है। आगे, भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 21 के अनुसार रिजर्व बैंक को भारत में सरकारी कारोबार करने का अधिकार है। अधिनियम की धारा 21ए के अनुसार राज्य सरकारों के साथ करार कर भारतीय रिजर्व बैंक राज्य सरकार के लेन देन कर सकता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने अब तक यह करार सिक्किम सरकार को छोड़कर सभी राज्य सरकारों के साथ किया है।

भारतीय रिजर्व बैंक, उसके केन्द्रीय लेखा अनुभाग, नागपुर में केन्द्र और राज्य सरकारों के प्रमुख खातें रखता है। भारतीय रिजर्व बैंक ने पूरे भारत में सरकार की ओर से राजस्व संग्रह करने के साथ साथ भुगतान करने के लिए सुसंचालित व्यवस्था की है। भारतीय रिजर्व बैंक के लोक लेखा विभागों और भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 45 के अंतर्गत नियुक्त एजेंसी बैंकों की शाखाओं का संजाल सरकारी लेनदेन करता है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र की सभी बैंक और निजी क्षेत्र की तीन बैंक अर्थात आईसीआईसीआई बैंक लि., एचडीएफसी बैंक लि. और एक्सिस बैंक लि., भारतीय रिजर्व बैंक के एजेंट के रूप में कार्य करते हैं। केवल एजेंसी बैंकों की प्राधिकृत शाखाएं सरकारी लेनदेन कर सकती हैं।

मुख्य दरें

(अद्यतन–अगस्त 2019)

- बैंक रेट : 6.00%
- रेपो रेट : 5.40%
- रिवर्स रेपो रेट : 5.15%
- मार्जिनल स्टेंडिंग फैसिलिटी (MSF) रेट : 5.65%
- कैश रिजर्व रेशो (CÙ) : 4%
- स्टेच्युटरी लिक्विडिटी रेशो (SLR) : 18.75%

बोर्ड ऑफ डायरेक्टर **(Board of Directors)**

केन्द्रीय बोर्ड **(Central Board)**

1. शक्तिकांत दास – गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक
2. श्री आर गांधी – उप गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक
3. एस एस मुंदरा – उप गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक
4. श्री एन.एस. विश्वनाथन – उप गवर्नर भारतीय रिजर्व बैंक
5. डॉ० नचिकेत एम. मोर क्षेत्रीय निदेशक भारतीय रिजर्व बैंक
6. श्री नटराजन चंद्रशेखरन भारतीय रिजर्व बैंक
7. श्री भारत नरोतम दोशी भारतीय रिजर्व बैंक
8. श्री सुधीर मांकड भारतीय रिजर्व बैंक
9. श्री शक्तिकांत दास भारतीय रिजर्व बैंक
10. सुश्री अंजुलि चिब दुग्गल भारतीय रिजर्व बैंक

क्षेत्रीय बोर्ड

पश्चिम क्षेत्र : 1. श्री किरण कार्णिक

पूर्व क्षेत्र : 1. डॉ0 नचिकेत एम मोर

2. सुश्री अनिला कुमारी

3. श्री शरीफ उज–जमान लस्कर

उत्तर क्षेत्र : 1. श्री अनिल काकोड़कर

2. श्री कमल किशोर गुप्ता

3. श्री मिहिर कुमार मोइत्रा

4. श्री ए नवीन भंडारी

दक्षिण क्षेत्रः 1. श्री के सेल्वाराज

2. श्री किरण पांडुरंग

सन्दर्भ दस्तावेज

- संग्रहीत प्रति : BS Reporter. मूल से 13 नवंबर 2016 को पुरालेखित, अभिगमन तिथि 10 नवंबर 2016.
- Reserve Bank of India Archived 14 जून 2015 at the वेबैक मशीन Rbi.org.in (2005–02–07). Retrieved on 2014–05–21.
- Reserve Bank of India – India's Central Bank Archived 18 फरवरी 2008 at the वेबैक मशीन. Rbi.org.in.
- "Reserve Bank of India – India's Central Bank"- rbi.org.in. मूल से 18 फरवरी 2008 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 10 नवंबर 2016.

- भारतीय रिजर्व बैंक के कुछ तथ्य, Archived 21 दिसम्बर 2016 at the वेबैक मशीन,
- भारतीय रिजर्व बैंक कि स्थापना में डॉ बाबासाहेब आंबेडकर जी का योगदान, Archived 24 मई 2018 at the वेबैक मशीन,
- संग्रहीत प्रति (PDF). मूल से 10 मई 2012 को पुरालेखित (PDF). अभिगमन तिथि 19 दिसंबर 2016.

कुछ प्रश्न

- भारतीय रिजर्व बैंक के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करो
- सरकार के बैंकर के रूप में रिजर्व बैंक की भूमिका का वर्णन करो।

Semester-I

Unit-IV

अध्याय–11 (Chapter-11)

इकाई – संघीय वित्त आयोग एवं राज्य वित्त आयोग रूपरेखा :–

– वित्त आयोग का गठन

– वित्त आयोग के कार्य

– वित्त आयोग की भूमिका

– वित्त आयोग की सिफारिशें

– राज्य वित्त आयोग

– सारांश

– कुछ उपयोगी पुस्तकें

– कुछ प्रश्न

♦♦♦

अध्याय–11

वित्त आयोग : गठन, कार्य और भूमिका

(Finance Commission : Composition, Functions and Role)

भारतीय संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को संविधान लागू होने की तिथि के दो वर्ष के भीतर तदुपरान्त प्रति पांच वर्ष बाद वित्त आयोग की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है। संविधान में वित्त आयोग के चार कार्य निश्चित किये गये :

(1) केन्द्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों के बीच वितरित होने वाली आय के विभाजन का आधार निश्चित करना।

(2) भारत की संचित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुमानों के संबंध में सिद्धान्त निश्चित करना।

(3) केन्द्र और राज्य के बीच होने वाले वित्तीय समझौते को जारी रखने या उसमें परिवर्तन और संशोधन की सिफारिश करना।

(4) राष्ट्र के वित्तीय हित में राष्ट्रपति द्वारा सूचित किए जाने पर किसी अन्य विषय पर विचार करना।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में वित्त आयोग की नियुक्ति

भारत के संघीय वित्त–व्यवस्था के नियमित पुनर्निरीक्षण तथा उसमें आवश्यक संशोधन के लिए प्रति पांच वर्ष के बाद वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था की गई है। केन्द्र के राज्यों की ओर वित्तीय साधनों के हस्तांतरण के संदर्भ में वित्त आयोग को निर्णायक स्थान प्राप्त है। राज्यों को संघीय उत्पादन शुल्कों और आय–कर की प्राप्ति में हिस्सा तथा गैर–योजना कार्यों के लिए सहायक अनुमानों का निर्धारण वित्त आयोग की सिफारिशों द्वारा ही होता है। इस प्रकार संवैधानिक दृष्टि से वित्त आयोग केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंधों का एकमात्र तथा वास्तविक निर्धारक है। भारतीय संविधान के अनुसार, वित्त आयोग के प्रमुख चार कार्य हैं – (i) एक ओर, केन्द्र एवं राज्यों के बीच तथा दूसरी ओर, विभिन्न राज्यों के बीच विभाज्य करों की प्राप्तियों के वितरण का आधार निर्धारित करना (ii) उन सिद्धान्तों का निर्धारण करना, जिनके अनुसार भारत की संचित निधि से राज्यों को योजना–स्तर कार्यों के लिए सहायक–अनुदान दिए जाने चाहिए। (iii) संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच होने वाले वित्तीय समझौतों को जारी रखने अथवा उनमें परिवर्तन और संशोधन की सिफारिश करना (iv) देश के वित्तीय हित में तथा राष्ट्रपति द्वारा सूचित किए जाने पर किसी अन्य विषय पर विचार करना भी वित्त आयोग का कार्य है।

वित्त आयोग का गठन (**Composition of Finance Commission**)

वित्त आयोग की संरचना निम्न प्रकार की होती है :

(क) 1 अध्यक्ष (Chairman) (ख) 4 अन्य सदस्य (Other members)

वित्त आयोग के अध्यक्ष का चयन ऐसे व्यक्यिों में से किया जाना चाहिए जिसे लोक कार्यों का पर्याप्त अनुभव हो और अन्य सदस्यों का चयन भी उन व्यक्तियों में से किया जाना चाहिए जिनमें इस प्रकार के गुण पाये जाते हों।

दूसरे शब्दों में, अध्यक्ष को लोक क्रियाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए और उसे लोक आवश्यकताओं की जानकारी होनी चाहिए। जनता उसके बारे में जानती हो अथवा वह जनता का प्रतिनिधित्व करता हो।

अन्य चार सदस्य–उच्च न्यायालय (High Court) के न्यायाधीश होने चाहिएं। इनको लोक प्रशासन और वित्तीय प्रशासन का गहरा ज्ञान होना चाहिए। वित्त के बारे में जानकारी होनी चाहिए। इनका ज्ञान अर्थशास्त्र विषय में बहुत ज्यादा होना चाहिए। इन्हें सरकारी खातों और वित्त के क्षेत्र में भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। आयोग को अपने कार्य की प्रक्रिया का निर्धारण करने की पूरी शक्ति दी जाती है तथा इसे किसी भी न्यायालय अथवा दफ्तर के दस्तावेजों, सार्वजनिक रिकार्डों, गवाहों को बुलाने, जांचने आदि के मामलों में सिविल कोर्ट के पूरे अधिकार प्राप्त होते हैं। वित्त आयोग ऐसी सूचना जो आयोग की दृष्टि से उपयोगी हो, की जानकारी के लिए किसी भी व्यक्ति को बुलाने की शक्ति रखता है। भारत में किसी भी कोने में स्थित व्यक्ति को आयोग गवाही अथवा जानकारी के लिए बुला सकता है।

भारत में वित्त आयोग की नियुक्ति इस अर्थ में महत्वपूर्ण होती है कि यह परिवर्तित आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार केन्द्र एवं राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों में परिवर्तन लाता हैं। वित्त आयोग की व्यवस्था से केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंध लोचपूर्ण बने रहते हैं। संविधान लागू होने के पश्चात् भारत में अब तक ग्यारह वित्त आयोग नियुक्त हो चुके हैं। श्री जे. पी. नियोगी की अध्यक्षता में पहला वित्त आयोग सन् 1951 में, श्री के. सन्थानम की अध्यक्षता में दूसरा वित्त आयोग, सन् 1956 में, श्री ए. के. चांदा की अध्यक्षता में तीसरा वित्त आयोग सन् 1960 में न्यायमूर्ति पी. वी. राजामन्नार की अध्यक्षता में चौथा वित्त आयोग 1964 में, श्री महावीर त्यागी की अध्यक्षता से पांचवा वित्त आयोग सन् 1968 में, श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी की अध्यक्षता में छठा वित्त आयोग सन् 1972 में, श्री जे. एम. सीलट की अध्यक्षता में सातवां वित्त आयोग, सन् 1977 में श्री वाई. वी. चाव्हाण की अध्यक्षता में, आठवां वित्त आयोग सन् 1982 में, श्री साल्वे की अध्यक्षता में नवां वित्त आयोग, सन् 1987 में, तथा दसवां वित्त आयोग 1995 में श्री के.सी. पंत की अध्यक्षता में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर चुके हैं। वित्त आयोग सामान्यतया अपनी सिफारिशें एक दो विशिष्ट मुद्दों अथवा ऐसे को अपनी राय देता है जिन पर राष्ट्रपति द्वारा ठोस वित्त के दृष्टिकोण से विशिष्ट मुद्दों पर आयोग से राय मांगी जाती है।

आयोग के कार्य (Functions of the Commission)

आयोग का कार्य निम्नलिखित के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करना होगा :

(क) संघ तथा राज्यों के बीच उन करों की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का वितरण जोकि उनके बीच बांटे जाने हैं और ऐसी प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य के हिस्से का निर्धारण।

(ख) उन सिद्धान्तों का निर्धारण, जिसके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें।

(ग) भारत सरकार तथा धारा 306 अथवा 278 के उपबन्ध 1 की प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' में उल्लिखित किसी भी राज्य के बीच हुए किसी समझौते की शर्तों में संशोधन अथवा उनका यथापूर्व जारी रहना।

(घ) अन्य कोई भी मामला जो देश की सुचारू वित्त व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपा जाये।

इस प्रकार, वित्त आयोग निम्न मामलों के संबंध में राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगा :

(1) उन करों की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का प्रतिशत, जोकि संघ तथा राज्यों के बीच बाँटे जाने हैं।

(2) ऐसे करों की प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य के हिस्से का बंटवारा प्रतिशत में।

(3) जनजाति अथवा कबीले क्षेत्रों (tribal areas) के लिए सहायक अनुदान।

(4) आंतरिक सीमा शुल्कों को लगाने के संबंध में भारत सरकार द्वारा भाग 'ख' के किसी भी राज्य के साथ हुये समझौते की शर्तों का संशोधन करना अथवा उसका यथापूर्व जारी रहना। (5) उन सिद्धान्तों का निर्धारण जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें।

(6) किसी राज्य–विशेष के लिए विशिष्ट अनुदान।

आयोग अपनी कार्य–पद्धति का स्वयं निर्धारण करेगा और उसे अपने कार्यों के सम्पादन में ऐसी शक्तियां प्राप्त होंगी जोकि संसद कानून बना कर उसे देगी। राष्ट्रपति आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को उस पर की जाने वाली कार्यवाही की व्याख्यात्मक टिप्पणी के साथ संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

निम्नलिखित कार्य वित्त आयोग के अनिवार्य कार्य घोषित किए गए – (1) संघ तथा राज्य के बीच उन करों की निबल प्राप्तियों का वितरण, जोकि उनके बीच बांटे जाने हों, (2) उन सिद्धान्तों का निर्धारण, जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें। आय–कर एकमात्र ऐसा कर है जिसको अनिवार्य रूप से बांटा जाता है जबकि उत्पादन शुल्कों के बंटवारे को ऐच्छिक कहा जा सकता है।

सिफारिशों का कार्यान्वयन (Implementation of the Recommendations)

आय–करों का बंटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति के आदेश से होता है। यह परम्परा सी बन गई है कि भारत सरकार इस संबंध में आयोग की सिफारिशें स्वीकार कर लेती है कि विभाज्य करों का कितना प्रतिशत राज्यों को दिया जाना है और यह कि यह प्रतिशत राज्यों में किस प्रकार बांटा जाना है। राज्यों के हिस्से को संघ की संचित निधि का भाग नहीं बनाया जाता बल्कि उन्हें सीधे राज्यों की संचित निधियों (Consolidated Funds) में डाल दिया जाता है। संविधान की धारा 272 के अनुसार, वित्त आयोग की सिफारिशें केवल संस्तुति मात्र ही होती हैं और संघ सरकार को इस बात की छूट होती है कि उत्पादन शुल्कों (Excise Duties) के संबंध में वह वित्त आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा कर सके। यदि वह सिफारिश न होने के बावजूद उत्पादन शुल्कों का कोई भाग राज्यों को देना चाहती है तो वह इच्छानुसार इसके लिए कानून बना सकती है। परन्तु व्यवहार में संघ सरकार उत्पादन शुल्कों के संबंध में वित्त आयोग की सिफारिशों को उस कानून के आधार के रूप में स्वीकार कर लेती है जिसे कि वह उत्पादन शुल्कों के बंटवारे के लिए संसद के समक्ष रखती है।

संवैधानिक स्थिति (Constitutional Position)

अतः इस संबंध में संवैधानिक स्थिति इस प्रकार है :

(1) वित्त आयोग को केवल उन सिद्धान्तों के संबंध में सिफारिशें करनी होती हैं जिनके द्वारा सहायक अनुदानों का निर्धारण होता है।

(2) तब यदि राज्यों को सहायता की आश्यकता होगी तो संसद कानून बनाकर विशिष्ट अनुदानों का निर्धारण कर सकती है।

(3) संसद ऐसा कानून बनाये तब तक के लिए राष्ट्रपति वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद ऐसे अनुदानों की विशिष्ट धनराशि का आदेश दे सकता है।

वास्तव में, यह सब भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ है क्योंकि वित्त आयोगों ने सिद्धान्तों के निर्माण में कुछ व्यर्थ के से प्रयास किए हैं जैसे कि वित्त आयोग ने कुछ विशिष्ट धन राशियों की सिफारिश कर दी और राष्ट्रपति के तदनुसार ही उन धनराशियों के बराबर अनुदान देने के आदेश दे दिए। संघ सरकार ने आज तक कभी यह ठीक

नहीं समझा कि धारा 275(1) के अन्तर्गत संसद से इस संबंध में कानून बनाने को कहे और न किसी वर्ष से ही संसद को इस अधिकार का प्रयोग करने के लिए कहा है।

अतः व्यवहार में, आय–व्यय के भाग, उत्पादन शुल्कों की प्राप्तियों तथा सहायक अनुदानों के वितरण के संबंध में आयोग की सिफारिशें अन्तिम होती हैं और वे संघ सरकार द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं।

वित्त आयोग की भूमिका (Role of Finance Commission)

संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र और उसके राज्यों के बीच राजस्व वितरण, इकाइयों को अनुदान देने के संबंध में आवश्यक सिफारिशों को देने तथा उचित धरातल प्रस्तुत करने के लिए वित्त आयोग जैसी संस्था की स्थापना की जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत वित्त आयोग संबंधी प्रावधान किया गया है। इस आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। प्रारम्भ में संविधान के लागू होने के दो वर्ष बाद और तत्पश्चात् प्रति पांचवें वर्ष अथवा जरूरत पड़ने पर इससे भी पूर्व वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था है। आयोग में एक अध्यक्ष की नियुक्ति होने से आयोग के कार्य में अविच्छिन्नता आ जाती है। प्रत्येक आयोग अपने पूर्ववर्ती आयोग के कार्य से लाभ उठाता है। अनुच्छेद 280 के अनुसार वित्त आयोग मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता हैं :

(क) संघ और राज्यों में विभाज्य आय के वितरण का आधार,

(ख) संघ और राज्यों के बीच होने वाले वित्तीय समझौते जारी रखना या उनमें आवश्यक परिवर्तन–संशोधन करना,

(ग) संचित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान के सिद्धान्तों का निर्धारण और

(घ) देश के वित्तीय हित में राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए किसी अन्य विषय पर विचार करना।

समय–समय पर वित्त आयोग की नियुक्ति की उपरोक्त संवैधानिक व्यवस्था का संभवतः औचित्य यह है कि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होने पर संघ तथा राज्यों के वित्तीय संबंधों में परिवर्तन आना अनिवार्य है और इन परिवर्तनों को ध्यान में रखकर समायोजन किया जाना चाहिए। संघात्मक सरकार में संघ तथा राज्यों के परस्पर संबंध परिवर्तनशील हैं और जीवन की समस्याओं को भी सदा के लिए एक ही बार हल नहीं किया जा सकता। वित्त आयोग नवीन परिवर्तनों के संदर्भ में समायोजन का श्रेष्ठ साधन है। संविधान के संदर्भ में वित्तीय आयोग का अधिनियम 1951 में पारित किया गया जो कि वित्त आयोग की निश्चितता के बारे में था। इसका अध्यक्ष उस व्यक्ति को बनाया जाता है जोकि सार्वजनिक मामलों में दिलचस्पी रखता हो तथा इसके साथ ही जिस व्यक्ति को सार्वजनिक जीवन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो। दूसरे सदस्यों में से एक अन्य सदस्य ऐसा होना चाहिए जो कि न्यायालय में जज या निर्णायक के रूप में रहा हो। एक ऐसा व्यक्ति भी होना चाहिए जिसे वित्तीय क्षेत्र में पारंगतता प्राप्त हो। चौथा सदस्य ऐसा व्यक्ति होता है जिसे अर्थशास्त्र का ज्ञान हो। इस प्रकार अर्थ के ज्ञाता, गणित, न्याय एवं सार्वजनिक क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्तियों का यह आयोग बनाया जाता है।

आयोग संघ एवं राज्यों के बीच राजस्व के वितरण जैसे जटिल किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्नों से संबंध रखता है। वित्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक ओर तो राज्यों मे परस्पर दूरी और दूसरी ओर केन्द्रीय और राज्यों के बीच होने वाले विवादों के निपटारे में निर्णायक भूमिका अदा करेगा। दूसरे शब्दों में, आयोग का प्रमुख कर्तव्य आयकरण के प्रमुख साधनों को वितरित करने हेतु तथा राज्यों के मध्य अपना प्रतिवेदन या फैसला प्रस्तुत करने का है। एक व्यवस्था यह भी है कि राष्ट्रपति अन्य मामलों जैसे वित्त आदि के विषय में हस्तक्षेप कर सकता है। किन्तु आयकर के संबंध में उसकी सिफारिशों का अध्ययन करने के बाद राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा वितरण की प्रणाली एवं प्रतिशत भाग निर्धारित करता है। इस कार्य में संसद प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेती। वित्त आयोग एक गैर–राजनीतिक संस्था है। इसलिए धारा 280 के माध्यम से वित्त आयोग को यह अधिकार है कि वह राज्यों के बीच

आयकर वितरित करे, साथ ही राज्यों को दी जाने वाली सहायता का निर्धारण करे किन्तु उल्लेखनीय यह है कि आयोग राज्यों की आय के सम्पूर्ण साधनों के संबंध में अपनी सिफारिश प्रस्तुत नहीं कर सकता। विकास कार्यों के संबंध में साधनों का वितरण केन्द्रीय सरकार योजना आयोग के परामर्श से करती है। राज्यों को विकास कार्यों के संबंध में दी जाने वाली सहायता की मात्रा निश्चित करने में योजना आयोग का अधिक हाथ रहता है। योजना आयोग के इस अधिकार के कारण वित्त आयोग को यह अधिकार है कि वह योजना आयोग द्वारा निर्धारित वित्तीय सहायता की मात्रा कम कर सकता है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से वह ऐसा नहीं कर पाता है। वित्त आयोग से संबंधित धारा 280 आयोग के कार्यों को अधिक विस्तृत अधिकार देती है। इसके द्वारा आयोग को यह अधिकार दिया गया है कि सुदृढ़ वित्त की स्थापना के लिए वित्त आयोग समय–समय पर अपनी सिफारिशों के संबंध में पूछताछ कर सकता है।

संविधान की धारा 203 वित्त आयोग को यह अधिकार देती है कि वित्त आयोग वे सिद्धान्त निर्धारित करे जिनके आधार पर केन्द्र राज्यों को अनुदान देगा। वित्त आयोग के सामने भी महत्वपूर्ण समस्याओं में संविधान की धारा 275 के अन्तर्गत विभाजन योग्य केन्द्रीय कोष और राज्यों के दिए जाने वाले अनुदान के विभाजन के सिलसिले में नियम और सिद्धान्त तय करना था। संविधान में कर वितरण की कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं है, इसलिए वित्त आयोग पर वितरण के सिद्धान्त निश्चित करने का दायित्व है। यद्यपि संघीय व्यवस्था की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक संघीय इकाई की वित्तीय आवश्यकताएं संवैधानिक व्यवस्था द्वारा दूर की जानी चाहिए। यही समस्या चौथे वित्त आयोग के समक्ष रखी गई थी। जिसके अन्तर्गत यह कहा गया कि राज्यों के बीच एक वितरण के सामान्य सिद्धान्त संविधान में व्यवस्थित किए जाने चाहिए। भारतीय संविधान में वित्त के उचित वितरण के लिए और केन्द्रीय सरकार का वित्त पर समुचित नियंत्रण बनाए रखने के लिए वित्त आयोग को बंटवारे की सिफारिश करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस दृष्टि से वित्त आयोग का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक दिखाई देता है, किन्तु उल्लेखनीय है कि विकास कार्यों के लिए साधनों का वितरण केन्द्रीय सरकार योजना आयोग के परामर्श से करती है।

यद्यपि वित्त आयोग योजना द्वारा निर्धारित साधनों को कम कर सकता है किन्तु व्यवहार में वह ऐसा नहीं कर पाता है। संविधान लागू करने के बाद से अब तक दस वित्त आयोग गठित किए जा चुके हैं जिनकी विविध सिफारिशों को लागू भी किया गया है। यद्यपि वित्त आयोग प्रावधानों के परिवर्तन की सिफारिश नहीं कर सकता, तथापि केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों के क्षेत्र में आयोग का प्रभाव बहुत अधिक है, क्योंकि संविधान केवल यह बताता है कि कौन कर लगाएगा और कौन कर उगाहेगा, लेकिन यह नहीं बताता है कि उनको किस प्रकार वितरित किया जाएगा और वितरण संबंधी सिफारिश वित्त आयोग द्वारा ही की जाती है। साधारणतया वित्त आयोग की सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली जाती हैं।

स्पष्ट है कि वित्त आयोग का स्तर दीवानी न्यायालय जैसा है जो अपनी प्रक्रिया को स्वयं निर्धारित करता है। यह आयोग भारत सरकार और राज्य सरकारों के वित्तीय संसाधनों को नियमित, समन्वित तथा एकीकृत करने का महत्वपूर्ण संगठन है। इसकी कार्य प्रणाली की यह विशेषता रही है कि यह अपनी सिफारिशों के निर्धारण के लिए केन्द्र सरकार, योजना आयोग, राज्य सरकारों के अधिकारियों और मंत्रियों पर निर्भर रहा है। आयोगों ने अपने प्रतिवेदन नागरिकों तथा विशिष्ट संगठनों के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर प्रस्तुत किए हैं। सांविधानिक दृष्टि से वित्त आयोग एक परामर्शदात्री संस्था है जिसकी सिफारिशों को मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य नहीं है लेकिन अब तक का इतिहास बताता है कि वित्त आयोग की सिफारिशों को अधिकांश मामलों में स्वीकार करने की परम्परा का निर्वाह हुआ है। वित्त आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वयन की दृष्टि से तीन वर्गों में रखा जा सकता हैः

(1) वे प्रस्ताव जिनका क्रियान्वयन राष्ट्रपति के आदेश के अन्तर्गत होता है,

(2) वे प्रस्ताव जो कार्यपालिका के आदेशों के संदर्भ में क्रियान्वित किए जाते हैं, एवं

(3) वे प्रस्ताव या सिफारिशें जिनका क्रियान्वयन संसद द्वारा निर्मित अधिनियम के आधार पर किया जाता है।

केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों में वित्त आयोग की व्यवस्था संविधान निर्माताओं के बड़े विवेक की परिचायक है। दोनों सरकारों के बीच जटिल वित्तीय समस्याओं को सुलझाने वाले एक सांविधानिक उपकरण के रूप में वित्त आयोग की भूमिका बहुत ही प्रमुख रही है। आज की वित्त वितरण व्यवस्था पूर्णतः वित्त आयोगों की सिफारिशों पर ही आधारित है। आयोग के कार्य का मुख्य महत्व इस बात में है कि वह संघात्मक शासन पद्धति की वित्त–व्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए निष्पक्ष तथा तटस्थ दृष्टिकोण अपनाता है। वित्त वितरण के प्रश्न को संघ तथा राज्य के मध्य अन्य राजनीतिक विवादों से दूर रखने का श्रेय इसी को प्राप्त है। वस्तुतः वित्त आयोग राज्यों तथा संघ के मध्य एक ऐसे प्रत्यावरोध का कार्य करता है जो एक ओर निरंतर अधिक वित्त की मांग करने वाले राज्यों में राजनीतिक दबाव से संघ की रक्षा करता है, दूसरी ओर आवश्यकताग्रस्त राज्यों को यथासंभव सहायता प्रदान के लिए संघ को विवश करता है। इस प्रकार संघ के वित्त आयोग की सिफारिशों के विरूद्ध जाना असंभव सा है।

वित्त आयोगों की सिफारिशों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघ तथा राज्यों के वित्तीय संबंधों को अत्यधिक प्रभावित करने तथा जटिल वित्तीय समस्याओं को सुलझाने वाले एक सांविधानिक अधिकरण के रूप में आयोग ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। भारतीय संदर्भ में वित्त वितरण व्यवस्था पूर्णतः इन्हीं सिफारिशों पर आधारित है। वित्त आयोग की व्यवस्था करके भारतीय संविधान निर्माताओं ने उन कमियों को पूर्णतः दूर रखने का प्रयास किया जो अन्य संघात्मक संविधानों में वित्तीय उपबंधों के संबंध में पाई जाती हैं। वित्त आयोग के अस्तित्व में आने से संघ और राज्यों के संबंध परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित रहे हैं। भारतीय वित्त आयोग ने एक और संघात्मक शासन पद्धति की वित्त व्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए एक निष्पक्ष तथा तटस्थ दृष्टिकोण अपनाया है तो दूसरी ओर वित्त आयोग ने संघ एंव राज्यों के मध्य वित्त विवरण के प्रश्न को राजनीतिक विवादों से दूर रखने का कार्य किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि वित्त आयोग का महत्व निर्विवाद है।

नवें वित्त आयोग की सिफारिशें

वित्त आयोग के योगदान का वर्णन नवें वित्त आयोग की सिफारिशों के वर्णन के बिना अधूरा रह जायेगा। अतः हम इन सिफारिशों के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं :

नवें वित्त आयोग का गठन श्री एन. के. पी. सालवे (N.K.P. Salve) की अध्यक्षता में जून, 1987 में हुआ। इस आयोग के अन्य सदस्य थे : न्यायमूर्ति अब्दुल सत्तार कुरैशी, डॉ० राजा चल्लैहा, श्री लालथारीवाला, तथा श्री महेश प्रसाद। नवें वित्त आयोग के विचार के विषय पहले सभी वित्त आयोगों की अपेक्षा अधिक विस्तृत थे। इस आयोग को अतिरिक्त शुल्कों को पट्टे पर देने तथा इस शुल्क के अंश को राज्यों में वितरित करने के लिये सूत्र विकसित करने के लिये कहा गया।

पंचवर्षीय योजना से संबंधित सिफारिशों को वित्त आयोग की सिफारिशों से समान अवधि का बनाने के लिये, नवें वित्त आयोग को अपने प्रतिवेदन को दो भागों में देने के लिए कहा गया। पहले भाग में 1989–90 वर्ष के लिये सिफारिश हों। दूसरे भाग में आठवीं पंचवर्षीय योजना (1990–95) के सम्बन्ध में सिफारिशें हो। आयोग द्वारा विचारणीय विषयों में यह भी सम्मिलित किया गया कि 31 मार्च, 1989 तक राज्यों की ऋण की स्थिति को निर्धारित किया जाये तथा केन्द्र की वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर इस स्थिति में सुधार के पग भी सुझाये जायें।

आयोग ने अपने प्रथम प्रतिवेदन में कहा कि हम अपने राजस्व तथा व्यय की दर को इस प्रकार लक्ष्य बनायेंगे कि 1994–95 के अन्त तक राजस्व का घाटा पूरा हो जाए। इस राजस्व के घाटे को विभिन्न चरणों में पूरा किया जायेगा। इसे राजस्व व्यय के अनुपात को कम करके तथा राजस्व अनुपात में वृद्धि करके पूरा किया जायेगा।

नवें वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि राजस्व को बढ़ाया जाना चाहिए तथा व्यय में कटौती की जानी

चाहिए। राज्यों को और अधिक कर लगाने की शक्तियाँ दी जानी चाहिए। नवें वित्त आयोग ने राज्यों में करों से प्राप्त राजस्व के बंटवारे के लिए निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या को ध्यान में रखा। इससे पहले वाले आयोग राज्यों के अंश को निर्धारित करने के लिए राष्ट्रीय औसत से पिछड़ेपन का निर्धारण करते थे। किन्तु इस आयोग ने एक बहुत ही तर्कसंगत मानदण्ड चुना है।

आयोग ने नशाबन्दी अपनाने वाले राज्यों के लिए राजस्व में आने वाली कमी के कुछ अंश को पूरा करने के लिए केन्द्र से ध्यान देने की सिफारिश भी की है। नवें वित्त आयोग ने कहा कि विशेष योजनाओं को बनाते समय राज्यों को राजस्व बढ़ाने के निर्णय की ओर भी ध्यान देना चाहिए। आयोग ने यह बात सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को विकसित करने के सम्बन्ध में कही है। आयोग ने कहा है कि राज्यों को अपने राजस्व को बढ़ाने के सम्बन्ध में भी पग उठाने चाहिए। उन्हें अपने बोझ को अन्य राज्यों के लोगों पर डालने के प्रयत्न नहीं करने चाहिए।

दसवें वित्त आयोग की सिफारिशें तथा ग्यारहवें वित्त आयोग का दृष्टिकोण

(Recommendations of 10th Finance Commission and Perspective of 11th Finance Commission)

तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा 17 जून, 1987 को पूर्व केन्द्रीय मंत्री एन. के. पी. सालवे की अध्यक्षता में नवें वित्त आयोग का गठन किया गया। आयोग के अन्य सदस्य न्यायमूर्ति अब्दुल सत्तार कुरेशी, योजना आयोग के सदस्य डॉ. राज. चेलैय्या, श्री ललथनवाला (भू.पू. मुख्यमन्त्री) और श्री महेश प्रसाद (सलाहकार, योजना आयोग) हैं। श्री महेश प्रसाद ही इसके सचिव भी थे।

आयोग को सौंपे गये कार्य

(1) केन्द्रीय सरकार के करों का केन्द्र व राज्यों में विभाजन के संबंध में सिफारिश : आयोग से कहा गया है कि वह केन्द्रीय सरकार के करों का केन्द्र व राज्यों में विभाजन तथा राज्यों में आपस में विभाजन के सम्बन्ध में अपनी संस्तुति करे।

(2) ऋण सम्बन्धी स्थिति का अध्ययन : आयोग को यह भी कहा गया है कि वह 31 मार्च, 1989 की स्थिति के अनुसार राज्यों की ऋण स्थिति का मूल्यांकन करे और इस स्थिति को ठीक करने के लिए ऐसे रचनात्मक उपायों का सुझाव दे जिनको केन्द्र की वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये आवश्यक समझा जाये।

(3) विपत्तियों से पीड़ित राज्यों की सहायता : आयोग को यह भी कहा गया कि वह प्राकृतिक विपत्तियों से पीड़ित राज्यों द्वारा राहत कार्यों पर किये गये व्यय के सम्बन्ध में वित्त पोषण से सम्बन्धित नीति एवं प्रबन्ध की समीक्षा भी करे और अन्य जरूरी बातों के साथ अपव्यय से बचने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वर्तमान प्रबन्धकों में उन परिवर्तनों का सुझाव दे, जिन्हें वह उचित समझे।

नवें वित्त आयोग के द्वारा की गयी सभी सिफारिशें केन्द्रीय सरकार ने मान ली हैं। इस आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्न प्रकार हैं :

(1) आयकर (**Income-tax**) : आयोग ने कुल विभाजनीय कोष का 85 प्रतिशत राज्यों को देने की सिफारिश की है। आठवें आयोग का भी यही प्रतिशत था। इस प्रकार, इसमें कोई परिवर्तन आयोग ने नहीं किया है।

(2) केन्द्रीय उत्पाद कर (**Central Excise Duty**) : आयोग ने केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से होनी वाली आय का 45 प्रतिशत राज्यों को देने की सिफारिश की है। यही सिफारिश आठवें आयोग का भी थी। इस प्रकार इसमें भी परिवर्तन नहीं किया गया है।

(3) बिक्री कर के स्थान पर उत्पादन कर (**Additional Duties of Excise in Lieu of Sales Tax**) : इस मद पर वस्त्र, चीनी व तम्बाकू से होने वाली आय को राज्यों में आयोग द्वारा निर्धारित प्रतिशत के आधार पर बांटा जायेगा और

जैसे उत्तर प्रदेश को 14.657 %, मध्य प्रदेश को 7.164% आदि।

(4) रेलवे यात्री किराये पर लगाये गये कर के स्थान पर सहायता (**Grants in Lieu of Tax on Railway Passanger Faires**) : रेलवे से यात्रा करने वाले यात्रियों पर लगाये गये कर से प्राप्त आय को राज्यों में आयोग द्वारा निर्धारित प्रतिशत के आधार पर बांटा जायेगा। यह प्रतिशत विभिन्न राज्यों के लिये विभिन्न है। जैसे उत्तर प्रदेश को 15.438%, मध्य प्रदेश को 6.061%, महाराष्ट्र को 22.634% ।

(5) सहायता व्यय की वित्त व्यवस्था (**Financing of Relief Expenditure**) : आयोग ने सिफारिश की है कि प्रत्येक राज्य में राहत कोष गठित किये जायें जिसमें 1990–95 में प्रतिवर्ष 603 करोड़ रुपये जमा किये जायेंगे। केन्द्र गैर योजना अनुदान के रूप में इसमें 75% हिस्सा जमा करेगा। शेष 25% प्रत्येक राज्य को अपने निजी कोष संसाधनों से जुटाना होगा। यह कोष किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा होगा। इस कोष का उपयोग राज्य सरकारें अपने आपातकाल में कर सकेंगी। इसके लिये हर राज्य का वित्त सचिव उस कोष का प्रधान होगा।

(6) राज्यों को अनुदान (**Grant-in-Aid to State**) : राज्यों को गैर–योजना आगम खाते की कमी तथा कुछ योजना आगम खाते की कमी को पूरा करने के लिये आयोग द्वारा निर्धारित राशि को अनुदान के रूप में दिया जायेगा।

(7) राज्यों को कर्ज सहायता (**Debt Relief to States**) : राज्यों को कतिपय केन्द्रीय कर्जे माफ कर दिये जायेंगे। राज्यों को पिछले 5 वर्षों के ऋण तथा 31 मार्च, 1990 की बाकी को अगले 15 वर्षों में देने के लिये पुनः भुगतान तालिका बनाई जायेगी। राज्यों को दिये जाने वाले ऋण अब 15 वर्ष के स्थान पर 20 वर्ष के होंगे।

(8) अन्य सिफारिशें (**Other Recommendations**) : (i) केन्द्र सरकार के वित्त आयोग प्रभाग के लिये एक सलाहकारी समिति बनाई जानी चाहिये। (ii) केन्द्रीय सरकार को घाटे की वित्त–व्यवस्था के लिये पहले रिजर्व बैंक से सलाह कर राशि निर्धारित कर लेनी चाहिये, यदि घाटा इससे अधिक बढ़ता है तो उस पर संसद की स्वीकृति होनी चाहिये।

आयोग की रिपोर्ट

आयोग की मुख्य और अन्तिम रिपोर्ट 18 दिसम्बर, 1988 को राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई। यह रिपोर्ट 1990 से 1995 तक पाँच वित्तीय वर्षों से संबंधित है। इस रिपोर्ट को 12 मार्च, 1990 को लोकसभा के सामने प्रस्तुत किया गया। आयोग की कुछ प्रमुख सिफारिशें निम्न थीं :

(I) केन्द्रीय करों एवं शुल्कों का बंटवारा :

(1) आयकर : आयोग ने सिफारिश की कि आयकर के विभाजन योग्य भाग में राज्यों का भाग 85% बनाये रखना चाहिए। इसमें सबसे अधिक भाग 16.787% उत्तर प्रदेश का था।

(2) अतिरिक्त उत्पादन शुल्क : इसका 1.903% भाग केन्द्र शासित क्षेत्रों के लिये रखकर शेष को अन्य राज्यों में बांट देना चाहिये। सबसे अधिक उत्तर प्रदेश को 14.65% भाग मिलेगा।

(3) केन्द्रीय उत्पादन शुल्क : केन्द्रीय उत्पादन शुल्क की 45% राशि को प्रतिवर्ष विभिन्न राज्य सरकारों में एक निश्चित प्रतिशत में विभाजित किया जायेगा। यह प्रतिशत उत्तर प्रदेश के लिये 15.638%, बिहार के लिये 11.028% तथा मध्य प्रदेश के लिये 7.224% होगा।

(II) राहत व्ययों की वित्त व्यवस्था :

(1) आयोग ने सिफारिश की कि राहत व्ययों की वित्त व्यवस्था की वर्तमान पद्धति को एक नई पद्धति द्वारा बदला जायेगा जिसमें राज्य सरकारों की अधिक स्वायत्तता और हिसाब देयता होगी।

(2) प्रत्येक राज्य में प्रतिवर्ष एक आपदा राहत कोष बनाया जायेगा जिसमें 75% राशि केन्द्र सरकार देगी और 25% राज्य अपने साधनों से देगा।

(3) आपदा राहत कोष की राशि किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा होगी और यह राज्य सरकार के सामान्य आगम से अलग होगा।

(4) उपरोक्त कोष के प्रशासन के लिये प्रत्येक राज्य में मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक राज्य स्तरीय समिति का गठन किया जायेगा।

(5) इस कोष में वार्षिक वृद्धि और उसके ब्याज का उपयोग आपदाओं को हल करने में किया जायेगा।

(6) भोपाल में गैस पीड़ितों के पुनर्स्थापन तथा राहत कार्य पर व्यय की जाने वाली 163 करोड़ रुपये की राशि में 75% अंशदान केन्द्र सरकार द्वारा दिया जाना चाहिये और 25% राशि मध्य प्रदेश सरकार को स्वयं जुटाना चाहिये।

(III) अनुदान :

(1) सन् 1990 से 1995 की पाँच वर्ष की अवधि में गैर योजना आगम खातों के घाटे तथा कुछ मात्रा में योजना आगम खाता के घाटों की पूर्ति के लिये केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को 15017.18 करोड़ रुपये का अनुदान प्रदान किया जायेगा।

(2) केन्द्र आपदा राहत कोष के प्रतिवर्ष 603 करोड़ रुपये का अनुदान देगा जिसमें राजस्थान को 93 करोड़ रुपये, उत्तर प्रदेश को 67.5 करोड़ रुपये, आन्ध्र प्रदेश को 63.75 करोड़ रुपये, गुजरात को 23.75 करोड़ रुपये, मध्य प्रदेश को 22.75 करोड़ रुपये की राशि रखी गयी है। (3) भोपाल गैस पीड़ितों की सहायता के लिये केन्द्र सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली कुल 122.5 करोड़ रुपये की राशि 5 वार्षिक किस्तों में प्रदान की जायेगी।

(IV) ऋण राहत :

(1) सन् 1990–91 से केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को जो ऋण देगी उनकी परिपक्वता अवधि 20 वर्ष होनी चाहिये। ऋणों की आधी राशि ऐसी हो जिसमें 5 वर्ष का अनुग्रह अवधि की सुरक्षा हो।

(2) लघु बचत संग्रह के विरुद्ध केन्द्र सरकार द्वारा दिये गये ऋणों की शर्तों और दशा में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

(3) 1986 से 1989 की अवधि में अकाल के लिये राज्य सरकारों को जो ऋण दिये गये और 31 मार्च, 1989 तक अदत्त थे; उन्हें अपलिखित कर देना चाहिये। (4) राज्यों को पाँच वर्ष की अवधि के दौरान (1984–89) जो राज्य योजना ऋण अग्रिम के रूप में दिये गये थे और जो 31 मार्च, 1990 को अदत्त थे, उन्हें 15 वर्ष की अवधि में वापसी के लिये पुनः निर्धारित किया जाना चाहिये।

(5) भोपाल गैस दुर्घटना के संबंध में दिये गये 91.62 करोड़ रुपये के ऋण को अपलिखित कर देना चाहिये।

(V) अतिरिक्त उत्पादन शुल्क को मूल उत्पादन शुल्क के साथ मिलाना :

आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि अतिरिक्त शुल्क को मूल उत्पादन शुल्क में मिला देना चाहिये।

(VI) विविध सिफारिशें :

(1) सार्वजनिक ऋण में वृद्धि को कम करने के उपाय किये जाने चाहिये।

(2) आगम व्यय में कमी करने के लिये तुरन्त विशेष कदम उठाया जाना चाहिये।

(3) उन लोक उपक्रमों को दिये जाने वाले ऋणों, अनुदानों और उपदानों को कम करने का विचार करना चाहिये जो लगातार हानि पर चल रहे हैं।

(4) राजकोषीय अनुशासन की दृष्टि से केन्द्र और राज्य सरकारों के साथ एक समान व्यवहार किया जाना चाहिये। इसके लिये केन्द्र सरकार रिजर्व बैंक से परामर्श करके प्रत्येक राज्य सरकार के लिये घाटे की वित्त व्यवस्था की सीमा निर्धारित करेगी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंधों की दिशा में नवें वित्त आयोग की सिफारिशें काफी महत्वपूर्ण हैं तथा आयोग ने अपने सुझावों द्वारा राज्यों को न्याय और समानता के आधार पर सहायता देने का प्रावधान किया है।

दसवें वित्त आयोग की सिफारिशें (Recommendations of Tenth Finance Commission)

राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा ने जून, 1994 में श्री के. सी. पन्त की अध्यक्षता में दसवें वित्त आयोग का गठन किया। इस आयोग ने नवम्बर 1994 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट की सिफारिशें 1 अप्रैल, 1995 से 31 मार्च, 2000 तक लागू रहेंगी। इस आयोग को आयकर, संघीय उत्पादन शुल्क, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, कृषि भूमि को छोड़कर सम्पदा शुल्क, पटसन निर्यात शुल्क के बदले अनुदान राशि, विपदा सहायता कोष (Calamity Relief Fund) आदि के संदर्भ में सिफारिश प्रस्तुत करनी थी। दसवें वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों को मोटे तौर पर निम्न दो भागों में बांटा जा सकता है :

(i) कर संसाधनों के वितरण संबंधी सिफारिशें।

(ii) अनुदान संबंधी सिफारिशें ।

अब हम इन सिफारिशों की व्याख्या विस्तारपूर्वक करेंगे :

(1) कर संसाधनों के वितरण संबंधी सिफारिशें

(**Recommendations Regarding Distribution of Tax Resources**) :

(i) आयकर (**Income Tax**) : आयकर से प्राप्त होने वाली निबल प्राप्तियों में राज्यों का भाग प्रथम वित्त आयोग के समय 55% था जो सातवें, आठवें व नवें वित्त आयोग के समय बढ़कर 85% हो गया। दसवें वित्त आयोग ने राज्यों के अंश को घटाकर 77.5% कर दिया है। इस वित्त आयोग के अनुसार आयकर की प्राप्तियों का विभिन्न राज्यों में बंटवारा निम्न तरीके से किया जायेगा :

(क) 1971 की जनसंख्या के आधार पर 20 प्रतिशत;

(ख) 60% वितरण उच्चतम प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य (पंजाब) से राज्य विशेष की प्रति व्यक्ति आय अन्तर के आधार पर होगा।

(ग) राज्य के क्षेत्र के आधार पर 5%;

(घ) दसवें वित्त आयोग द्वारा तैयार संरचना के सूचकांक (index of infrastructure) के आधार पर 5% ; और

(ड़) राज्य द्वारा कर के लिए किये गये प्रयास के आधार पर 10% वितरण किया जायेगा। इस कर प्रयास की माप राज्य की प्रति व्यक्ति आय और राज्य का प्रति व्यक्ति कर आगम के अनुपात के आधार पर की जायेगी।

(ii) संघीय उत्पाद शुल्क (**Union Excise Duties**) : आठवें व नवें वित्त आयोगों ने संघीय उत्पाद शुल्क में राज्यों का अंश 45% रखा था जिसे दसवें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 47.5% कर दिया। ऐसा आयकर में राज्यों के

अंश में कमी के कारण क्षतिपूर्ति करने के लिए किया गया। इस 47.5% अंश में से 7.5% भाग का बंटवारा 'घाटे वाले राज्यों' (dcficit states) में किया जायेगा। संघीय उत्पाद शुल्क की निवल प्राप्तियों के 40% भाग का बंटवारा उसी आधार पर किया जायेगा जिस आधार पर आयकर की निबल प्राप्तियों का किया जाता है।

(iii) अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (**Additional Dutics of Excise**) : दिसम्बर 1956 में राष्ट्रीय विकास परिषद में हुए समझौते के आधार पर ही केन्द्रीय सरकार इन शुल्कों को लगाती है। इस समझौते के अनुसार कपड़ा, तंबाकू और चीनी पर बिक्री कर के स्थान पर संघीय उत्पाद शुल्क पर अधिभार (सरचार्ज) लगाया जायेगा और इससे प्राप्त राशि का विभिन्न राज्यों में वितरण राज्य में इन वस्तुओं के उपभोग के आधार पर किया जायेगा। परन्तु बाद में विभिन्न वित्त आयोगों ने वितरण के इस आधार को बदल दिया। दसवें वित्त आयोग के अनुसार अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों से प्राप्त होने वाली निबल प्राप्तियों का 50% भाग वर्ष 1991 में राज्य की जनसंख्या की जनगणना के आधार पर, अन्तिम तीन वर्षों (1987–88 से 1989–90) जिनके राज्य के घरेलू उत्पाद के आँकड़े उपलब्ध हैं, के औसत के आधार पर 40% भाग का वितरण तथा अन्तिम तीन वर्षों (1990–91 से 1992–93) में औसतन संग्रहित राज्य बिक्री कर के आधार पर 10% भाग का वितरण किया जायेगा। केन्द्र सरकार द्वारा 2.203% भाग संघीय क्षेत्रों के लिए अपने पास रखा जायेगा।

(iv) सम्पदा शुल्क (**Estate Duty**) : जहाँ तक शुल्क से प्राप्त आगम का राज्यों के बीच वितरण का संबंध है, नवें तथा दसवें वित्त आयोग ने इस संदर्भ में कोई सिफारिश नहीं की है। राज्यों के बीच आगम का वितरण पूर्ववत् किया जाता रहेगा।

(2) अनुदान संबंधी सिफारिशें (**Recommendations Regarding Grants-in-aid**) : संविधान की धारा 275 और 282 में अनुदान के बारे में कहा गया है। धारा 275 के अनुसार राज्यों को उनकी जरूरत के समय अनुदान दिया जायेगा और इसकी मात्रा का निर्धारण वित्त आयोगों द्वारा किया जायेगा। इसके विपरीत धारा 282 में किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अनुदान दिया जा सकता है तथा इसकी मात्रा का निर्धारण संघ सरकार अपनी स्वेच्छा से करेगी। जहाँ तक धारा 275 के अन्तर्गत अनुदान के वितरण का संबंध है, प्रथम वित्त आयोग ने राज्यों को अनुदान दिये जाने के कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया जो बजटीय आवश्यकता, कर प्रयास, व्यय में मितव्ययिता, विशिष्ट सेवाओं में मानक स्तर, विशिष्ट जिम्मेदारी और राष्ट्रीय महत्व के आधारभूत उद्देश्य आदि हैं। लेकिन व्यवहार में वित्त आयोग राज्यों की बजटीय आवश्यकता के आधार पर ही संसाधनों का हस्तांतरण करता रहा है। बाद में लगभग सभी वित्त आयोगों ने इसे काफी महत्व दिया है। दसवें वित्त आयोग ने राज्यों को आय कर व संघीय उत्पाद शुल्क से प्राप्त होने वाली धनराशि तथा अतिरिक्त उत्पाद शुल्क व रेलवे यात्री कर के बदले में मिलने वाले अनुमान के पश्चात् राज्यों को गैर–योजना आगम के कारण होने वाले घाटे की मात्रा का अनुमान लगाया है। आयोग के अनुसार सभी राज्यों का 1995–2000 की पंचवर्षीय अवधि में कुल घाटा 7582.68 करोड़ रुपये होगा।

आयोग ने धारा 275(1) के अन्तर्गत घाटे की मात्रा के समान ही अनुदान देने की सिफारिश की है। गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व पंजाब को कोई अनुदान नहीं दिया जायेगा। जिन 16 राज्यों को यह अनुदान प्राप्त होता है, सबसे अधिक धनराशि जम्मू व कश्मीर (1184.83 करोड़ रु.), उत्तर प्रदेश (982 करोड़ रुपये), हिमाचल प्रदेश (772.18 करोड़ रु.) व असम (712.03 करोड रु) को प्राप्त होगी। दसवें वित्त आयोग ने यह सिफारिश भी की है कि उपरोक्त राशि के अलावा राज्यों को 2608.50 करोड़ रु. प्रशासन के स्तर में सुधार व विशिष्ट समस्याओं के लिए, 4728.19 करोड़ रु. की धनराशि विपदा सहायता का व्यय वहन करने के लिए तथा संविधान के 73 व 74वें संशोधन के आधार पर स्थानीय निकायों का 5380.93 करोड़ रु. दिया जायेगा। दसवें वित्त आयोग के अनुसार केन्द्र से राज्यों को 1995

से 2000 की अवधि में 226643.30 करोड़ रुपये हस्तांतरित किये जायेंगे जिनमें से 206343 करोड़ रुपये करों से प्राप्तियों के रूप में तथा 20300.30 करोड़ रुपये अनुदान के रूप में दिये जायेंगे।

यद्यपि आयोग ने प्रयास किया है कि राज्यों, विशेषकर पिछड़े व घाटे वाले राज्यों को अधिक वित्तीय राशि का वितरण हो, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता है। आयकर की प्राप्तियों का विभिन्न राज्यों में जो वितरण किया गया है, उसका ज्यादा लाभ औद्योगिक रूप से विकसित राज्यों को हुआ है। दसवें वित्त आयोग के अनुसार महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु व पश्चिमी बंगाल को आयकर प्राप्तियों में से 24% भाग प्राप्त होगा। लगभग सभी वित्त आयोगों ने अनुदान की मात्रा निश्चित करते समय बजटीय घाटे को बहुत अधिक महत्व दिया है। यह देखने में आया है कि विकसित राज्य जानबूझकर बजट घाटा अधिक रखते हैं और फलस्वरूप अधिक अनुदान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार गरीब राज्यों की तुलना में अमीर राज्यों को अधिक अनुदान राशि प्राप्त हो जाती है। केन्द्र सरकार द्वारा विवेकाधीन कोटे से जो अनुदान राशि राज्यों को दी जाती है वह उनकी गरीबी के आधार पर नहीं दी जाती। यह केवल राजनीतिक महत्व के आधार पर दी जाती है। विवेकाधीन कोटे से दी जाने वाली अनुदान राशि से गरीब राज्यों को अमीर राज्यों की तुलना में कोई लाभ नहीं हो पाया है।

ग्यारहवां वित्त आयोग (Eleventh Finance Commision)

2000–2005 अवधि के लिए प्रो. ए. एम. खुसरो की अध्यक्षता वाले 11वें वित्त आयोग ने तीन चरणों में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, अंतरिम रिपोर्ट 15 जनवरी, 2000 को, अन्तिम रिपोर्ट 7 जुलाई, 2000 को एवं पूरक रिपोर्ट 31 अगस्त, 2000 को आयोग द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई। 7 जुलाई, 2000 आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की सिफारिशें सरकार द्वारा संसद में 27 जुलाई, 2000 को प्रस्तुत की गई। आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं :

- 2000–2001 से 2004–2005 की अवधि में निबल केन्द्रीय कर राजस्व के 29.5 प्रतिशल भाग का राज्यों को हस्तान्तरण।
- राज्यों को हस्तान्तरित की जाने वाली राजस्व राशि की अधिकतम सीमा केन्द्र के सकल कर एवं गैर–कर राजस्व का 37.5 प्रतिशत।
- स्थानीय निकायों के लिए प्रतिवर्ष 2000 करोड़ रूपए का केन्द्रीय अनुमान जिसमें 1600 करोड़ रूपये ग्रामीण निकायों के लिए व 400 करोड़ रूपये शहरी निकायों के लिए।
- आतंकवादी गतिविधियों से निपटने के लिए पंजाब को दिए गए विशेष ऋणों का पुनर्भुगतान 2005 तक निलम्बित।
- सेवाओं को व्यापक तौर पर कर के दायरे में लाने के साथ–साथ सेवा कर को समवर्ती सूची में शामिल करने का सुझाव।
- राजकोष पर पेंशन का भार कम करने के उपाय तलाशने का सुझाव। इस संबंध में सेनाओं से सेनानिवृत्त लोगों को अन्य सरकारी विभागों में नियुक्त करने का सुझाव (क्योंकि पेंशन राशि का एक बड़ा भाग रक्षा क्षेत्र पर व्यय होता है।)
- राजकोषीय घाटों को सीमित रखने के लिए बजटीय प्रणाली व बजट पर नियंत्रण का सुझाव।
- नेशनल फंड फॉर कैलेमिटी रिलीफ (NECR) के स्थान पर एक नये नेशनल कैलेमिटी कंटिजैंसी फंड (NCCF) की स्थापना का सुझाव।

केन्द्रीय करों के राजस्व का राज्यों को हस्तांतरण के संदर्भ में आयोग का कहना है कि विभाजनीय केन्द्रीय करों एंव शुल्कों के शुद्ध राजस्व का 28% राज्यों को हस्तांतरित किया जाए और चीनी, तंबाकू एंव टैक्सटाइल पर राज्यों द्वारा बिक्री कर न लगाए जाने के एवज में केन्द्रीय कर राजस्व का एक 1.5 % भाग (इस प्रकार कुल 29.5% भाग) राज्यों को हस्तांतरित किया जाए।

राजस्व के अन्तर्राज्यीय विभाजन के लिए निर्धारित किए गए फॉर्मूले में विभिन्न घटकों का भारांश निम्नवत् है।

जनसंख्या	10%
औसत प्रति व्यक्ति आय से विचलन	62.5%
क्षेत्रफल	7.5%
आधारित सरंचना सूचकांक	7.5%
कर प्रयास	5.0%
राजकोषीय अनुशासन	7.5%
जोड़	100%

15वें वित्त आयोग की अंतरिम रिपोर्ट

(Interim Report of 15th Finance Commission)

यहाँ 15वें वित्त आयोग की हालिया अंतरिम रिपोर्ट और वित्त आयोग की भूमिका की चर्चा की गई है।

संदर्भ (Reference)

भारतीय संविधान की संघीय व्यवस्था इसकी प्रमुख विशेषताओं में से एक है, जो केंद्र और राज्यों के बीच शक्ति तथा कार्यों के विभाजन की अनुमति देती है और इसी आधार पर कराधान की शक्तियों को भी केंद्र एवं राज्यों के बीच विभाजित किया जाता है। केंद्र और राज्यों के मध्य वित्त विभाजन को राजकोषीय संघवाद के रूप में भी परभाषित किया जाता है तथा वित्त आयोग इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ज्ञात हो कि भारतीय संविधान में इस बात की परिकल्पना की गई है कि वित्त आयोग देश के राजकोषीय संघवाद में संतुलन की भूमिका निभाएगा। हाल ही में 15वें वित्त आयोग ने संसद के समक्ष अपनी अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें केंद्र और राज्यों के मध्य राजस्व के विभाजन का विस्तृत विश्लेषण कर विभिन्न सिफारिशें की गई हैं।

सिफारिशें (Recommendations)

- एन.के. सिंह की अध्यक्षता में गठित 15वें वित्त आयोग ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट में कमोवेश पूर्ववर्ती आयोग (14वें वित्त आयोग) की सिफारिशों को संरक्षित रखा है। आयोग ने विभाजन योग्य राजस्व में वित्त वर्ष 2020–21 हेतु राज्यों के लिये 41 प्रतिशत हिस्सेदारी की सिफारिश की है, जो कि अब तक 42 प्रतिशत थी।
- वित्त आयोग के अनुसार, राज्यों की हिस्सेदारी में हो रही कटौती साधारणतया पूर्ववर्ती जम्मू–कश्मीर राज्य के हिस्से के बराबर है, जो कि 0.85 प्रतिशत थी।
- केंद्र की हिस्सेदारी में बढ़ोतरी का मुख्य कारण नवगठित केंद्रशासित प्रदेशों (जम्मू–कश्मीर और लद्दाख) की सुरक्षा तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।

- ज्ञात हो कि 15वें वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों में रक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये केंद्र द्वारा की गई धन राशि की मांग पर विचार करना भी शामिल था। इस संदर्भ में आयोग विशेषज्ञों की एक समिति के गठन पर विचार कर रहा है।

  वित्त आयोग द्वारा यह कार्य विभाजन योग्य हिस्से की गणना से पूर्व सकल कर राजस्व से एक अलग कोष बनाकर किया जा सकता है, किंतु ऐसा करने से राज्यों के हिस्से के राजस्व में कमी हो सकती है।

अन्य सिफारिशें

- आयोग ने कुशल सार्वजनिक वित्तीय प्रबंधन प्रणाली का वैधानिक ढाँचा प्रदान करने के लिये कानून का मसौदा तैयार करने हेतु एक विशेषज्ञ समूह के गठन की सिफारिश की है। आयोग का मानना है कि हमें सरकार के सभी स्तरों पर बजट, लेखांकन और अंकेक्षण हेतु मानक प्रदान करने वाले एक वैधानिक राजकोषीय ढाँचे की आवश्यकता है।
- वित्त वर्ष 2018–19 में राज्य सरकारों और केंद्र सरकार द्वारा प्राप्त कुल राजस्व देश की GDP का लगभग 17.5 प्रतिशत था। आयोग का विचार है कि देश का वास्तविक कर राजस्व, अनुमानित कर राजस्व स्तर से काफी कम है। इसके अलावा 1990 के दशक की शुरूआत से अब तक भारत की कर क्षमता काफी हद तक अपरिवर्तित रही है। इस संदर्भ में आयोग ने 3 प्रमुख सिफारिशें दी हैं : (1) कर आधार को व्यापक बनाना (2) कर की दरों को सरल बनाना (3) सरकार के सभी स्तरों पर कर प्रशासन की क्षमता और विशेषज्ञता को बढ़ाना।
- वित्त आयोग ने वित्तीय वर्ष 2020–21 के लिये स्थानीय निकायों को अनुदान के रूप में 90,000 करोड़ रुपए देने की सिफारिश की है, जो कि अनुमानित विभाजन योग्य राजस्व का 4.31 प्रतिशत है।
- इसके अतिरिक्त आयोग ने वस्तु एवं सेवा कर (GST) के क्रियान्वयन को लेकर रिफंड में देरी और पूर्वानुमान की अपेक्षा कर संग्रह में कमी जैसी कुछ चुनौतियों का भी उल्लेख किया है।

जनसंख्या के रूप में मापदंड की आलोचना

दक्षिणी राज्यों की सरकारों ने आयोग द्वारा उपयोग किये जाने वाले जनसंख्या मापदंड की आलोचना की है। 14वें वित्त आयोग ने राज्यों के हिस्से की गणना के लिये वर्ष 1971 और वर्ष 2011 के जनगणना आँकड़ों का उपयोग किया था और 2011 की अपेक्षा 1971 के आंकड़ों को अधिक महत्त्व दिया था। 14वें वित्त आयोग के विपरीत 15वें वित्त आयोग ने सिर्फ वर्ष 2011 के जनगणना आँकड़ों का प्रयोग किया है। आयोग ने तर्क दिया है कि मौजूदा राजकोषीय समीकरण को देखते हुए यह आवश्यक था कि नवीन जनगणना आंकड़ों का प्रयोग किया जाए। आलोचना करने वाले राज्यों का मानना है कि वर्ष 2011 के जनगणना आंकड़ों के उपयोग से उत्तर प्रदेश और बिहार जैसी बड़ी आबादी वाले राज्यों को ज्यादा हिस्सा मिल जाएगा, जबकि कम प्रजनन दर वाले छोटे राज्यों के हिस्से में काफी कम राजस्व आएगा। हिंदी भाषी उत्तरी राज्यों (बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और झारखंड) की संयुक्त जनसंख्या 47.8 करोड़ है, जो कि देश की कुल आबादी का 39.48 प्रतिशत है। इस क्षेत्र के करदाताओं की कर राजस्व में मात्र 13.89 प्रतिशत का योगदान है, जबकि उन्हें कुल राजस्व में से 45.17 प्रतिशत हिस्सा प्रदान किया जाता है। दूसरी ओर आंध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों को कम आबादी के कारण कुल राजस्व में भी काफी कम हिस्सा मिलता है, जबकि देश की कुल राजस्व प्राप्ति में उनका योगदान काफी अधिक रहता है।

15वाँ वित्त आयोग

- केंद्रीय मंत्रिमंडल ने 22 नवंबर, 2017 को 15वें वित्त आयोग के गठन को मंजूरी प्रदान की थी और 27 नवंबर, 2017 को एन.के. सिंह को 15वें वित्त आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। एन के. सिंह भारत सरकार के पूर्व सचिव एवं वर्ष 2008–14 तक बिहार से राज्यसभा के सदस्य भी रह चुके हैं।
- 15वें वित्त आयोग का कार्यकाल वर्ष 2020–25 तक है। वित्त आयोग की आवश्यकता क्यों ?
- केंद्र कर राजस्व का अधिकांश हिस्सा एकत्र करता है और कुछ निश्चित करों के संग्रह के माध्यम से बड़े पैमाने पर अर्थव्यवस्था में योगदान देता है।
- स्थानीय मुद्दों और जरूरतों को निकटता से जानने के कारण राज्यों की यह जिम्मेदारी है कि वे अपने लोकहित का ध्यान रखें।
- हालांकि इन सभी कारणों के चलते कभी–कभी राज्य का खर्च उनको प्राप्त होने वाले राजस्व से कहीं अधिक हो जाता है।
- इसके अलावा व्यापक क्षेत्रीय असमानताओं के कारण कुछ राज्य दूसरों की तुलना में पर्याप्त संसाधनों का लाभ उठाने में असमर्थ हैं। इन असंतुलनों को दूर करने के लिये वित्त आयोग राज्यों के साथ साझा किये जाने वाले केंद्रीय निधियों की सीमा निर्धारित करने की सिफारिश करता है।

राज्य वित्त आयोग (**State Finance Commission**)

अनुच्छेद 280 के तहत, केंद्र के वित्त आयोग की तर्ज पर 1993 से भारत के सभी राज्यों में राज्य वित्त आयोग की स्थापना की गयी थी जिसका उद्देश्य पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करना होता है। राज्य वित्त आयोग के निम्न कार्य हैं, राज्य में स्थित विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करना। राज्य में स्थित विभिन्न नगर निकायों और पंचायती राज्य संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न कदम उठाना।

अनुच्छेद 280 के तहत, केंद्र के वित्त आयोग की तर्ज पर 1993 से भारत के सभी राज्यों में राज्य वित्त आयोग की स्थापना की गयी थी जिसका उद्देश्य पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करना और इसके लिए निम्न रूपों में सिफारिश करना होता है –

(i) राज्य द्वारा लगाये गये करों, शुल्कों, टोल और फीस की विशुद्ध आय का पंचायतों तथा राज्य के बीच आवंटन करना जिसे दोनों के मध्य विभाजित किया जा सकता है और पंचायत के विभिन्न स्तरों पर खर्च या आवंटित किया जा सकता है।

(ii) पंचायतों को कितने कर, शुल्क, टोल और फीस सौंपी जा सकती है, का निर्धारण करना;

(iii) पंचायतों को अनुदान सहायता

राज्य वित्त आयोग के निम्नलिखित कार्य हैं :

- राज्य में स्थित विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करना।
- राज्य में स्थित विभिन्न नगर निकायों और पंचायती राज्य संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए

विभिन्न कदम उठाना।

- राज्य की संचित निधि से राज्य में स्थित विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों को धन आवंटित करना।
- वित्तीय मुद्दों के संबंध में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करना।
- केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकार को प्रदान की जानी वाली धनराशि का सदुपयोग करना।
- राज्य सरकार द्वारा लगाये गये करों, शुल्कों, टोल, और अधिशुल्कों का राज्य में स्थित विभिन्न नगर निकायों और पंचायती राज संस्थाओं की बीच आवंटन करना।
- कर, टोल, शुल्क, और फीस, जिसे राज्य में विभिन्न पंचायती राज संस्थाओं और नगर निकायों द्वारा लगाया जा सकता है, का निर्धारण करना।

संविधान के अनुच्छेद 243–1 का संबंध वित्त आयोग है जो पंचायतों के विशेष मूल्यांकन के लिए वित्तीय स्थिति समीक्षा करता है। भारत में पंचायती राज संस्था की अवधारणा और आकांक्षा को उपयोग में लाने के लिए राज्य वित्त आयोग की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि पर्याप्त स्वायत्तता और अधिकार के साथ अंतिम रैंक के अधिकारी तक वित्त आसानी या सावधानी से उपलब्ध होता है तो सत्ता के अंतरण को महसूस किया जा सकता है। इन पहलुओं के मद्देनजर राज्य वित्त आयोग की भूमिका को देखा जा सकता है –

सकारात्मक पक्ष :

- लोकतंत्र के विचार को बढ़ावा देना
- सरकार और शासन के वृहद विकासवादी पहलू।
- स्थानीय लोगों और स्थानीय नेताओं का सशक्तिकरण।
- दूरस्थ क्षेत्रों के लिए धनराशि का सही मात्रा और समय पर पहुंचना

नकारात्मक पक्ष :

- राज्य अपने वित्तीय अधिकारों का प्रयोग करने में अनिच्छुक रहे हैं।
- राज्य वित्त आयोग स्वायत्तता में बहुत अधिक हस्तक्षेप और अतिक्रमण का कार्य कर रहा है।
- राज्यों के पास स्वयं के खर्चे के लिए पर्याप्त धन नहीं है जिस वजह से धन राशि को साझा करने के कारण मामूली धनराशि का राज्य सरकार द्वारा हमेशा विरोध किया जाता है।
- अभी तक राज्य वित्त आयोग के विचार को सच्ची भावना में लागू नहीं किया जा सका है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पी॰के॰ भार्गव : भारत के केन्द्र राज्य स्त्रोत अंतरण, एकेडिमिक प्रेस, गुड़गांव, 1982
2. केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर वित्त आयोग की रिपोर्ट, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, नई दिल्ली, 1988
3. जी॰एच॰ थिम्मईया, वित्त आयोग तथा केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध, आशीषी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989

कुछ प्रश्न

- संघीय वित्त आयोग के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करो।
- 15वें वित्त आयोग की मुख्य सिफारिशों का वर्णन करो।
- राज्य वित्त आयोग की क्या भूमिका है? वर्णन करो।

Semester-I

Unit-IV

अध्याय–12 (Chapter-12)

राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003

(Fiscal Responsibility and Budget Management Act, 2003)

रूपरेखा :–

– अधिनियम की परिभाषा

– अधिनियम के प्रावधान

– अधिनियम की मोनिटरिंग के लिए समिति

– कुछ सन्दर्भ

– कुछ प्रश्न

♦♦♦

अध्याय–12

राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003

(Fiscal Responsibilities and Budget Management Act, 2003)

राजवित्तीय प्रबन्ध में अंतः विकासशील साम्या और पर्याप्त राजस्व अधिशेष प्राप्त करके और मुद्रा नीति के प्रभावी संचालन में राजवित्तीय बाधाओं को दूर करके और केन्द्रीय सरकार के उधारों, ऋणों और घाटों पर सीमाओं द्वारा राजवित्तीय धारणीयता से संगत विवेकपूर्ण ऋण प्रबंधन, केन्द्रीय सरकार की राजवित्तीय संक्रियाओं में और पारदर्शिता तथा मध्यम कालिक रूपरेखा में राजवित्तीय नीति का संचालन करके दीर्घकालीन समष्टि आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय सरकार के उत्तरदायित्व का तथा उससे संसक्त या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम भारत गणराज्य के चौवनवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ –

(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम राजवित्तीय उत्तरदायित्व और बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003 है।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जिसे केन्द्रीय सरकार इस निमित्त, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे।

2. परिभाषाएं :

(क) राजवित्तीय घाटा से किसी वित्तीय वर्ष के दौरान भारत की संचित निधि से, ऋण के प्रतिसंदाय को अपवर्जित करते हुए, निधि में कुल प्राप्तियों से (ऋण संबंधी प्राप्तियों को अपवर्जित करते हुए) कुल संवितरण का आधिक्य अभिप्रेत है;

(क) वास्तविक राजस्व घाटे से राजस्व घाटे और पूंजी आस्तियों के सृजन के लिए अनुदानों के बीच का अंतर अभिप्रेत है।

(ख) राजवित्तीय संकेतकों से केंद्रीय सरकार की राजवित्तीय स्थिति के मूल्यांकन के लिए संख्यात्मक सीमाएं और सकल देशी उत्पाद का अनुपात जैसे उपाय, जो विहित किए जाएं, अभिप्रेत हैं;

(ख) पूंजी आस्तियों के सृजन के लिए अनुदान से केंद्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों, सांविधानिक प्राधिकरणों या निकायों, स्वायत्त निकायों, स्थानीय निकायों और ऐसी पूंजी आस्तियों के सृजन के लिए अन्य स्कीम कार्यान्वयन अभिकरणों को, जो उक्त इकाइयों के स्वामित्वाधीन हैं, दिया गया सहायता अनुदान अभिप्रेत है;

(ग) विहित से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(घ) रिजर्व बैंक से भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 (1934 का 2) की धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित भारतीय रिजर्व बैंक अभिप्रेत है;

(ड़) राजस्व घाटे से राजस्व व्यय और राजस्व प्राप्तियों के बीच का अंतर अभिप्रेत है जो केन्द्रीय सरकार की आस्तियों में तत्समान वृद्धि के बिना उस सरकार के दायित्वों में वृद्धि इंगित करता है;

(च) कुल दायित्व से भारत की संचित निधि और भारत के लोक लेखा के अधीन दायित्व अभिप्रेत हैं।

3. संसद् के समक्ष रखे जाने वाले राजवित्तीय नीति संबंधी विवरण –

(1) केन्द्रीय सरकार प्रत्येक वित्तीय वर्ष में वार्षिक वित्तीय विवरण और (मध्यकालिक व्यय रूपरेखा विवरण के लिए अनुदान मांगों) के साथ निम्नलिखित विवरण संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखेगी, अर्थात् :–

(i) मध्यम कालिक राजवित्तीय नीति संबंधी विवरण;

(ii) राजवित्तीय नीति युक्ति विवरण;

(iii) बृहत् आर्थिक रूपरेखा विवरण;

(iv) मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण

1 [(1क) उपधारा (1) के खंड (क) से खंड (ग) में निर्दिष्ट विवरणों के साथ

अंतर्निहित धारणाओं के विस्तृत विश्लेषण वाला मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण होगा।

(1ख) केंद्रीय सरकार, उपधारा (1) के खंड (घ) में निर्दिष्ट मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण को संसद् के उस सत्र के, जिसमें खंड (क) से खंड (ग) में निर्दिष्ट नीति संबंधी विवरणों को उपधारा (1) के अधीन रखा जाता है, ठीक आगामी सत्र में संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखेगी।]

(2) मध्यम कालिक राजवित्तीय नीति संबंधी विवरण में अंतर्निहित धारणाओं के प्रति विनिर्देश सहित विहित राजवित्तीय संकेतकों के लिए एक तीन वर्षीय चल लक्ष्य उपवर्णित होगा।

(3) विशिष्टतया और उपधारा (2) में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, मध्यम कालिक राजवित्तीय नीति विवरण में निम्नलिखित से संबंधित वहनीयता का निर्धारण सम्मिलित होगा– (i) राजस्व प्राप्तियों और राजस्व व्यय के बीच संतुलनय

(ii) उत्पादक आस्तियों के जनन के लिए बाजार उधार सहित पूंजी प्राप्तियों का प्रयोग।

(4) राजवित्तीय नीति युक्ति विवरण में, अन्य बातों के साथ–साथ, निम्नलिखित होगा,–

(क) कराधान, व्यय, बाजार–उधार और अन्य दायित्वों, उधार देने और विनिधान, प्रशासित माल और सेवाओं के मूल्य निर्धारण, प्रतिभूतियों तथा ऐसे अन्य क्रियाकलापों जैसे हामीदारी और प्रत्याभूतियां, जिनकी संभावी बजटीय विवक्षाएं हैं, के वर्णन से संबंधित आगामी वित्तीय वर्ष के लिए केन्द्रीय सरकार की नीतियां;

(ख) राजवित्तीय क्षेत्र में आगामी वित्तीय वर्ष के लिए केन्द्रीय सरकार की कार्य–नीति संबंधी प्राथमिकताएं;

(ग) कराधान, सहायकी, व्यय, प्रशासित मूल्य–निर्धारण और उधारों से संबंधित राजवित्तीय उपायों में किसी मुख्य विचलन के लिए मुख्य राजवित्तीय उपाय और मूलाधार;

(घ) एक मूल्यांकन कि केन्द्रीय सरकार की चालू नीतियां धारा 4 में उपवर्णित राजवित्तीय प्रबंध सिद्धांतों और मध्यम कालिक राजवित्तीय नीति विवरण में उपवर्णित उद्देश्यों के किस प्रकार अनुरूप है।

(5) बृहत् आर्थिक रूपरेखा विवरण में अंतर्निहित धारणाओं के विनिर्देश के साथ अर्थव्यवस्था की वृद्धि की संभावनाओं

का निर्धारण अंतर्विष्ट होगा।

(6) विशिष्टतया और पूर्वगामी उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, बृहत् आर्थिक रूपरेखा विवरण में निम्नलिखित के संबंध में निर्धारण अंतर्विष्ट होगा–

(क) सकल देशी उत्पाद में वृद्धि;

(ख) राजस्व अतिशेष और सकल राजवित्तीय अतिशेष में यथाउपदर्शित संघ सरकार का राजवित्तीय अतिशेषय

(ग) संदायों के अतिशेष के चालू लेखा अतिशेष में यथाउपदर्शित अर्थव्यवस्था

का बाह्य सेक्टर अतिशेष।

(6क) (क) मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण में अंतर्निहित धारणाओं और अंतर्वलित जोखिम के विनिर्देश वाले विहित व्यय संकेतकों के लिए एक तीन वर्षीय चल लक्ष्य उपवर्णित होगा।

(ख) विशिष्टतया और खंड (क) में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण में अन्य बातों के साथ–साथ निम्नलिखित अंतर्विष्ट होगा–

(i) प्रमुख नीति परिवर्तनों की, जिनमें नई सेवा, सेवा के नए साधन, नई स्कीमें और कार्यक्रम अंतर्वलित हैं, व्यय प्रतिबद्धता;

(ii) स्पष्ट समाश्रित दायित्व, जो बहुवर्षीय समय–सीमा के लिए अनुबंधित वार्षिकी संदायों के रूप में हैं;

(iii) पूंजी आस्तियों के सृजन के लिए अनुदानों का अलग–अलग विस्तृत ब्यौरा।,

(7) उपधारा (1) में निर्दिष्ट मध्यम कालिक राजवित्तीय नीति संबंधी विवरण,

[राजवित्तीय नीति युक्ति विवरण, मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण] और बृहत् आर्थिक रूपरेखा विवरण ऐसे प्ररूप में होंगे जो विहित किए जाएं।

4. राजवित्तीय प्रबंध सिद्धांत –

[(1) केन्द्रीय सरकार राजवित्तीय घाटे, राजस्व घाटे तथा वास्तविक राजस्व घाटे को कम करने के लिए ऐसे समुचित उपाय करेगी, जिससे (31 मार्च, 2018) तक वास्तविक राजस्व घाटे को समाप्त किया जा सके और तत्पश्चात् पर्याप्त वास्तविक राजस्व अधिशेष का निर्माण किया जा सके और उसके पश्चात् जैसा केंद्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित किया जाए, राजस्व घाटे को 3(31 मार्च, 2018) तक और उसके पश्चात् सकल देशी उत्पाद के दो प्रतिशत से अनधिक तक भी लाया जा सके।]

[(2) केन्द्रीय सरकार, उसके द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा, –

[(क) इस अधिनियम के प्रारंभ से आरम्भ होने वाली और 3 [31 मार्च, 2018], को समाप्त होने वाली अवधि के दौरान 2[राजवित्तीय घाटे, राजस्व घाटे और वास्तविक राजस्व घाटे] को कम करने के लिए वार्षिक लक्ष्य विनिर्दिष्ट करेगी;

(ख) सकल देशी उत्पाद के प्रतिशत के तौर पर प्रतिभूतियों और कुल दायित्वों के रूप में प्राक्कलित आकस्मिक दायित्वों की धारणा करते हुए वार्षिक लक्ष्य विनिर्दिष्ट करेगा : परन्तु राजस्व घाटा, 2. [वास्तविक राजस्व घाटा] और राजवित्तीय घाटा, राष्ट्रीय सुरक्षा या राष्ट्रीय आपदा के आधार या आधारों अथवा ऐसे अन्य आधारों के कारण जिन्हें केन्द्रीय सरकार विनिर्दिष्ट करे, ऐसे लक्ष्यों से अधिक हो सकेगा; परन्तु यह और कि पहले परंतुक में विनिर्दिष्ट

आधार या आधारों को, ऐसे घाटे की रकम पूर्वोक्त लक्ष्यों से अधिक होने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा।

5. रिजर्व बैंक से उधार –

(1) केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक से उधार नहीं लेगी।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक से, ऐसे करारों के अनुसार, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के साथ किए जाएं, किसी वित्तीय वर्ष के दौरान नकद प्राप्तियों से अधिक नकद संवितरण के अस्थायी आधिक्य को पूरा करने के लिए अग्रिम के रूप में उधार ले सकेगी; परन्तु किसी वित्तीय वर्ष में नकद प्राप्ति से अधिक नकद संवितरण के अस्थायी आधिक्य को पूरा करने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा दिए गए अग्रिमों का प्रतिसंदाय भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 (1934 का 2) की धारा 17 की उपधारा (5) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, रिजर्व बैंक, 1 अप्रैल, 2003 से प्रारंभ होने वाले वित्तीय वर्ष और पश्चात्वर्ती दो वित्तीय वर्षों के दौरान केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गमनों में अभिदाय कर सकेगा; परन्तु रिजर्व बैंक इस उपधारा में विनिर्दिष्ट अवधि पर या उसके पश्चात्, धारा 4 की उपधारा (2) के पहले परंतुक में विनिर्दिष्ट आधार या आधारों के कारण केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गमों में, अभिदाय कर सकेगी।

(4) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, रिजर्व बैंक, द्वितीयक बाजार में केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय कर सकेगा।

6. राजवित्तीय पारदर्शिता के लिए उपाय –

(1) केन्द्रीय सरकार, लोकहित में अपनी राजवित्तीय संक्रियाओं में अधिक पारदर्शिता को सुनिश्चित करने तथा वार्षिक वित्तीय विवरण और अनुदानों की मांग को तैयार करने में गोपनीयता को यथासाध्य कम करने के लिए युक्तियुक्त उपाय करेगी।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्रीय सरकार, वार्षिक वित्तीय विवरण और अनुदानों की मांग प्रस्तुत करते समय, ऐसा प्रकटन ऐसे प्ररूप में करेगी, जो विहित किया जाए।

7. अनुपालन करवाने के लिए उपाय –

(1) वित्त मंत्रालय का भारसाधक मंत्री प्रत्येक तिमाही पर बजट से संबंधित प्राप्तियों और व्यय के रुखों का पुनर्विलोकन करेगा और ऐसे पुनर्विलोकन के परिणाम को संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखेगा।

(2) जब कभी, किसी वित्तीय वर्ष में किसी अवधि के दौरान राजवित्तीय नीति युक्ति विवरण में और इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों में वर्णित पूर्व विनिर्दिष्ट स्तरों से अधिक या तो राजस्व में गिरावट आती है या अधिक व्यय होता है तब केन्द्रीय सरकार राजस्व में वृद्धि करने के लिए या व्यय में कमी करने के लिए (जिसके अंतर्गत किसी अधिनियम के अधीन भारत की संचित निधि में से संदत्त और उपयोजित किए जाने के लिए प्राधिकृत राशियों में कटौती करना भी है जिससे कि ऐसी धनराशि के विनियोग के लिए उपबंध किया जा सके) समुचित उपाय करेगीः परंतु इस उपधारा में की कोई बात संविधान के अनुच्छेद 112 के खंड (3) के अधीन भारत की संचित निधि पर भारित व्यय या किसी ऐसे अन्य व्यय को, जो किसी करार या संविदा के अधीन उपगत किए जाने के लिए अपेक्षित है या ऐसे अन्य व्यय को, जिसे स्थगित या कम नहीं किया जा सकता, लागू नहीं होगी।

(3)(क) इस अधिनियम में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार पर आने वाली बाध्यताओं को पूरा करने में कोई भी विचलन संसद् के अनुमोदन के बिना अनुज्ञेय नहीं होगा।

(ख) जहां अकल्पित परिस्थितियों के कारण, इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार पर आने वाली बाध्यताओं को पूरा करने में कोई विचलन हुआ है वहां वित्त मंत्रालय का भारसाधक मंत्री संसद् के दोनों सदनों में निम्नलिखित के बारे में स्पष्टीकरण देते हुए कथन करेगा–

(i) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार पर आने वाली बाध्यताओं को पूरा करने में कोई विचलन;

(ii) क्या ऐसा विचलन तात्त्विक है और वह वास्तविक या संभावित बजट परिणामों से संबंधित है; और

(iii) ऐसे उपचारी उपाय जिन्हें करने का केन्द्रीय सरकार का प्रस्ताव है।

[7क. पुनर्विलोकन रिपोर्टों का रखा जाना – केंद्रीय सरकार, भारत के नियंत्रक–महालेखापरीक्षक को इस अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन का, ऐसे आवधिक रूप से, जो अपेक्षित हो, पुनर्विलोकन करने के लिए, न्यस्त कर सकेगी और ऐसे पुनर्विलोकनों को संसद् के दोनों सदनों के पटल पर रखा जाएगा।]

नियम बनाने की शक्ति –

(1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए, नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों की बाबत उपबंध किए जा सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 4 की उपधारा (2) के अधीन विनिर्दिष्ट किए जाने वाले वार्षिक लक्ष्य;

(ख) धारा 3 की उपधारा (2) के प्रयोजन के लिए विहित किए जाने वाले राजवित्तीय संकेतक;

[(ख क) धारा 3 की उपधारा (6क) के खंड (क) के अधीन अंतर्निहित धारणाओं और अंतर्वलित जोखिमों के विनिर्देशों सहित व्यय संकेतक;

(ग) धारा 3 की उपधारा (7) में निर्दिष्ट मध्यम कालिक राजवित्तीय नीति विवरण, ख्राजवित्तीय नीति युक्ति विवरण, मध्यम कालिक व्यय रूपरेखा विवरण, और बृहत् आर्थिक रूपरेखा विवरण के प्ररूप;

2 [(गक) धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन 31 मार्च, 2015 के पश्चात् विनिर्दिष्ट किए जाने वाला राजस्व घाटे का प्रतिशत;,

(घ) प्रकटन और वह प्ररूप जिसमें धारा 6 की उपधारा (2) के अधीन ऐसे प्रकटन किए जाएंगे; (ड़) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या जो विहित किया जाए।

9. संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखे जाने वाले नियम – इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह ऐसी कुल तीस दिन की अवधि के लिए सत्र में हो, जो एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकती है, रखा जाएगा और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्र के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं या दोनों सदन इस बात से सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो ऐसा नियम, यथास्थिति, तत्पश्चात् केवल ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा या उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, तथापि उस नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

10. सद्भावपूर्वक किए गए कार्य का संरक्षण – इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन

सद्भावपूर्वक की गई या किए जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी।

11. सिविल न्यायालय की अधिकारिता का वर्जन – किसी भी सिविल न्यायालय को इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा की गई किसी कार्रवाई या उसके किसी विनिश्चय की वैधता को प्रश्नगत करने की अधिकारिता नहीं होगी।

12. वर्जित न की गई अन्य विधियों का लागू होना – इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकरण में।

13. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और उस कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत हों : परंतु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. एम॰वाई॰ खान और पी॰के॰ जैन, फाइनेन्शियल मनेजमेन्ट, नई दिल्लीः टाटा मेकग्रा हिल, 1983
2. ईज़रा सोलोमन और जॉन॰ जे॰ परिंगल, एन इन्ट्रोडक्शन टू फाइनेन्शियल मेनेजमैन्ट, नई दिल्लीः पी॰एच॰आई॰, 1978

कुछ प्रश्न

- राजवित्तीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003 के मुख्य प्रावधानों का वर्णन करो।
- क्या राजवित्तीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबन्ध अधिनियम, 2003, वित्तीय घाटे को नियन्त्रित रखने में सफल रहा है? वर्णन करो।

Semester-I

Unit-IV

अध्याय–13 (Chapter-13)

इकाई – वित्त प्रशासन की समस्याएं तथा सम्भावनाएं रूपरेखा :–

– उत्पत्ति

– अर्थ

– विशेषताएं

– बदलती प्रवृत्तियां

– सीमाएं

– सारांश

– उपयोगी पुस्तकें

– कुछ प्रश्न

♦♦♦

अध्याय–13

प्रशासन की समस्याएं और सम्भावनाएं

(Problems and Prospects of Financial Administration)

वित्त व्यवसाय का मूलाधार है। कोई भी व्यवसाय वित्त के बगैर न तो प्रारम्भ किया जा सकता है और न उसका विकास सम्भव है। व्यवसाय की सफलता वित्त की पर्याप्त एवं वित्त के प्रभावपूर्ण प्रबंध पर निर्भर करती है। व्यक्तिगत व्यावसायिक संगठनों (एकाकी स्वामित्व एवं साझेदारी संगठनों) की वित्तीय व्यवस्था करना सरल होता है। इनका स्वरूप व्यक्तिगत होता है तथा इनकी वित्तीय आवश्यकताएँ सीमित होती हैं। परन्तु व्यावसायिक संगठनों का स्वरूप अव्यक्तिगत होने पर उनकी वित्तीय व्यवस्था करना अधिक कठिन हो जाता है। निगम उपक्रमों की वित्त व्यवस्था उनके अव्यक्तिगत स्वरूप तथा वित्त की अधिक मात्रा में आवश्यकता के कारण अत्याधिक जटिल एवं कठिन होती है। वित्तीय प्रबंध इन जटिलताओं एवं कठिनाइयों का समाधान करता है। यहाँ पर हम पहले वित्तीय प्रबंध का अर्थ स्पष्ट करने से पूर्व वित्त के प्रकार तथा उनका अर्थ जानना चाहेंगे। सामान्यतः वित्त के निम्न दो प्रकार बताये गये हैं:

1. सार्वजनिक वित्त (Public Finance) तथा
2. निजी वित्त (Private Finance)

सार्वजनिक वित्त का तात्पर्य राजकीय वित्त से होता है। सार्वजनिक वित्त में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न सार्वजनिक सत्ताएँ किस प्रकार अपनी वित्तीय व्यवस्था करती हैं। सार्वजनिक सत्ताओं में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय निकाय सम्मिलित होते हैं। सार्वजनिक वित्त में यह देखा जाता है कि सार्वजनिक सत्ताएँ किस प्रकार अपनी आय प्राप्त करती हैं। तथा इस आय को किस प्रकार सार्वजनिक हित में व्यय करती हैं। सार्वजनिक वितरण में सार्वजनिक ऋण को भी शामिल किया जाता है। संक्षेप में, सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक आय, व्यय तथा ऋण सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

निजी वित्त का तात्पर्य निजी व्यक्तियों एव संस्थाओं के वित्त से होता है। इसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न व्यक्ति तथा निजी संस्थाएँ किस प्रकार आय प्राप्त करती हैं तथा उस आय को किस प्रकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यय करती हैं। निजी वित्त को तीन उप–विभागों में बाँटा जा सकता है–वैयक्तिक वित्त (Personal Finance) व्यावसायिक वित्त (Business Finance) तथा गैर–लाभ कमाने वाली संस्थाओं का वित्त (Non-profit Earning Institution Finance)। वैयक्तिक वित्त में व्यक्ति के द्वारा दैनिक कार्यों में धन के प्रबंध की आधारभूत बातों का अध्ययन किया जाता है। व्यावसायिक वित्त में लाभोपार्जन के उद्देश्य से संचालित किये जाने वाले उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। गैर–लाभ कमाने वाली संस्थाओं के वित्त में शैक्षिक, मूर्त तथा धार्मिक संस्थाओं के वित्त संबंधी सिद्धांतो एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

वित्त के उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त आज वित्त के नये–नये क्षेत्र वित्त की विशिष्ट आवश्यकताओं एवं समस्याओं के समाधान हेतु विकसित हुए हैं जैसे बड़े उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था के लिए संस्थागत वित्त (Institutional Finance) का विकास हुआ है। अनेक विशिष्ट औद्योगिक वित्त संस्थाएँ इस कार्य के लिए स्थापित हुई

हैं जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, राज्य वित्त निगमें आदि। दुनिया के सभी देशों का विदेशी व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। विदेशी व्यापार की सुगम वित्त व्यवस्था तथा जटिल प्रक्रियाओं को हल करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय वित्त (International Finance) का विकास हुआ तथा अनेक नई राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ वित्त की व्यवस्था हेतु स्थापित की गई हैं। विदेशी मुद्रा एवं विनियम सम्बन्धी समस्यायें भी इसी के अन्तर्गत हल की जाती हैं।

व्यावसायिक वित्त का संबंध लाभोपार्जन के उद्देश्य से संचालित किये जाने वाले उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था करने से होता है। यह एक व्यापक शब्द है, इसका वास्तविक अर्थ समझने के लिए व्यवस्था एवं वित्त शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है। सामान्य बोलचाल की भाषा में व्यवसाय का अर्थ किसी छोटी अथवा बड़ी दुकान अथवा स्टोर में वस्तुओं के बेचने से लिया जाता है। परन्तु यह व्यवसाय का बहत संकुचित अर्थ है। व्यवसाय का विस्तृत अर्थ उन समस्त मानवीय क्रियाओं से है जो लाभ के उद्देश्य से संचालित की जाती हैं और जिनके द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पादित की जाती हैं। इस अर्थ में कृषि, मत्स्य पालन, खनन, औद्योगिक, वाणिज्यिक तथा परिवहन के कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत आते हैं। इस तरह वकालत, डॉक्टरी, नर्सिंग, लेखांकन आदि सेवाएँ व्यवसायिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। वित्त का तात्पर्य मुद्रा से होता है तथा वित्त में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किस प्रकार परिवार, व्यवसायी, विनियोक्ता, सरकारें तथा वित्तीय संस्थाएँ अपनी मुद्रा का प्रबन्ध अथवा संचालन करती हैं। अतः अब हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक वित्त का तात्पर्य समस्त प्रकार के व्यावसायिक संगठनों की समस्त क्रियाओं की वित्तीय व्यवस्था करना होता है। व्यावसायिक वित्त के व्यावसायिक आवश्यकताओं के लिए विभिन्न साधनों से उचित शर्तों पर वित्त प्राप्त करना तथा व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उसका उपयोग एवं प्रबंध करना शामिल है।

व्यावसायिक वित्त का प्रादुर्भाव (Evolution of Business Finance)

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व तक वित्त का अध्ययन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता था, परन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के बाद छोटे उद्योगों के विलीनीकरण द्वारा बड़े उद्योगों की स्थापना होने से प्रबंधकों के सामने बड़े उद्योगों की वित्तीय व्यवस्था करने की समस्याएँ उत्पन्न हुई। इन समस्याओं के समाधान में वित्त विषय का विशेष योगदान होने के कारण वित्त का एक पृथक् विषय के रूप में अध्ययन किया जाने लगा। अधिकांश बड़े उपक्रम, निगम पद्धति पर संगठित होने के कारण 'निगम वित्त' के नाम से अनेक पुस्तकें इस विषय पर प्रकाशित हुईं। 'निगम वित्त' नामक पुस्तकों में निगमों के प्रवर्तन, पूँजीकरण, पूँजी ढाँचे के चुनाव, प्रतिभूतियों के विपणन, वित्तीय अनुबंधों की शर्तों आदि का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। इसलिए व्यावसायिक वित्त विषय प्रारम्भ में वर्णनात्मक विषय था। विषय के प्रारम्भिक विकासकर्ताओं में ग्रीव, मीड, डेविंग, लिओन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

तीसा की महान मंदी के पूर्व तक "निगम–वित्त" में विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों से वित्तीय साधन प्राप्त करने तथा वित्तीय संस्थाओं के कार्यों एवं भूमिका को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में अमेरिका के आर्थिक पटल पर रेडियो, रसायन, इस्पात, मोटरगाड़ी जैसे नवीन उद्योगों का तेजी से विकास हुआ तथा राष्ट्रीय विज्ञापन, उन्नत वितरण विधियों एवं ऊँचा लाभों का महत्त्व बढ़ गया। तीसा की महान् मंदी के परिणामस्वरूप अधिकांश व्यवसायों के सामने तरलता की विकट समस्या उत्पन्न हो गई थी। व्यवसायी लोग अपने व्यवसाय की दिन–प्रति–दिन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से वित्त प्राप्त करने में अत्याधिक कठिनाईयाँ अनुभव करने लगे थे। इसलिए उन्हें तरलता की माँग को पूरा करने के लिए अपने निर्मित माल के स्टॉक को शीघ्र तथा अधिक मात्रा में बेचने के लिए विवश होना पड़ता था, परन्तु माल के मूल्यों में कमी के कारण उन्हें पर्याप्त वित्त उपलब्ध नहीं हो पाता था। इससे फर्मों के वित्तीय प्रबंधन में अनेक परिवर्तन हुए। वित्तीय

नियोजन एवं नियंत्रण को अधिक महत्व दिया जाने लगा। मंदी के समय वित्तीय प्रबंधकों द्वारा व्यावसायिक संगठनों को दिवालिया तथा बंद होने की समस्या से बचाने के लिए रक्षात्मक नीति का अनुसरण किया गया। भूतकाल की तरह से व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र में इस दशक में भी फर्मों के जीवन काल में घटित होने वाले वित्तीय संकटों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उद्योगों के पुनर्गठन ने शान्तिकालीन आवश्यकताओं के लिए व्यवसाय के सामने पूँजी बाजार में बड़ी मात्रा में पूँजी प्राप्त करने की समस्याएँ उत्पन्न की। बीसवीं शताब्दी के इस पंचक दशक में भी वित्तीय विशेषज्ञों ने भूतकाल की तरह से उद्योगों को ऐसे वित्तीय ढाँचे को चुनने को अधिक महत्व प्रदान किया जो युद्धोपरान्त के समायोजनों के दबाव एवं भार को वहन कर सकें। इस प्रकार व्यावसायिक वित्त को परम्परागत धारण, जिसका विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हुआ था, 1950 तक अत्याधिक लोकप्रिय रही। सन् 1950 के बाद अनेक नवीन परिवर्तन हुए जिनके कारण व्यावसायिक वित्त की परम्परागत विचारधारा का महत्त्व समाप्त हो गया तथा व्यावसायिक वित्त की नवीन विचारधारा का विकास हुआ। बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में अमेरिका की अर्थव्यवस्था में एक तरफ व्यावसायिक क्रियाओं में तेजी से वृद्धि हुई तथा दूसरे तरफ निराश स्टॉक एक्सचेन्ज तथा कठोर मुद्रा बाजार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। ऐसी स्थिति में लाभ विश्लेषण की तुलना में रोकड़ विश्लेषण को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। वित्तीय विशेषज्ञों को यह दायित्व सौंपा गया कि वे फर्म के रोकड़ प्रवाहों को इस प्रकार नियन्त्रित करें जिससे फर्म अपने उद्देश्यों को संतोषप्रद ढंग से पूरा कर सके तथा अपने दायित्वों को देय होने पर चुका सके। अब संस्थागत तथा बाह्य वित्त की अपेक्षा फर्म के दिन–प्रति–दिन के कार्यों की वित्तीय व्यवस्था को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाने लगा। रोकड़ पूर्वानुमान, रोकड़ बजट, प्राप्य बिलों के प्रबंध, क्रय विश्लेषण तथा सामग्री नियन्त्रण आदि को वित्तीय प्रबंध में विशेष स्थान दिया जाने लगा।

इस शताब्दी के छठे दशक में व्यावसायिक वित्त के प्रति अपनाये जाने वाले दृष्टिकोण में जो परिवर्तन दिखायी दिया था वह 1960 के बाद अधिक तेज हो गया। 1960 के बाद प्रतिष्ठित उद्योगों में लाभ के अवसर कम होने तथा मुद्रा बाजार की आसान स्थिति के कारण पूंजी को ऐसे क्षेत्रों में विनियोजित करने की समस्या उत्पन्न हुई जिसमें अधिक लाभ के अवसर विद्यमान हों। ऐसे समय में वित्तीय प्रबंधकों को यह दायित्व सौंपा गया कि वे ऐसी औद्योगिक परियोजना का चुनाव करें जिससे भविष्य में फर्म को अनुकूल लाभ प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वित्तीय प्रबंधकों द्वारा पूँजी बजट परियोजना मूल्यांकन, पूँजी व्यय नियंत्रण जैसी नई तकनीकों का विकास किया गया। अब व्यावसायिक वित्त का अध्ययन वर्णनात्मक न रह कर विश्लेषणात्मक हो गया है तथा इस विषय का नाम 'निगम वित्त' अथवा 'व्यावसायिक वित्त' से बदल कर 'प्रबंधकीय वित्त' अथवा 'वित्तीय प्रबंध' हो गया।

वित्तीय प्रबंन्ध का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Financial Management)

वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का एक कार्यात्मक क्षेत्र है तथा यह संपूर्ण प्रबंध का ही एक भाग होता है। वित्तीय प्रबंध उपक्रम के वित्त तथा वित्तीय क्रियाओं के सफल तथा कुशल प्रबंध के लिए जिम्मेदार होता है। यह कोई उच्चकोटि के लेखांकन अथवा वित्तीय सूचना प्रणाली नहीं होता है। यह फर्म के वित्त तथा वित्त से संबंधित पहलुओं पर निर्णय करने तथा नीति निर्धारित करने से संबंधित क्रियाओं का समूह होता है। इसमें पूँजी, रोकड़, प्रवाह, साख, मूल्य एवं लाभ नीतियाँ, निष्पत्ति नियोजन एवं मूल्यांकन तथा बजटरी नियंत्रण नीतियाँ एवं प्रणालियाँ शामिल होती हैं। बजटरी नियंत्रण एवं प्रणालियाँ प्रमुख रूप से वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में आती हैं। परन्तु ये अन्य विभागों के सहयोग एवं सहमति के बगैर प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यान्वित नहीं किये जा सकते हैं। वित्तीय प्रबंध उपक्रम के व्यापक हितों का प्रतिनिधित्व करता है। तथा वह इनके लिए संस्था का रखवाला कुत्ता होता है। वित्तीय प्रबंध का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं का अध्ययन किया जा सकता है :

(i) हॉवर्ड एवं उपटन (**Howard and Upton**) : के शब्दों में, "वित्तीय प्रबंध नियोजन तथा नयंत्रण का वित्त कार्य पर लागू करना है।"

(ii) वैस्टन एवं ब्राइगम (**Weston and Brigham**) : के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध वित्तीय निर्णय लेने की वह क्रिया है जो व्यक्तिगत उद्देश्यों और उपक्रम के उद्देश्यों में समन्वय स्थापित करती है।"

(iii) जे. एल. मैसी (**J. L. Massie**) : के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध एक व्यवसाय की वह संचालनात्मक प्रक्रिया है जो कुशल प्रचालनों के लिए आवश्यक वित्त को प्राप्त करने तथा उसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने के लिए दायी होता है।

(iv) जे. एफ. ब्रेडले (**J.F. Bradley**) : के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का वह क्षेत्र है जिसका संबंध पूँजी के विवेकपूर्ण उपयोग एवं पूँजी साधनों के सतर्क चयन से है; ताकि व्यय करने वाली इकाई (फर्म) अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ सके।

(v) इजरा सोलोम (**Ezra Soloman**) : के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध का तात्पर्य एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्रोते अर्थात् पूँजी कोष के कुशलतम उपयोग से होता है।

(vi) व्हीलर (**Wheeler**) : के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध का अर्थ उस क्रिया से होता है जो उपक्रम के उद्देश्यों एवं वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू पूँजी कोषों के संग्रहण एवं उनके प्रशासन से संबंध रखती है।" उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है वित्तीय प्रबंधन व्यावसायिक प्रबंधन का एक वह क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत व्यवसाय की वित्तीय क्रियाओं एवं वित्त कार्य का कुशल संचालन किया जाता है। इसके लिए नियोजन, आबंटन एवं नियंत्रण कार्य किये जाते हैं।

वित्तीय प्रबंधन की प्रकृति अथवा विशेषताएँ

(Nature or Characteristics of Financial Management)

आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य व्यावसायिक प्रबंध में अत्याधिक महत्वपूर्ण है। अतः इससे वित्तीय प्रबंधक की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण बन गई है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य अथवा वित्तीय प्रबंध की अग्रविशेषताएँ होती हैं।

1. व्यावसायिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग (**An indispensable organ of business management**) वित्तीय प्रबंध की परंपरागत विचारधारा के प्रचलन के समय वित्तीय प्रबंधक को व्यवसाय के प्रबंध में अमहत्त्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता था, परन्तु आधुनिक व्यवसायिक प्रबंध में वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का एक प्रमुख अंग है तथा वित्तीय प्रबंधक उच्च प्रबंध टोली के सक्रिय सदस्यों में से एक होता है। व्यवसाय की गतिविधि के साथ वित्त का प्रश्न जुड़ा हुआ है, अतः वित्तीय प्रबंधक सभी महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक निर्णयों में आधारभूत भूमिका निभाता है।

2. सतत् प्रक्रिया (**Continuous Process**) : परंपरागत वित्तीय प्रबंध की धारणा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबंध की प्रक्रिया निरन्तर नहीं चलती थी, बल्कि यह प्रक्रिया कुछ विशिष्ट घटनाओं के घटित होने पर जाग्रत होती थी तथा उनसे उत्पन्न वित्त प्राप्ति की समस्याओं के समान होने पर मंद हो जाती थी। परन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध की प्रक्रिया सतत् चलने वाली प्रक्रिया है तथा व्यवसाय की सफलता के लिए वित्तीय प्रबंधक को निरंतर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है।

3. वर्णनात्मक कम तथा विश्लेषणात्मक अधिक (**Less descriptive and more analytical**) : परंपरागत वित्तीय प्रबंध वर्णनात्मक अधिक तथा विश्लेषणात्मक कम था, जबकि आधुनिक वित्तीय प्रबंध वर्णनात्मक कम तथा विश्लेषणात्मक अधिक है। आज वित्तीय विश्लेषण की सांख्यिकीय तथा गणितात्मक विधियाँ विकसित हो गई हैं,

जिनके द्वारा किन्हीं दी हुई आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों के संदर्भ में संभावित विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प को चुना जा सकता है।

4. लेखांकन कार्य से भिन्न (**Different from accounting function**) : बहुत से लोग वित्त कार्य तथा लेखांकन कार्य को एक ही मानते हैं, क्योंकि दोनो में बहुत सी शर्तें एवं अभिलेख (Terms and records) एक समान ही होते हैं, परन्तु वित्त कार्य लेखांकन कार्य से भिन्न होता है। लेखांकन कार्य में वित्तीय एवं संबंधित समंकों का संग्रहण किया जाता है जबकि वित्त कार्य में इनका निर्णयों के लिए विश्लेषण एक उपयोग किया है।

5. केन्द्रीयकृत स्वभाग (**Centralised nature of finance function**) : आधुनिक व्यावसायिक प्रबंध के विभिन्न क्षेत्रों में वित्तीय प्रबंध का स्वभाव केन्द्रीयकृत है। जहाँ उत्पादन, विपणन तथा कर्मचारी प्रबंध के कार्यों का अत्याधिक विकेन्द्रीकरण सम्भव है। वहाँ दिन कार्य का व्यावहारिक दृष्टिकोण से विकेन्द्रीयकरण वांछनीय नहीं है तथा वित्त कार्य के केन्द्रीय कारण द्वारा ही व्यवसाय के उद्देश्यों को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

6. व्यापक क्षेत्र (**Wide scope**) : वित्तीय प्रबंध का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। वित्तीय प्रबंध का कार्य उपक्रम की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के लिए साधनों को प्राप्त करना, उनका आबंटन करना तथा अनुकूलतम उपयोग करना है। वित्तीय प्रबन्ध लेखांकन अंकेक्षण, लागत लेखांकन, व्यावसायिक बजटन, रोकड़ व साख प्रबंध, सामग्री प्रबंधन आदि के लिए भी उत्तरदायी होता है।

7. उच्च प्रबंधकों के निर्णय में सहायक (**Helpful in decisions of top management**) : वित्तीय प्रबंध की आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के सर्वोच्च प्रबंध को निर्णय लेने में सहायता पहुँचाता है। वित्तीय प्रबंधक उपक्रम की वित्तीय स्थिति तथा किसी अवधि विशेष के कार्यों की निष्पत्ति के संबंध में आवश्यक तथ्य, आंकड़े तथा प्रतिवेदन उच्च प्रबंधकों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर उच्च प्रबंधक ठोस निर्णय लेते हैं। इसलिए आजकल वित्तीय प्रबंधक अथवा नियंत्रक संचालक मण्डल सदस्य होता है।

8. कार्य निष्पति का मापक (**Measurement of performance**) : आधुनिक युग में व्यावसायिक उपक्रम में विभिन्न कार्यों की निष्पत्ति (Performance) को वित्तीय परिणामों (Financial Results) में मापा जाता है। यदि एक उपक्रम पूर्व निर्धारित यात्रा में आगम प्राप्त कर सका है तथा लागतों को उचित स्तर पर रख सका है तो वह अपने लाभ उद्देश्य अथवा संपदा के मूल्य को अधिक करने के उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होता है। वित्तीय प्रबंधक को संस्था के लिए तरलता तथा लाभदायकता के कार्यों (Liquidity and Profitability Functions) को पूरा करना होता है। इन कार्यों के लिए उसे जोखिम तथा लाभदायकता का सही विभाजन करना होता है। ऐसा करने पर ही वांछित निष्पत्ति का स्तर प्राप्त किया जा सकता है।

9. उपक्रम के अन्य विभागों से समन्वय आवश्यक (**Co-ordination with other departments of the enterprise**) : एक वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के अन्य विभागों के सहयोग तथा समन्वय के बगैर प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर सकता है। हर विभाग के कार्यों का वित्तीय परिणामों पर प्रभाव पड़ता है, अतः किसी भी एक अन्य विभाग के असहयोग की स्थिति में वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। वित्त कार्य का अन्य सभी कार्यों से पूर्ण समन्वय आवश्यक होता है।

10. वित्तीय नियोजन, नियंत्रण एवं अनुवर्तन (**Financial planning control and follow up**) : आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध में साधनों की प्राप्ति तथा उपयोग के लिए योजना बनाना, उनके अनुसार साधन प्राप्त करना, प्रभावी उपयोग करना, बजट के अनुसार नियंत्रण करना विचलनों की खोज करना तथा अनुवर्तन (Feedback) द्वारा सुधारात्मक कार्य करना शामिल होता है।

11. सभी प्रकार के संगठनों पर लागू (**Applicable to all types of organisations**) : वित्तीय प्रबंध सभी प्रकार के संगठनों में लागू होता है, चाहे वे संगठन निर्माणी हों अथवा सेवा संगठन हों अथवा एकांकी स्वामित्व वाले अथवा नियमित संगठन। यह गैर लाभकारी संगठनों की क्रियाओं पर भी लागू होता है।

वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य (Objectives of Financial Management)

एक व्यावसायिक उपक्रम के वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य क्या होते हैं ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। संकुचित दृष्टिकोण से देखने पर कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबंध का तात्कालिक उद्देश्य उपक्रम के लिए पर्याप्त सरल एवं लाभदायक वित्त की व्यवस्था करना होता है। परन्तु विस्तृत रूप से देखने पर कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य फर्म के उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकतम सहायता पहुँचाना होता है। इस बात पर सामान्य सहमति है कि फर्म का वित्तीय उद्देश्य फर्म के स्वामियों के आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना होना चाहिए। स्वामियों के आर्थिक कल्याण को किस प्रकार अधिकतम किया जा सकता है, इसके लिए अत्यधि चर्चित दो आधार बताये जाते हैं, ये हैं : (i) लाभ को अधिकतम करना, तथा (ii) संपदा के मूल्य को अधिकतम करना। हम इन दोनों ही अधिकारों का अध्ययन करेंगे तथा यह स्पष्ट करेंगे कि स्वामियों के कल्याण को अधिकतम करने के लिए संपदा को अधिकतम करने का आधार व्यवहार में लागू करने की दृष्टि से अधिक प्रामाणिक आधार है।

लाभ को अधिकतम करना (Profit Maximisation)

परंपरागत रूप से व्यवसाय को एक आर्थिक संस्था माना गया है तथा संस्था की कुलशता को जाँचने के लिए लाभ को एक अच्छा प्रमाप माना गया है। इसलिए व्यवसाय का यह एक प्राकृतिक उद्देश्य है कि अधिकतम लाभ अर्जित करें। लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य की उपयुक्तता को निम्नलिखित तर्कों के आधार पर न्यायोचित बताया जाता है :

1. लाभ अधिकतम करना विवेक के आधार पर ठीक है (**Profit Maximisation is justified on the ground of rationality**) : एक व्यक्ति कोई आर्थिक क्रिया विवेकपूर्ण ढंग से करता है तो उसका उद्देश्य उपयोगिता को अधिकतम करना होता है। यह तर्क दिया जाता है कि उपयोगिता को लाभ के रूप में मापा जा सकता है। अतः विवेक के आधार पर लाभ को अधिकतम करना उचित ठहराया जा सकता है।

2. आर्थिक कुशलता का सूचक (**Indicator of economic efficiency**) : एक उपक्रम में लाभ उसकी आर्थिक कुशलता का सूचक होता है जबकि हानि आर्थिक अकुशलता की।

3. साधनों का कुशल आबंटन एवं उपयोग (**Efficient allocation and utilisation of resources**) : उपलब्ध साधनों का कुशल आवंटन एवं प्रयोग लाभ के आधार पर किया जा सकता है। वित्तीय प्रबंध साधनों को कम लाभदायक उपयोगों से निकाल कर अधिक लाभदायक उपयोगों में लगाता है जिससे कुशलता बढ़ती है।

4. व्यावसायिक निर्णयों की सफलता का मापक (**Measurement of success of business decisions**) : सभी व्यावसायिक निर्णय लाभोपार्जन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिये जाते हैं। अतः यह निर्णयों की सफलता का प्रमुख साधन है। एक उपक्रम अपने उत्पादन, विक्रय तथा निष्पादन में कुशलता अर्जित करके ही लाभ अर्जित कर सकता है, प्रबंध का कोई कार्य अथवा निर्णय सफल हुआ अथवा नहीं इसका मापन लाभ के आधार पर किया जा सकता है।

5. प्रेरणा का स्रोत (**Source of Incentive**) : लाभ व्यवसाय के प्रेरणा का एक प्रमुख स्रोत होता है। अधिक लाभ अर्जित करने के लिए एक फर्म अन्य फर्मों से अधिक कुशल बनने के प्रयत्न करती है, अतः लाभ व्यावसायिक कुशलता का आधार है। यदि व्यावसायिक उपक्रमों से लाभ की प्रेरणा समाप्त कर दी जाये तो

प्रतियोगिता का अन्त हो जायेगा तथा इससे विकास एवं प्रगति की दर धीमी पड़ जाएगी।

6. सामाजिक लाभ को अधिकतम बनान (**Maximisation of social benefit**) एक फर्म अपने लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य का पालन करके सामाजिक आर्थिक कल्याण को अधिकतम करती है, क्योंकि फर्म लाभ अर्जित करके ही विभिन्न सामाजिक कार्यों जैसे शिक्षा, चिकित्सा, श्रम कल्याण, आवास, मनोरंजन आदि पर व्यय करके लोगों के कल्याण को बढ़ा सकती है।

व्यवसाय के लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य की पिछले वर्षों में अनेक आलोचनाएं की गई है। प्रथम अब अनेक विद्वानों द्वारा यह माना जाता है कि एक व्यवसाय लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही प्राप्त कर सकता है, जबकि आजकल सभी देशों में तथा सभी बाजारों में अपूर्ण प्रतियोगिता देखने को मिलती है। अतः अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य उचित नहीं जान पड़ता है। द्वितीय यह भी कहा जाता है कि जब 19वीं शताब्दी के आरम्भ में लाभ को अधिकतम करने को व्यवसाय का उद्देश्य स्वीकार किया गया, उस समय व्यवसाय के ढाँचे की विशेषताएँ, स्वयं वित्त, निजी संपत्ति तथा एकाकी संगठन थे। एकाकी स्वामी के उद्देश्य अपनी निजी संपत्ति एवं शक्ति को बढ़ाना होता था जो लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य द्वारा संतुष्ट किये जा सकते थे। परन्तु आधुनिक व्यवसाय की प्रमुख विशेषताएँ सीमित दायित्व एवं प्रबंध तथा स्वामित्व में पृथक्करण है। आज व्यवसाय के लिए वित्त की व्यवस्था अशंधारियों तथा लेनदारों द्वारा की जाती है तथा उसका प्रबंध पेशेवर प्रबंधकों द्वारा किया जाता है। तृतीय व्यवसाय से अन्य पक्षकार ग्राहक, कर्मचारी, सरकार एवं समाज भी संबंधित होते हैं। परिवर्तित व्यावसायिक ढाँचे के अन्तर्गत स्वामी प्रबंधक का स्थान पेशेवर प्रबंधकों ने ले लिया है, जिसे व्यवसाय से संबंधित सभी पक्षों के विभिन्न टकराव वाले हितों में मेल बैठाना होता है। इस नवीन व्यावसायिक वातावरण में लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य वास्तविक, कठिन तथा अनैतिक लगता है। उपर्युक्त आलोचनाओं के अतिरिक्त लाभ को अधिकतम करने का विचार व्यवसाय के स्वामियों के आर्थिक कल्याण को प्राप्त करने के आधार के रूप में भी अव्यावहारिक लगता है। इसके द्वारा वैकल्पिक कार्यों का श्रेणीबद्ध करना (Ranking of alternative course of action) संभव नहीं है। लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य की निम्न सीमाएँ अथवा आलोचनाएँ :

1. अस्पष्ट धारणा (**It is vague**) : लाभ की धारणा एक अस्पष्ट धारणा है। अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करें अथवा दीर्घकालीन लाभ को ? लाभ के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे सकल लाभ, ब्याज एवं कर के पूर्ण लाभ कर के बाद लाभ, शुद्ध लाभ आदि। इनमें से कौन से लाभ को अधिकतम किया जाये।

2. मुद्रा के समय मूल्य की उपेक्षा (**It ignores time value of money**) : लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह विभिन्न समय अवधियों में प्राप्त की गई लाभ की राशियों में अन्तर नहीं करता है अर्थात् यह मुद्रा के समय मूल्य को महत्व नहीं देता है। आज जो लाभ होता है, तथा एक साल, दो अथवा अधिक सालों बाद प्राप्त होने वाले लाभ मुद्रा के मूल्य की दृष्टि से समान नहीं हो सकते हैं। आज प्राप्त होने वाले एक रुपये का मूल्य आज से एक साल बाद प्राप्त होने वाले एक रुपये के मूल्य से निश्चित रूप से अधिक होगा। इसका कारण यह है कि आज प्राप्त होने वाले लाभ की राशि को आय अर्जित करने के लिए पुनः विनियोग किया जा सकता है। इसे मुद्रा का समय मूल्य कहा जाता है, जिसकी इस विचारधारा द्वारा अपेक्षा की जाती है।

3. भावी क्रियाओं से लाभ के उत्कर्ष तत्त्व की उपेक्षा (**It overlooks quality aspect of profit from future activities**) : यह सिद्धांत लाभ के उत्कर्ष तत्त्व (Quality aspect of profit) की ओर ध्यान नहीं देता है। किसी कार्य के करने पर प्राप्त होने वाले लाभ की निश्चितता का अंश अधिक अथवा अनिश्चितता का कम मात्रा में हो सकता है जो जोखिम की न्यून मात्रा का प्रतीक होता है; जबकि किसी कार्य में अनिश्चितता

अधिक हो सकती है जो अधिक जोखिम का प्रतीक होगा। किसी कार्य के फलस्वरूप लाभ की निश्चितता अधिक परन्तु थोड़ा कम लाभ हो इसके विपरीत लाभ की अधिकता परन्तु बहुत अधिक अनिश्चितता हो, तो पहली स्थिति को अधिक पसंद किया जाना चाहिए। यह सिद्धांत इस पर विचार नहीं करता है।

4. व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की उपेक्षा (**Ignores social responsibility of business**) : यह विचारधारा स्वामियों के लाभ को अधिकतम करता है तथा व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की उपेक्षा करता है इसमें श्रमिकों, उपभोक्ताओं, सामान्य जनता व सरकार की उपेक्षा की गई है।

उपर्युक्त अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि लाभ को अधिकतम करने का समय आज की परिवर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में ठीक नहीं जान पड़ता तथा इसको व्यवहार में वित्तीय निर्णयों पर लागू करना भी कठिन है।

संपदा के मूल्य को अधिकतम करना (Maximisation of Wealth)

अब लाभ को अधिकतम करने के स्थान पर फर्म की संपदा के मूल्य को अधिक करना व्यवसाय का मूल उद्देश्य माना जाता है, अतः वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य भी फर्म की संपदा के मूल को अधिकतम करना होता है। वित्तीय प्रबंध को फर्म के लिए ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे फर्म की संपदा का मूल्य बढ़ता है तथा ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जिससे संपदा का मूल्य कम होता है। वह कार्य अवश्य किया जाना चाहिए जिससे संपदा का निर्माण होता है। तथा फर्म का शुद्ध मूल्य (Net worth of the firm) बढ़ता है। यदि वित्तीय प्रबंध के सामने एक से अधिक वैकल्पिक कार्यों में किसी एक को चुनने की समस्या हो, तो वह कार्य चुना जाना चाहिए जिससे सर्वाधिक संपत्ति अथवा शुद्ध मूल्य का निर्माण हो। किसी आर्थिक कार्य को करने से शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net present value of worth) धनात्मक होता है तो उस कार्य को किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे फर्म की संपदा के मूल्य में वृद्धि होती है। किसी कार्य का शुद्ध वर्तमान मूल्य उस कार्य से प्राप्त कुल वर्तमान मूल्य में से उस कार्य में की गई प्रारम्भिक पूँजी विनियोजन की राशि को घटाने से प्राप्त हो सकता है।

संपदा के मूल्य को अधिकतम करने का सिद्धांत परिवर्तित व्यवसायिक परिस्थितियों में नियमित उपक्रमों के लिए भी उपयुक्त होता है। यह सिद्धांत संभावित लाभ के समय मूल्य को मान्यता देता है तथा जोखिम एवं अनिश्चिता का भी विश्लेषण करता है। इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव किया जा सकता है। जो कंपनियाँ साधारण अंश निर्गमित करती है तथा जिनके अंशों का मूल्य बाजार में उद्धृत किया जाता है उनके अंशों के बाजार मूल्य के आधार पर यह देखा जा सकता है कि कंपनी की संपत्तियों के मूल्य को व्यक्त करता है। कंपनी के अंशधारियों की विनियोजित संपत्ति तभी बढ़ती है सब उनके अंशों के बाजार मूल्य में बढ़ोत्तरी हो। कंपनी के अंशों का मूल्य उसके द्वारा अर्जित लाभों की मात्रा से प्रभावित होता है, परन्तु यह भी संभव है कि लाभ कमाने वाली कंपनियों के अंशों के बाजार मूल्य में पर्याप्त वृद्धि न हो, क्योंकि अंशों का बाजार मूल्य कंपनी लाभ की मात्रा के साथ–साथ उसके भावी लाभ कमाने की क्षमता कंपनी की लाभांश नीति, संपत्तियों की तरलता तथा कंपनी की शोधन क्षमता जैसे अन्य तत्त्वों पर भी निर्भर करता है। इसीलिए दो अथवा अधिक कम्पनियों में लाभ की मात्रा समान होने पर भी उनके अंशों के बाजार मूल्यों में भिन्नता होती है। कंपनी के अंशों का बाजार मूल्य कंपनी की समृद्धि तथा संपन्नता का सूचकांक तथा प्रबंध की कुशलता का प्रतीक माना जाता है। इसीलिए वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य उपक्रम की संपत्तियों के मूल्यों को अधिकतम करना होना चाहिए। निगमित उपक्रमों में यदि अंशों का मूल्य एक लंबे समय में लगातार बढ़ रहा है तो यह कहा जा सकता है कि वित्त प्रबंध निगम उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम रहा है।

संपदा के मूल्य को अधिकतम करने के सिद्धांत के निम्न लाभ हैं :

- संपदा मूल्य अधिकतम करना एक स्पष्ट अवधारणा है, इसमें भावी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य लिया

जाता है।

- यह सिद्धांत मुद्रा के समय मूल्य पर विचार करता है जिससे रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य के आधार पर प्रबंध महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सकता है।
- इस सिद्धांत को सार्वभौमिक स्वीकृति प्राप्त हुई क्योंकि यह वित्तीय संस्थाओं स्वामियों, कर्मचारियों तथा समाज सबके हित का ध्यान रखता है।
- यहः सिद्धान्त प्रबंध को सुदृढ लाभांश नीति अपनाने का निर्देशन देता है जिससे समता अंशधारियों को अधिकतम प्रत्याय प्राप्त हो।
- यह सिद्धांत जोखिम तत्व को विनियोग निर्णयों में आवश्यक महत्त्व प्रदान करता है। एक फर्म जो अपने अंशधारकों की संपत्ति का मूल्य अधिकतम बनाने का कार्य करती है, ऐसे निम्न कार्य करने चाहिएं :

1. उच्च स्तर की जोखिमों से बचा जाय (**Avoid high levels of risks**) : यदि फर्म के दीर्घकालीन व्यवसायिक प्रचालनों को देखा जाये तो उनमें अनावश्यक तथा अधिक मात्रा वाली जोखिमों से बचना चाहिए। अधिक जोखिम कार्यों की तुलना में कम जोखिमपूर्ण तथा अधिक लाभदायकता वाले क्षेत्रों को चुनना चाहिए। ऊँचे स्तर की जोखिम की क्रियाएँ फर्म के लिए बड़ी घातक सिद्ध हो सकती है।
2. लागत में कमी (**Reduction in cost**) : संस्था को एक तरफ पूँजी की लागत कम करनी चाहिए अर्थात् साधन न्यूनतम लागत पर प्राप्त किये जायें तथा द्वितीय इसे अपने कार्यचालन की लागत (Operating Cost) को कम करना चाहिए।
3. लाभांश का भुगतान (**Pay dividends**) : लाभांशों का भुगतान फर्म तथा अंशधारियों की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। फर्म के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में नीची दर से लाभांश दिया जाये तथा जैसे–जैसे फर्म परिपक्व हो तथा उसे विस्तार के लिए धन की कम आवश्यकता हो, वैसे–वैसे अधिक लाभांश बाँटा जाये। निरन्तर उपयुक्त मात्रा में लाभांश दिए जाने पर विनियोक्ता आकर्षित होते हैं। फर्म के अंशों का बाजार मूल्य तथा फर्म की वर्तमान संपदा बढ़ती है।
4. विकास अथवा वृद्धि की प्राप्ति (**Seek growth**) : एक फर्म को अपने वर्तमान मूल्य को अधिकतम करने के लिए अपने विक्रय तथा लाभों में वृद्धि करनी होती है। उसे विकास एवं विस्तार की योजनाएँ बनाकर लागू करनी चाहिए। कोई भी संस्था या तो विकास करती है या उसका पतन हो जाता है। इसलिए फर्म को सदैव विकास व विस्तार के लिए कार्यशील रहना चाहिए।
5. अंशों के बाजार मूल्य को बनाये रखना (**To maintain market price of shares**) : जो प्रबंध फर्म की संपदा के मूल्य को अधिकतम करना चाहता है, उसका कर्तव्य है कि वह फर्म के अशों का बाजार में ऊँचा मूल्य बनाये रखे। वित्तीय प्रबंधक को उपक्रम के स्वास्थ्य के साथ–साथ स्वामी–हित भी अक्षुष्ण रखना होता है।

वित्तीय प्रबंधन का क्षेत्र अथवा कार्य (Scope or Functions of Financial Management)

एक व्यावसायिक उपक्रम में वित्तीय प्रबंध को कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने होते हैं, जिन्हें वित्त के कार्यों के रूप में जाना जाता है। इन्हें वित्त कार्य के क्षेत्र अथवा वित्त कार्य की विषय वस्तु के रूप में भी जाना जाता है। वित्तीय प्रबंध के कार्यों तथा उनके नामों के बारे में वित्तीय विशेषज्ञ एक मत के नहीं हैं। विभिन्न विशेषज्ञ वित्तीय प्रबंध के विभिन्न कार्य बताते हैं तथा एक ही कार्य को विभिन्न विशेषज्ञ विभिन्न नामों से करते हैं, उदाहरण के लिए कुछ विशेषज्ञों ने वित्तीय प्रबंधकों द्वारा किये जाने वाले निर्णयों के अनुसार इनके कार्यों को विनियोग–निर्णय (Investment

Decisions), वित्त प्रबंधन निर्णय (Financing Decisions) तथा लाभांश नीति निर्णय (Dividend Policy Decision) का नाम दिया है तथा कुछ अन्य ने वित्तीय नियोजन, संपतियों का प्रबंध, कोषों का संग्रहण तथा विशेष समस्या का समाधान नाम दिया है। कुछ विशेषज्ञों ने वित्तीय प्रबंध के कार्यों को आवर्ती वित्त कार्यों (Recurring Finance Functions), अनावर्ती वित्त कार्यों (Net-recurring Finance Functions) तथा नैत्यक कार्यों (Routine Functions) में बाँट कर इनका वर्णन किया है। हम यहाँ पर सुविधा की दृष्टि से इन तीनों प्रकार के वित्त कार्यों का वर्णन कर सकते हैं :

आवर्ती वित्त कार्य (Recurring Finance Functions)

आवर्ती वित्त कार्य वे होते हैं जो फर्म के कुशल संचालन तथा फर्म के उद्देश्य की पूर्ति हेतु निरन्तर पूरे किये जाते हैं। कोषों का नियोजन एवं संग्रहण, कोषों एवं आय का आवंटन, कोषों का नियंत्रण तथा वित्त कार्य का संस्था के अन्य कार्यों से समन्व आवर्ती वित्त कार्य माने जाते हैं। आवर्ती वित्त कार्यों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है :

1. कोषों का नियोजन (**Planning for Funds)** : एक वित्तीय प्रबंधक का सर्वप्रथम कार्य व्यवसाय के लिए चाहे, वह नया हो अथवा पुराना, एक सुदृढ़ वित्तीय योजना तैयार करना होता है। वित्तीय योजना का तात्पर्य उस योजना से होता है जिसके द्वारा व्यवसाय के वित्तीय कार्यों का अग्रिम निर्धारण किया जाता है। फर्म की वित्तीय योजना का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे फर्म के कोषों का समुचित उपयोग हो सके तथा उनकी तनिक सी भी बर्बादी न हो। वित्तीय योजना के निर्माण के लिए फर्म के दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न वित्तीय नीतियों एवं व्यवहारों की रचना की जाती है। वित्तीय नियोजन के लिए निम्न नीतियों का निर्माण किया जाता है :

   (अ) पूँजी की मात्रा तथा अवधि को निर्धारित करने वाली नीतियाँ;

   (ब) पूँजीकरण को निर्धारित करने वाली नीतियाँ;

   (स) कोष प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्रोतों के चुनाव को निर्धारित करने वाली नीतियाँ; (द) स्थायी तथा चालू संपत्तियों के विनियोजन से संबंधित नीतियाँ; तथा

   (य) आय के निर्धारण एवं वितरण के संबंध में नीतियाँ

2. कोष का संग्रहण (**Raising of Funds**) : वित्तीय प्रबंधक को वित्तीय योजना के निर्माण के बाद उसमें निर्धारित साधनों से कोषों का संग्रहण करना आवश्यक है। व्यवसाय की स्थापना के समय दीर्घकालीन कोषों की प्राप्ति के लिए अंशों का निर्गमन किया जाता है तथा इसके लिए अभिगोपकों की सेवाओं का प्रयोग किया जाता है। पूर्व–स्थापित प्रतिष्ठित उपक्रम की स्थिति में वित्तीय प्रबंधक को यह निर्णय लेना होता है कि दीर्घकालीन वित्तीय साधन अंशों के निर्गमन से प्राप्त किए जायें अथवा ऋणपत्रों द्वारा अथवा दोनों से। वित्तीय प्रबंधक यह निर्णय उपक्रम की लाभदायकता, वर्तमान वित्तीय स्थिति, पूँजी एवं मुद्रा बाजार की स्थिति, वित्तीय संस्थाओं की सहायता करने की नीति आदि बातों को ध्यान में रखकर कर सकता है। वित्तीय प्रबंधक को विभिन्न स्रोतों से पूँजी प्राप्त करने के वित्तीय परिणामों पर विचार कर के दी हुई परिस्थितियों में श्रेष्ठ साधन का चुनाव करना चाहिए तथा उस साधन से अनुकूलतम शर्तों पर वित्त प्राप्त करना चाहिए। वित्तीय प्रबंधक को चुने गये स्रोत से वित्त प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझौता करना चाहिए।

3. कोषों का आबंटन (**Allocation of Resources**) : वित्तीय प्रबंधक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य विभिन्न संपतियों में साधनों का आबंटन करना होता है। साधनों के आबंटनों मे प्रतियोगी प्रयोगों, लाभदायकता, अनिर्वायता, संपत्तियों के प्रबंध तथा फर्म के समग्र प्रबंध को ध्यान में रखा जाना चाहिए यद्यपि स्थायी संपत्तियों का प्रबंध करने की जिम्मेदारी वित्तीय प्रबंधक की नहीं होती है परन्तु उसे उत्पादन प्रबंधक को स्थायी

संपत्तियों की व्यवस्था करने में सहायता पहुँचानी चाहिए। वित्तीय प्रबंध ही उत्पादन प्रबंधक को पूँजी परियोजनाओं के विश्लेषण तथा फर्म के पास उपलब्ध पूँजी की जानकारी देती है। वित्तीय प्रबंधक रोकड़ प्राप्यों तथा सामग्री के कुशल प्रशासन के लिए जिम्मेदार होता है। वित्तीय प्रबंधक को चालू संपतियों में कोषों का विनियोजन करते समय लाभदायकता तथा तरलता में उचित समायोजन करना होता है।

4. आय का आबंटन (**Allocation of Income**) : वित्तीय प्रबंधक को ही फर्म की वार्षिक आय विभिन्न प्रयोगों में आबंटित करनी होती है। फर्म की आय को विस्तार कार्यों के लिए रोका जा सकता है अथवा इसे देय ऋणों के भुगतान के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है अथवा इसे मालिकों को लाभांश के रूप में वितरित किया जा सकता है। इस संबंध में निर्णय फर्म की वित्तीय स्थिति, वर्तमान तथा भावी नगदी आवश्यकताओं एवं अंशधारियों की रूचि के अनुसार लिए जाते है।

5. कोषों का नियंत्रण (**Control of Funds**) : वित्तीय प्रबंधक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य साधनों के प्रयोग को नियन्त्रित करना है। इस कार्य के लिए वित्तीय निष्पादन प्रमाप निर्धारित किया जाता है तथा उनके संदर्भ में वास्तविक निष्पादन की जाँच करके विचलनों को ज्ञात किया है। यदि ज्ञात विचलन सह्य सीमा (Tolerance Limit) के बाहर होते हैं तो वहाँ शीघ्र सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। कोषों का नियंत्रण कार्य कोषों की कमी के समय अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

6. फर्म के अन्य विभागों से समन्वय (**Co-ordination with other Departments of the Firm**) : किसी भी उपक्रम की सफलता उपक्रम के विभिन्न विभागों के कार्यों में पाये जाने वाले समन्वय पर निर्भर करती है। वित्त कार्य व्यवसाय के प्रत्येक कार्य को प्रभावित करता है, अतः वित्त विभाग तथा अन्य विभागों में अच्छा समन्वय होना चाहिए। वित्तीय प्रबंधक का यह दायित्व है कि वह फर्म में लिये गये विभिन्न निर्णयों में इस प्रकार का समन्वय स्थापित करे कि जिससे उनमें एकरूपता हो तथा वित्तीय उद्देश्यों की पूर्ति हो तथा वित्तीय साधनों की बाधाएँ कार्यों को विपरीत रूप से कम से कम प्रभावित करें।

अनावर्ती वित्त कार्य (Non-Recurring Finance Functions)

अनावर्ती वित्त कार्य वे कार्य होते हैं जो एक वित्तीय प्रबंधक को यदा–कदा संपन्न करने होते हैं। कंपनी के प्रवर्तन के समय वित्तीय योजना का निर्माण, संविलयन के समय संपतियों का मूल्यांकन, तरलता के अभाव के समय पुनर्समायोजन का कार्य आदि अनावर्ती वित्त कार्यों के कुछ उदाहरण हैं। इन विशिष्ट घटनाओं के घटने के समय उत्पन्न होने वाली वित्तीय समस्याओं के समाधान के कार्य वित्तीय प्रबंध को ही करने होते हैं।

नैत्यक कार्य अथवा दैनिक कार्य (Routine Functions)

इस वर्ग में वे कार्य शामिल किये जाते हैं जो नैत्यक प्रवृत्ति अथवा दैनिक प्रवृत्ति के होते हैं। ये कार्य प्रतिदिन निम्नस्तरीय कर्मचारियों जैसे – लेखाकार, रोकड़ियों, लिपिक आदि द्वारा किये जाते हैं। सामान्यः इनमें निम्नलिखित कार्यों को शामिल किया जाता है :

(i) रोकड़ प्राप्ति एवं उसके वितरण का पर्यवेक्षण।

(ii) रोकड़ शेषों को व्यवस्थित व सुरक्षित रखना।

(iii) प्रत्येक व्यवहार का लेखा करके लेखों को सुरक्षित करना।

(iv) उधार के व्यवहारों का प्रबन्ध करना।

(v) प्रतिभूतियों व महत्वपूर्ण प्रलेखों की सुरक्षा करना।

(vi) पेंशन व कल्याण योजनाओं का प्रशासन।

(vii) शीर्ष प्रबंध को सूचनाएँ भेजना।

(viii) राजकीय नियमों का पालन करना।

वित्तीय प्रबंध का महत्त्व (Importance of Financial Management)

व्यावसायिक संगठनों में वित्तीय प्रबंध का महत्त्व पिछले 35–40 वर्षों में अत्यधिक बढ़ गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक प्रबंध की परंपरागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबंध का कार्य संस्था के लिए उचित शर्तों पर पूँजी प्राप्त करना था। परन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध का कार्य केवल पूँजी प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि व्यवसाय में पूँजी का अनुकूलतम उपयोग करना भी है। साधारण व्यावसायिक संगठनों में वित्तीय प्रबंध का कार्य बड़ा सरल होता है, परन्तु निगमित व्यवसायों में वित्तीय प्रबंध का कार्य बड़ा कठिन होता है। आज उद्योग, व्यापार, बैंकिंग, बीमा, परिवहन आदि सभी क्षेत्रों में निगमित उपक्रमों का महत्त्व बढ़ रहा है। निगमित उपक्रमों के प्रबंध में सभी अंशधारी प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते हैं, अतः इनका संचालन सामान्य अंशधारियों द्वारा चुने गये संचालन मंडल द्वारा किया जाता है। संचालक मंडल के निर्देशन में प्रबंधकीय विशेषज्ञ निगमों के विभिन्न कार्यों को पूरा करते हैं। निगमों के सफल संचालन में वित्तीय प्रबंध का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अंशधारी संचालन तथा प्रबंधक वित्तीय प्रबंध के बारे में जानकारी रखते हैं तो वे निगम के कार्यों को सही दिशा दे सकते हैं तथा निगम के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं। वित्तीय प्रबंध का महत्त्व निगमित उपक्रमों के लिए ही नहीं बल्कि, गैर निगमित उपक्रमों के लिए भी बहुत होता है। वित्त आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था का जीवन रक्त है। यह समस्त क्रियाओं का आधार है। इसके अभाव में न तो उपक्रम को आरम्भ किया जा सकता है और न ही उसे सफलातापूर्वक संचालित किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार पर्याप्त वित्त की व्यवस्था व्यावसायिक सफलता का मूल मंत्र है। किसी भी व्यापार एवं उद्योग को चाहे वह बड़े पैमाने पर हो या छोटे पैमाने पर, प्रारंभ करने एवं उसके भावी विस्तार के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में देश की औद्योगिक उन्नति वित्त प्रबंध पर ही निर्भर है। वित्त प्रबंध की उचित व्यवस्था के अभाव में अनेक औद्योगिक विकास की योजनाएँ मात्र कागजी योजनाएँ बनकर रह जाती हैं। जिस प्रकार एक इंजिन को चलाने के लिए कोयले अथवा बिजली की आवश्यकता होती है उसी प्रकार प्रत्येक व्यापार एवं उद्योग को स्थापित करने तथा चलाने के लिए वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता होती है। हसबैंड एवं डोकरे के अनुसार "विभिन्न आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बाँधने के लिए वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता होती है।" प्रो. सोलेमन ने भी वित्तीय प्रबंध का अर्थ बताते हुए लिखा है कि, "वित्तीय प्रबंध आज केवल वित्तीय साधन संकलित करने की एक विशेषज्ञ क्रिया मात्र नहीं है, अपितु संपूर्ण प्रबंधकीय विज्ञान का एक अभिन्न अंग बन गया है।" वित्तीय संसाधन एकत्रित करने के साथ–साथ वित्तीय प्रबंध उत्पादन, विपणन और उपक्रम में प्रत्येक निर्णयाात्मक क्रिया से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित रहता है।

"वित्त एक ऐसी धुरी है, जिसके आस–पास समस्त व्यावसायिक क्रियायें चक्कर लगाती हैं। इसके सफल प्रबंध में समस्त वर्गों तथा पूरी फर्म का जीवन, विकास तथा कल्याण निर्भर है। वित्त प्रबंध का कार्य एक कुशल, विशेषज्ञ, अनुभवी, निष्ठावान तथा उत्तरदायी व्यक्ति को सौंपा जाना चाहिए। वित्तीय प्रबंध के महत्व अथवा इसकी उपयोगिता को निम्न शीर्षकों में देखा जा सकता हैः

1. उपक्रम की सफलता का आधार (**Basis of Success of the Enterprise**): चाहे वह उपक्रम छोटा हो अथवा बड़ा, चाहे उपक्रम निगमित हो अथवा गैर निगमित, चाहे उपक्रम निर्माणों हो अथवा सेवा संस्थान, उसकी सफलता वित्तीय प्रबंध की कुशलता पर निर्भर करती है। कुशल वित्तीय प्रबंध हानि में चलने वाले उपक्रम को

लाभ में बदल सकता है तथा अकुशल वित्तीय प्रबंध लाभ में चलने वाले उपक्रम को बर्बाद कर सकता है, अतः उपक्रम की सफलता वित्तीय पर निर्भर करती है।

2. साधनों का अनुकूलतम आबंटन एवं उपयोग (**Optimum Allocation and Utilisation of Resources**) : एक कुशल वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम आबंटन एवं उपयोग सम्भव बनाता है, तथा इस कार्य के द्वारा फर्म के संपदा मूल्य को अधिक बनाने में सहायक होती है।

3. निर्णय का केन्द्र (**Central Focal point of decision making**) : व्यवसाय में पहले प्रबंधकों द्वारा अंतः प्रेरणा (Intuition) तथा अनुभव के आधार पर निर्णय लिए जाते थे, परन्तु आज अधिकांश निर्णय वित्तीय विश्लेषण एवं तुलना के आधार पर लिये जाते हैं। सभी निर्णयों के वित्तीय प्रभावों को पूर्वानुमानित करके ही उचित निर्णय लिए जाते हैं।

4. कार्य निष्पति एवं कुशलता का मापन (**Measurement of performance and cliciency**) : उपक्रम में जो कुछ कार्य होता है अन्तिम रूप से उसका मापन एवं उसकी कुशलता वित्तीय आधार पर जाँची जाती है। इस जाँच के लिए वित्तीय प्रबन्ध में अनेक तकनीकों का विकास हुआ है।

5. नियोजन, समन्वय एवं नियंत्रण का आधार (**Basis of planning, co-ordination and control**) : वित्तीय प्रबन्ध उपक्रम में नियोजन, समन्वय तथा नियंत्रण का आधार प्रस्तुत करता है। वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर योजना बनाई जाती है जिसमें सभी विभागों के कार्यों को समन्वित किया जाता है तथा विभिन्न विभागों के कार्य–कलापों पर बजटरी नियंत्रण लागू किया जाता है।

6. राष्ट्रीय महत्त्व (**National Importance**) : भारत जैसे विकासशील देशों में विभिन्न विकास कार्यों पर करोड़ों रुपयों का विनियोग किया जाता है। इस विनियोग की कुशलता द्वारा राष्ट्रीय विकास की दर ऊँची की जा सकती है। सार्वजनिक विनियोग का अकुशल प्रबंध हमारी गरीबी का एक कारण है।

7. व्यावसायिक प्रबंधकों के लिए उपयोगिता (**Useful for Business managers**) : वित्तीय प्रबंध विषय की सर्वाधिक उपयोगिता व्यावसायिक प्रबंध के क्षेत्र में होती है। निगमों में जनता की पूँजी विनियोजित होती है। प्रबंधक जनता की पूँजी के प्रन्यासी होते हैं। यह उनका दायित्व है कि वे जनता के विभिन्न वर्गों द्वारा विनियोजित पूँजी को सुरक्षा प्रदान करें तथा उस पर उचित प्रत्याय की व्यवस्था करें। ऐसा तब ही हो सकता है जब व्यावसायिक प्रबंधक वित्तीय प्रबंध के सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से परिचित हों तथा संस्था के लिए प्रभावपूर्ण वित्तीय नीति का निर्धारण कर सकें।

8. अंशधारियों के लिए उपयोगिता (**Useful for Shareholders**) : कंपनी तथा निगम के वास्तविक स्वामी अंशधारी होते हैं। इनकी संख्या अधिक होने के कारण ये प्रबंध में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते हैं। प्रबंध का कार्य इसके द्वारा चुने गये संचालकों को सौंप दिया जाता है। संचालक मंडल अंशधारियों के हित में कार्य करते हैं अथवा नहीं, इसको देखना अंशधारियों का कार्य है। यदि अंशधारी वित्तीय प्रबंध विषय का पर्याप्त ज्ञान रखते हैं तो वे कंपनी की आर्थिक स्थिति का सही मूल्यांकन कर सकते हैं तथा कंपनी की वार्षिक सभाओं में अच्छे सुझाव दे सकते हैं। यदि संचालक अंशधारियों के हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं तो अंशधारी उन्हें उचित वित्तीय नीति अपनाने के लिए बाध्य कर सकते हैं।

9. विनियोक्ताओं के लिए उपयोगिता (**Useful for Investors**) : देश के बहुत से विनियोक्ता बचत करके अपनी बचतों को कम्पनियों के अंशों में विनियोजित करते हैं। भारत में विनियोग बैंकों का अभाव होने के कारण विनियोक्ताओं को प्रतिभूति विक्रेताओं एवं दलालों पर निर्भर रहना पड़ता है। वे लोग विनियोक्ताओं को सही

सलाह नहीं दे सकते हैं। यदि विनियोक्ता स्वयं वित्तीय प्रबंध के सिद्धांतों एवं व्यवहार से परिचित हों तो वे स्वयं यह निर्णय कर सकते हैं कि उन्हें कौन–सी कंपनी की प्रतिभूतियों में विनियोग करना चाहिए जिससे उन्हें पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सके।

10. वित्तीय संस्थाओं के लिए उपयोगिता (**Useful for Financial Institutions**) : विभिन्न वित्तीय संस्थाओं जैसे – विनियोग बैंकों, व्यापारिक बैंकों, अभिगोपकों, प्रन्यास कंपनियों, स्वीकृति गृहों, बट्टा गृहों आदि के व्यवस्थापकों को वित्तीय प्रबंध का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। इन संस्थाओं के प्रबंधकों को विषय का पूर्ण ज्ञान न होने पर वे गलत कंपनियों को अधिक उधार दे सकते हैं अथवा खराब प्रतिभूतियों में विनियोजन कर सकते हैं। अथवा गलत अभिगोपन द्वारा अनावश्यक हानि उठाने के लिए बाध्य हो सकते हैं। इसलिए वित्तीय संस्थाओं में वित्तीय विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है।

11. अन्य व्यक्तियों के लिए उपयोगिता (**Useful for Others**) : वित्तीय प्रबंध, विषय का ज्ञान समाज के विभिन्न व्यक्तियों के लिए लाभदायी होता है। राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वाणिज्य एवं प्रबंध विषय के विद्यार्थी इससे लाभान्वित होते हैं। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भारी मात्रा में सरकारी उपक्रमों में विनियोग किया गया है। इस विनियोग की सफलता वित्तीय प्रबंध की प्रभावशीलता पर ही निर्भर करती है। भारत में सरकारी उद्यमों की अकुशलता के कारण करोड़ों रुपयों की पूँजी पर उचित एवं पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। इस स्थिति को वित्तीय प्रबंध के आधुनिक सिद्धांतों एवं व्यवहारों के उपयोग द्वारा ही ठीक किया जा सकता है।

वित्त कार्य का संगठन (Organisation of Finance Function)

सभी व्यावसायिक संस्थानों में वित्त कार्य समान रूप से लागू होता है, परन्तु वित्त कार्य का संगठन एक उपक्रम से दूसरे उपक्रम में भिन्न होता है। वित्त कार्य का संगठन फर्म की प्रकृति, आकार, परम्परा तथा अन्य विशेषताओं पर निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर एक छोटे उपक्रम में वित्त कार्य के लिए अलग से किसी वित्त अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जाती है, बल्कि स्वामी स्वयं ही समस्त वित्त कार्यों को संपन्न करता है। वही उपक्रम की आवश्कताओं का अनुमान लगाकर रोकड़ बजट बनाता है तथा उपक्रम के लिए आवश्यक कोषों की व्यवस्था करता है। ऐसे छोटे उपक्रमों में स्वामी ही समस्त प्राप्तियों एवं भुगतानों को देखता है, साख–सुविधाएँ प्रदान करता है, प्राप्य बिलों की वसूली करता है, नगदी का प्रबंध करता है तथा अतिरिक्त कोषों की व्यवस्था करता है। ऐसे उपक्रमों में वित्त कार्य का कोई व्यवस्थित संगठन नहीं होता है, बल्कि वित्त कार्य उत्पादन तथा विपणन के साथ संलग्न रहता है। परन्त उपक्रम के आकार में विस्तार होने पर वित्त कार्य में विशिष्टीकरण बढ़ता है तथा इस कार्य की व्यवस्था के लिए अलग से विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त की जाती हैं। मध्यम आकार के व्यावसायिक संगठन में वित्त कार्य को संपन्न करने के लिए वरिष्ठ प्रबंधक, जिसे वित्तीय नियंत्रक, संचालक, वित्त प्रबंधक अथवा कोषाध्यक्ष के नाम से पुकारा जाता है, नियुक्त किया जाता है। यही व्यक्ति साख वसूलियों लेखांकन, विनियोग तथा अंकेक्षण कार्यों को देखता है। वार्षिक रिपोर्ट भी इसी व्यक्ति द्वारा तैयार की जाती है। वह संचालक मंडल से प्रत्यक्ष रूप में संबद्ध होता है। निर्णयन में उसकी भूमिका स्वयं की योग्यता तथा संचालक मंडल में उसकी पहुँच पर निर्भर करती है। बड़े व्यावसायिक उपक्रमों में वित्त प्रबंधक अथवा अधिकारी की स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। सामान्यतया यह कंपनी के शीर्ष प्रबंध टोली का सदस्य होता है। उसका पद वित्त संचालक अथवा उपाध्यक्ष वित्त या वित्त प्रबंधक के नाम से जाना जाता है। बड़ी कंपनियों अथवा निगमों में वित्तीय कार्यों में भी अत्यधिक विशिष्टीकरण हो चला है। वित्त प्रबंधक के लिए यह संभव नहीं है कि वह स्वयं समस्त वित्तीय कार्यों को संपन्न करे तथा सभी अधिकारियों से संपर्क रख सके। अतः वित्त कार्य को दो उपविभागों में बाँट दिया जाता है जो क्रमशः वित्त (Finance) तथा वित्तीय नियंत्रण (Financial Controller) होते हैं, जिनकी व्यवस्था के लिए वित्त प्रबन्धक के नियंत्रण में कोषाध्यक्ष (Treasurer)

हौर वित्त नियंत्रक (Financial Controller) की नियुक्ति की जाती है। इनमें से प्रत्येक के अधीन भी अनेक उप–विभाग होते हैं। बहुत बड़े निगमों में वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण के कार्य को बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ऐसी स्थिति में वित्त कार्य प्रबंध संचालक पर ही नहीं छोड़ा जाता है बल्कि संचालक मंडल तथा प्रबंध संचालक के मध्य एक वित्तीय समिति नियुक्त की जाती है, जिसमें कुछ संचालकों के प्रतिनिधि तथा विभिन्न विभागाध्यक्षों अथवा प्रबंधकों को रखा जाता है। इस समिति की अध्यक्षता प्रायः प्रबंध संचालक करता है। वित्त समिति का कार्य संचालक मंडल को वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण के लिए सलाह देना होता है। एक बड़े निगमित उपक्रम के वित्त कार्य के संगठन को निम्नांकित चार्ट में देखा जा सकता है।

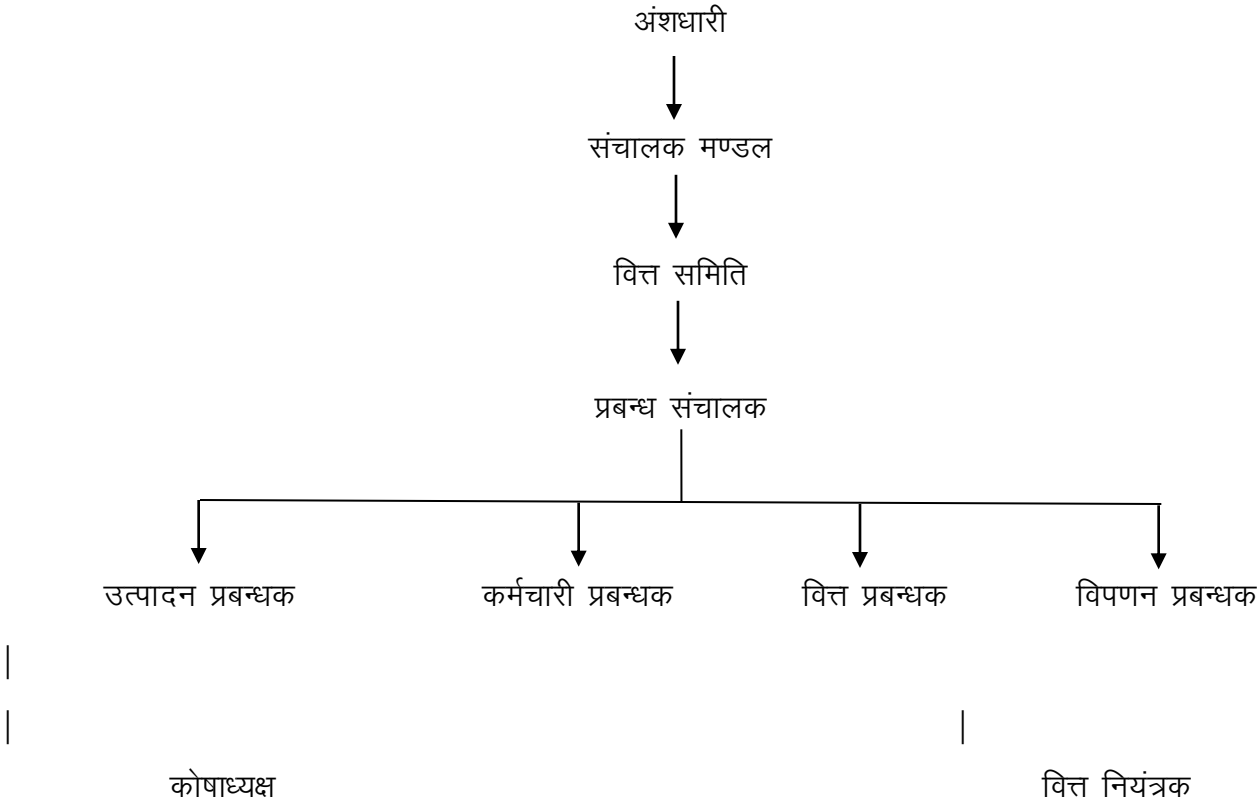

बैंकिंग व्यवहार	रोकड़ प्रबन्ध	सामान्य लेखे वेतन चिट्टे	वित्तीय विवरण
वित्त प्राप्ति/ वित्तीय नियोजन	साख प्रबन्ध	बजट	आन्तरिक अंकेक्षण
लाभांश वितरण	पेन्शन प्रबन्ध	कर प्रशासन	अभिलेखों की सुरक्षा

चार्ट को देखने से स्पष्ट होता है कि संचालक मंडल को वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण के लिए सलाह देने के लिए वित्त समिति संचालक मंडल तथा प्रबंध संचालक के मध्य कार्य करती है। प्रबंध संचालक के अधीन अन्य विभागाध्यक्षों अथवा उपाध्यक्षों अथवा प्रबंधकों की तरह से वित्त प्रबंधक अथवा उपाध्यक्ष वित्त होता है। वित्त प्रबंधक अथवा उपाध्यक्ष वित्त संस्था के समस्त वित्त कार्यों के लिए दायी होता है। वित्त प्रबंधक के अधीन दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी कोषाध्यक्ष तथा वित्त नियंत्रक होते हैं। कोषाध्यक्ष संस्था के बैंकिंग व्यवहार, रोकड़, प्रबंध, वित्त प्राप्ति साख प्रबंध लाभांश वितरण, कर्मचारियों की पेंशन प्रबंध आदि कार्य करता है। वित्त नियंत्रक सामान्य लेखे एवं वेतन, चिट्टे बनाने, वित्तीय वितरण तैयार करवाने, बजट बनाने, आन्तरिक अंकेक्षण, करों का नियोजन करने तथा अभिलेखों की सुरक्षा के कार्य करता है। इसी प्रकार कोषाध्यक्ष तथा वित्त नियंत्रक के अधीन अन्य अनेक कर्मचारी होते हैं। जो इनके कार्यों को सरल बनाते हैं। किसी भी संस्था में वित्त कार्य का संगठन अनेक तत्वों से प्रभावित होता है, जिनमें प्रमुख तत्व निम्न हैं :–

1. विभिन्न वित्तीय आवश्यकतायें (**Varying Financial Needs**): सभी फर्मों की वित्तीय आवश्यकताएँ समान नहीं होती हैं बल्कि वे उनके व्यवसाय की प्रकृति, आकार तथा वित्तीय क्रियाओं की तीव्रता आदि से प्रभावित होती हैं। उदाहरण के तौर पर एक विनिर्माणकारी फर्म को स्थायी संपत्तियों के क्रय के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है, जबकि सेवा उद्योग में फर्म की वित्तीय आवश्यकताएँ कम होती है। सभी ग्राहकों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं से संबंधित वित्तीय प्रणाली विकसित करती है।

2. वित्तीय अधिकारियों की योग्यताएँ (**Abilities of Financial Officers**) : जहाँ वित्तीय अधिकारी कम योग्यता वाले होते हैं वहाँ साधारण लेखांकन एवं रिपोर्टिंग संगठन विकसित किया जाता है जो बगैर अधिक वित्तीय विशेषज्ञता के कार्य करता है।

3. वित्तीय प्रणाली (**Financial System**) : संस्था द्वारा अपनायी गई वित्तीय प्रणाली बहुत ही परंपरागत प्रणाली से लेकर अत्याधिक आधुनिक प्रणाली हो सकती है। वित्तीय प्रणाली देश की अर्थव्यवस्था, कार्यशैली वित्तीय संस्थाओं एवं वित्तीय बाजारों से प्रभावित होती है, अतः एक संस्था को ऐसी वित्तीय प्रणाली अपनानी चाहिए जो देश के वित्तीय वातावरण के संदर्भ में संस्था की वित्तीय आवश्यकताओं की सुगमता से पूर्ति कर सके।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर संस्था को अपना वित्तीय संगठन बनाना चाहिए जिसमें योग्य वित्त अधिकारियों की नियुक्ति करके उन्हें विशिष्ट कार्य करने के अधिकार एवं दायित्व सौंपे जाने चाहिएं।

वित्तीय प्रबंधक की बदलती भूमिका भारत के विशेष संदर्भ में **(Changing Role of Financial Manager with Special Reference to India)**

आधुनिक व्यवसाय में वित्तीय प्रबंधक एक आधारभूत स्थान (Key Position) संभाले हुए है तथा वह उच्च प्रबंध टोली के सक्रिय सदस्यों में से एक होता है। जटिल प्रबन्ध समस्याओं के समाधान में उसकी भूमिका दिन–प्रति–दिन अधिक व्यापक, गहन तथा महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। वित्तीय प्रबंधक के कार्य केवल लेखे रखना, प्रतिवेदन तैयार करना तथा आवश्यकता के समय विभिन्न साधनों से कोष प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं रह गये हैं। बल्कि उसके कार्य इससे भी आगे बढ़ गए है। अब यह उपक्रम के भाग्य को निश्चित रूप देने के लिए भी जिम्मेदार होता है तथा वह पूँजी के आबंटन के सर्वाधिक निर्णय लेने में सम्मिलित रहता है। वित्तीय प्रबंधक का नवीन भूमिका में उसके कार्य एवं दायित्व बहुत अधिक बढ़ गये हैं। उसे इस नवीन भूमिका में अपना विस्तृत तथा दूरदर्शी दृष्टिकोण रखना आवश्यक है। उसके लिए अब यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि व्यवसाय के कोषों का सर्वाधिक कुशल प्रयोग किया गया है। उसके निर्णय फर्म के लिए दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाले होते हैं। उसके कार्यों में व्यावसायिक आवश्यकताओं के लिए विभिन्न साधनों से उचित शर्तों पर वित्त प्राप्त करना तथा व्यवसायिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उसका उपयोग एवं प्रबंध करना शामिल होता है।

भारत में वित्तीय सेवा क्षेत्र के विकास तथा सेबी का विनियोगिता हितों की रक्षा हेतु रखवाली करने वाले कुत्ते तथा पूंजी बाजार के नियंत्रक की भूमिका ने वित्तीय प्रबंधक के कार्यों को महावपूर्ण बना दिया है। कोष संग्रहण हेतु शून्य कूपन बाण्ड तथा लचीले बाण्ड वित्त प्राप्ति के नवीन औजारों के उदाहरण हैं जिनका कंपनियों की वित्तीय नीतियों पर सीधा प्रभाव पड़ा है।

प्रारम्भिक वर्षों में भारत में वित्त प्रबंधक को विक्रेताओं के बाजार में कार्य करना होता था। भारतीय व्यवसाय के अधिकांश क्षेत्रों में एकाधिकार की स्थिति थी। व्यवसाय को वित्त प्रायः बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं से ही प्राप्त होता था। अंशधारियों की संतुष्टि की प्रवर्तकों को चिन्ता नहीं रही है क्योंकि कंपनिया क्लोजली हैड (Closely held) रही हैं। परन्तु जब से भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व बाजार के लिए खोल दिया गया है, तब से विक्रेताओं का बाजार क्रेताओं के बाजार में परिवर्तित हो गया तथा भारतीय फर्मों को न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में नये युग का सूत्रपात हुआ है। नई वित्तीय व्यवस्था वित्त सेवा उद्योग का आगमन, वित्तीय औजारों, पुर्जों, तकनीकों तथा नवाचार के विकास, सार्वजनिक उपक्रमों के स्वः आत्मनिर्भर होने तथा अपने साधन पूँजी बाजार से प्राप्त करने आदि के कारण वित्तीय प्रबंधक की भूमिका ही बदल गयी है। इसमें उदारवाद, अनियंत्रण तथा वैश्वीकरण की बढ़ती प्रवृत्तियों के कारण अधिक बदलाव आया है और अधिक तेजी से आयेगा।

एक आधुनिक वित्त प्रबंधक के कार्य (Tasks of a Modern Finance Manager)

एक आधुनिक वित्त प्रबंधक के महत्त्वपूर्ण कार्यों को इजरा सोलोमन (Ezra Solomon) ने तीन तरह के प्रश्नों का जवाब देना माना है। ये प्रश्न हैं :

1. एक फर्म कितनी बड़ी हो तथा इसका कितनी तीव्रता से विकास हो ?
2. फर्म की संपत्तियों की संरचना कैसी हो?
3. फर्म की वित्तीय व्यवस्था या वित्त के साधनों का सम्मिश्रण कैसा हो?

उपर्युक्त प्रश्नों के संदर्भ में आधुनिक वित्त प्रबंधक के कार्यों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(अ) वित्तीय विश्लेषण एवं प्रगति जाँच,

(ब) वित्त व्यवस्था,

(स) विनियोजन।

उपर्युक्त का विस्तृत अध्ययन यहाँ किया जा रहा है :

वित्तीय विश्लेषण एवं प्रगति जाँच (**Financial Analysis and Monitoring**) :

वित्त प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य वित्तीय विश्लेषण करके निष्पत्ति बतलाना होता है। इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए वित्तीय प्रबंधक निम्न कार्य करता है :

(अ) वित्तीय दशाओं एवं निष्पत्ति का विश्लेषण (**Analysis of Financial Conditions and Performance**) : एक वित्त प्रबधंक को किसी समय विशेष पर संस्था की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण करके एक अवधि विशेष की निष्पत्ति का मूल्यांकन करना होता है। संस्था की वित्तीय स्थिति का

विश्लेषण करके फर्म के पर्यावरण को जानना आवश्यक होता है। कभी संस्था का वित्तीय पर्यावरण अनुकूल तथा कभी प्रतिकूल होता है।

(ब) वित्तीय पूर्वानुमान एवं नियोजन (Financial Forecasting and Planning):

संस्था का वित्तीय विश्लेषण करके निष्पत्ति का मूल्यांकन करने के बाद वित्तीय पूर्वानुमान करके वित्तीय नियोजन करना होता है। वित्तीय पूर्वानुमान में विभिन्न चलों का पूर्वानुमान किया जाता है तथा उनको ध्यान में रखकर वित्तीय नियोजन किया जाता है।

(स) वित्तीय नियंत्रण (**Financial Control**):

वित्तीय नियोजन के बाद वित्त प्रबंधक को वित्तीय नियंत्रण करना होता है। वित्तीय नियंत्रण हेतु विभिन्न प्रकार के बजटों एवं प्रमापों का निर्धारण किया जाता है। संस्था की वास्तविक निष्पत्ति का प्रमापित अथवा बजटेड निष्पत्ति के संदर्भ में मूल्यांकन किया जाता है। यदि प्रमापित निष्पत्ति एवं वास्तविक निष्पत्ति में सहन सीमा से अधिक विचलन होता है तो सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है।

वित्त व्यवस्था (Financing) :

वित्त व्यवस्था करना फर्म के वित्त प्रबंधक का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। इसके लिए वित्तीय प्रबंधक को अनेक क्रियाएँ करनी होती हैं :

(अ) आदर्श संयोग का चुनाव (**Selection of optimum combination of various sources of finance**) : वित्त प्रबंधक को संभावित उपलब्ध वित्त साधनों का अध्ययन करके विभिन्न साधनों का आदर्श संयोग चुनना होता है, जिससे पूँजी की लागत न्यूनतम रहे।

(ब) वित प्राप्ति की शर्तें व समय का निर्धारण (**Determination of terms and timing of financing**)

आदर्श संयोग के चुनने के बाद विभिन्न साधनों से वित्त प्राप्त करने के लिए कार्य करना होता है। विभिन्न साधनों से वित्त प्राप्त करने की शर्तें, समय आदि का निर्धारण भी वित्त प्रबंधक को करना होता है।

(स) लाभों के वितरण तथा प्रतिधारित अर्जितों के संबंध में निर्णय

(**Decision about distribution of dividend and retained earnings**) :

वित्त प्रबंधक को फर्म द्वारा अर्जित लाभ को अंशधारियों में लाभांश के रूप में बाँटने एवं संस्था में प्रतिधारित अर्जनों के रूप में रोकने के संबंध में भी निर्णय करना होता है। विनियोग (**Investing**) : फर्म द्वारा विभिन्न साधनों से जो वित्त एकत्र किया जाता है, उसे विभिन्न प्रकार की संपत्तियों एवं परियोजनाओं में विनियोजित करना होता है। विनियोजन कार्य में प्रमुख रूप से निम्न क्रियाएँ शामिल होती हैं :

(अ) चालू संपतियों में विनियोग का निर्धारण

(**Determination of investment in current assets**):

वित्त प्रबंधक को चालू संपत्तियों का प्रबंध करना होता है। वित्त प्रबंधक को निर्धारित करना होता है कि रोकड़, विक्रयशील प्रतिभूतियाँ, देनदार तथा सामग्री में कितना विनियोग हो? यदि इनका स्तर कम है तो उसे कैसे बढ़ाया जाये तथा किसी चालू संपत्ति में अत्याधिक विनियोग है तो उसको किस तरह से कम किया जाये ?

(ब) पूँजीगत परियोजनाओ के चयन के संबंध में निर्णय

(**Decisions regarding selection of capital investment projects**):

पूँजी बजटन विनियोजन का एक मुख्य क्षेत्र है। विभिन्न परियोजनाओं को स्वीकार करने के मापदण्डों को चुनाव करना, अनिश्चितता के तत्व को जानना तथा उसे कम करना वित्त प्रबंधक की योग्यता पर निर्भर करता है।

(स) पुनर्संरचना निर्णय (**restructuring decisions**):

संविलयन, पुनर्मिमणि तथा समापन जैसी कार्यवाहियों की आवश्यकता हो तो उसकी शर्तों एवं प्रक्रिया के निर्धारण में वित्त प्रबंधक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आधुनिक वित्त प्रबंधक के दायित्व

(Responsibilities of a Modern Finance Manager)

आधुनिक वित्त प्रबंधक निगम के अंशधारियों, लेनदारों, ग्राहकों, श्रमिकों तथा अन्य पक्षकार के प्रति दायी होता है। वित्त प्रबंधक के प्रमुख दायित्व निम्न हैं : लागतों एवं आगम में संतुलन (**Balancing Cost and Revenue**) : वित्त प्रबंधक को संस्था के कार्यचालन में उत्पन्न लागतों एवं आगम में संतुलन बनाये रखना होता है। विनियोजित पूँजी पर पर्याप्त प्रत्याय (**Adequatereturn on shareholders funds**) : अंशधारियों द्वारा संस्था में जो पूँजी विनियोजित की गई है उस पर उपयुक्त तथा स्थिर प्रत्याय उपलब्ध करवाना वित्त प्रबंधक का दायित्व है। यह तभी संभव होता है जब वित्त प्रबंधक स्वामियों की संपत्ति को अधिकतम करने के कार्य में लगा रहे।

वित के उपयोग का नियंत्रण (**Control of financial resources**):

वित्त प्रबंधक को वित्त के उपयोग के प्रमाप, कार्यविधियाँ तथा परम्पराएँ विकसित करनी होती हैं जिससे वित्त का दुरुपयोग रुके, आगम का रिसाव न हो तथा लागतों पर नियंत्रण रहे एवं उनमें कमी की जा सके। कानूनों का पालन (**Adherence of various laws**) : सरकार द्वारा वित्त के संबंध में पूँजी नियंत्रक, स्कन्ध विपणि, वित्तीय संस्थाओं के प्रयोग हेतु जो नियंत्रण कानून बनाये एवं लागू किये जाते हैं, उनका पूर्णरूप से पालन किया जाये तथा उनके अन्तर्गत जो सूचनायें प्रदान करनी होती हैं, वे समय पर दी जाएँ। वित्त प्रबंधक को कर–कानून, आयात–निर्यात नियंत्रण कानूनों तथा नियमों का पालन करना चाहिए।

लेनदारों के हितों का सरंक्षण (**Protection of creditors' interest**):

वित्त प्रबंधक का दायित्व है कि वह लेनदारों के हितों को सुरक्षित रखे। उनके ऋणों का समय पर भुगतान करे। कार्य के लिए पर्याप्त तरलता की व्यवस्था करनी होती है। संस्था की लाभदायिकता एवं तरलता बनी रहने पर ही लेनदारों के हितों की रक्षा होती है।

कर्मचारियों के हितों का संरक्षण व प्रोत्साहन (**Protection and Promotion of employees interest**) : वित्त प्रबंधक संस्था के कर्मचारियों के प्रति भी दायी है। संस्था योग्य एवं कुशल कर्मचारियों को तभी आकर्षित कर सकती है जब उनके लिए पुरस्कार की उपयुक्त दरें निर्धारित की जायें। कर्मचारियों को विविध प्रकार के प्रोत्साहनों एवं बोनस आदि का समय पर भुगतान किया जाना चाहिए।

वित्तीय प्रबंध की सीमाएँ **(Limitations of Financial Management)**

वित्तीय प्रबंध की भूमिका लगातार परिवर्तित होती जा रही है। पहले वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता केवल विशेष अवसरों पर वित्त प्राप्ति हेतु अनुभव की जाती थी परन्तु अब वित्तीय प्रबंध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है तथा इसकी आवश्यकता प्रबंध में लगातार बढ़ती जा रही है तथा यह उच्च प्रबंध का भाग हो गया है। वितीय प्रबंध का अत्यधिक महत्त्व होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए। वित्तीय प्रबंध की प्रमुख सीमाएँ निम्न हैं:

सभी प्रबंधकीय निर्णयों के वित्तीय प्रभाव जानना कठिन (**It is difficult to know the financial effects of various managerial decisions**): एक संस्था में प्रबंध के जितने कार्यात्मक क्षेत्र हैं उन सब के निर्णय वित्तीय प्रभाव रखते हैं। अतः वित्तीय प्रबंधक के लिए सभी कार्यात्मक प्रबंधकीय निर्णयों के प्रभावों को जानना तथा उन सब में

समन्वय स्थापित करना बड़ा कठिन कार्य होता है।

वित्तीय लेखों पर निर्भर (Based on financial records) :

वित्तीय प्रबंध के लिए वित्तीय विश्लेषण एवं निर्वचन की अनेक तकनीकें काम में ली जाती हैं, जो वित्तीय लेखों पर आधारित होती हैं। वित्तीय लेखे भूतकाल से संबंधित होते हैं तथा लेखा परम्पराओं एवं नीतियों से प्रभावित रहते हैं। अतः इन पर आधारित वित्तीय निर्णय इनमें व्याप्त दोषों से ग्रसित रहते हैं।

संबंधित विषयों की कम जानकारी (Lack of knowledge of related subjects) :

वित्तीय प्रबंध के सही उद्देश्य तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि वित्तीय प्रबंधकों को प्रबंध, प्रबंध लेखांकन, सांख्यिकी, अर्थशास्त्र, अभियान्त्रिकी आदि की अच्छी जानकारी हो। इनकी जानकारी के अभाव में उच्च प्रबंध सही निर्णय लेने एवं उनके वित्तीय प्रभाव जानने में सक्षम नहीं होगा।

वस्तुनिष्ठता का अभाव (Lack of objectivity) :

वित्तीय प्रबंध पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं है। वित्तीय प्रबंध के निर्णय वित्तीय प्रबंधकों के व्यक्तिगत विचारों एवं भावनाओं से प्रभावित होते हैं और जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तो वित्तीय निर्णय संस्था के लिए अच्छे परिणाम कम एवं बुरे परिणाम अधिक प्रदान करते हैं। **विकासशील विषय (Developing Subject) :**

वित्तीय प्रबंध पूर्ण रूप से विकसित विषय नहीं है तथा इसका अभी विकास हो रहा है। अनेक विचारों एवं धारणाओं के बारे में विशेषज्ञ एकमत नहीं हैं। वित्तीय विश्लेषण एवं निर्वचन के प्रमाप भी बदल रहे हैं।

व्ययशील (Expensive) :

यह प्रभावशाली वित्तीय प्रबंध का संगठन खड़ा करना बड़ा महँगा कार्य है। अतः छोटे व्यावसायिक प्रतिष्ठान इस भार को वहन नहीं कर पाते हैं। वित्तीय अधिकारी योग्य एवं कुशल होने चाहिए। यदि कोई संस्था योग्यता एवं कुशलता से समझौता करके घटिया संगठन निर्मित करती है तो उसके परिणाम बड़े बुरे होते हैं।

नये उभरते रुझान (Emerging Trends of Financial Administration)

(1) राजकोषीय घाटे का विनियोजन एवं नियंत्रण **(Planning of Control of Tresuary Deficit)** भारत में विकासात्मक प्रयासों की खास विशेषता यह रही है कि यहाँ उपलब्ध स्रोतों से कहीं अधिक निवेश का प्रयास होता रहा है। इस अंतर को अनुकूल भुगतान संतुलन तथा विदेशी धन–प्रेषणों द्वारा दूर किया जाना चाहिए था। किन्तु भारतीय नीति–निर्धारकों ने मुद्रा प्रसार की अकूत खुराकों पर साख कायम करके इस अंतर को मिटाने की कोशिश की। घाटे की वित्त व्यवस्था को करारोपण समेत स्रोत जुटाने के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया गया। घाटे की वित्त व्यवस्था की वार्षिक औसत–दर में वर्ष–दर–वर्ष वृद्धि होती गई। यह धारणा योग्य सुरक्षित सीमा से कहीं आगे निकल गई जो कि कथित तौर पर उपभोक्ता मालों की आपूर्ति की वृद्धि–दर, अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण के स्तर तथा उत्पादन एवं वितरण पर नियंत्रण की सीमा, द्वारा निर्धारित होती है। इस ताबड़तोड़ घाटे की वित्त व्यवस्था के परिणाम के तौर पर साठ के दशक के मध्य से ही मुद्रास्फीति की ऊँची दर,अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्षण बन गई है। इसने भुगतान संतुलन की समस्या पैदा कर दी है। जुलाई 1991 में, यह परिस्थिति एक आर्थिक संकट में बदल गई। इस संकट को हल करने के लिए सरकार को अनेक उपाय करने पड़े। प्रमुख लक्ष्य था राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण करना तथा 1992–93 तक इसे घटाकर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय) के 5 प्रतिशत तक ले जाना।

(2) गैर–विकासात्मक व्यय में कटौती **(Reduction in Non-Developmental Expenditure)** भारतीय स्रोत का एक बड़ा हिस्सा गैर–विकासात्मक व्ययों में व्यर्य चला जाता है जो कि एक गैर–उत्पादक प्रवाह है। गैर–विकासात्मक

व्यय में भारी वृद्धि हुई है। इस बार का एक बड़ा हिस्सा फिजूलखर्ची, अक्षमता तथा निष्फल लोक–नीतियों एवं गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। रक्षा तथा कानून–व्यवस्था पर भारी परिव्यय ने भी इस रुझान की तरफ बढ़ने में योगदान किया है। लोक–नीति ने व्यय को कम करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। बचतों का अधिकांश भाग, आर्थिक राहतों, रक्षा–व्यय, सार्वजनिक उद्यमों के स्रोतों के अंतरण, चालू एवं पूंजी व्यय, में कटौतियाँ करके, प्राप्त किया जाना है। सरकार ने घोषणा की है कि वित्त–वर्ष की बकाया अवधि के दौरान अनुपूरक विनियोजन के जरिए, व्यय में कोई वृद्धि नहीं की जाएगी, जब तक कि इस तरह के प्रस्तावों के साथ समान रूप से कहीं अन्यत्र बचत के सुझाव न दिए गए हों।

शून्य आधारित परिप्रेक्ष्य का विकास (Development of Zero Based System)

भारत मे बजटीय निर्णयों का प्रमुख लक्षण वृद्धिकारी दृष्टिकोण रहा है। हालांकि समूचे स्तर पर शून्य आधारित बजट प्रणाली की स्थापना का प्रयास नहीं किया गया है, पिछले करीब 5 वर्षों के दौरान विकसित हुई व्यय–नीति ने, इस नई बजटीय अवधारणा के मूलभूत आधार–वाक्य पर ध्यान दिया है। यह मांग की गई है कि सरकारी व्यय के किसी भी क्षेत्र को छानबीन से परे नहीं रखा जाना चाहिए।

4. आकस्मिकता दृष्टिकोण का प्रयोग (Use of Contingent View)

आकस्मिकता दृष्टिकोण सार्वजनिक संगठन की सभी उप प्रणालियों, जिनमें पर्यावरण की उच्चतर–प्रणाली भी शामिल है, के विश्लेषण एवं समझ पर बल देता है ताकि लोक नीतियों तथा प्रशासनिक कार्यवाहियों को विशिष्ट परिस्थतियों तथा पृष्ठभूमियों की मांग के अनुरूप ढाला तथा समन्वित किया जा सके। यह किसी लोक–प्रशासक को एक संपूर्ण समस्या का व्यावहारिक हल ढूंढने में सक्षम बनाता है। हाल के आर्थिक संकट का सामना करने हेतु दृष्टिकोण ने इस आधुनिकतम सिद्धांत के मूल तत्त्व प्रतिबिंबित हुए हैं उदाहरण के रूप में यद्यपि घाटे की वित्त व्यवस्था की तरफ सरकार के पास राजनैतिक सत्ता तथा बुनियादी रुझान मौजूद हैं, किन्तु वह इसके विपरीत फैसले लेने के बाध्य है। ऐसा परिस्थितियों के दबाव के कारण हुआ। इसी तरह, आत्म–निर्भर तथा सामाजिक बराबरी की अवधारणाएँ अब सरकार की मुख्य चिन्ताएँ नहीं रही हैं, जैसा कि विदेशी भागीदारी जिसमें अप्रवासी भारतीय पर विशेष बल दिया गया है, की तरफ खुले–दरवाजे वाली नीति से स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह के अन्य लोक नीतिगत निर्णय भी लिए गए हैं जो अर्थव्यवस्था को बाजार–क्रियाविधि की तरफ मोड़ने के प्रयास है।

5.सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर कम किया जाना (Less Stress on Public Area)

भारत में, सार्वजनिक उद्यमों के लिए तर्काधार इस उक्ति पर आधारित रहा है, कि राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्ति के लिए राज्य का स्वामित्व जरूरी है। इस मूल्यगत निर्णय के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण किया गया था। सार्वजनिक उद्यमों की बड़ी संख्या में लगातार चढ़ते घाटों, राजकोषीय घाटे में कमी लाने हेतु स्रोतों की आवश्यकता सार्वजनिक उद्यमों के निजीकरण की तरफ विश्वव्यापी रुझान, इन सभी ने मिलकर सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की नीति में परिवर्तन ला दिया। सरकार की नई उद्योग नीति ने इस विचारधारा का अंत कर दिया। सरकार की नयी उद्योग–नीति के लक्षणों के बारे में हम इस खंड की ईकाई 3 में वर्चा करेगें। उदाहरण के रूप में, आठवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र पर परिव्यय, सातवीं योजना में 54 प्रतिशत के मुकाबले घटाकर 43.2 प्रतिशत कर दिया गया। सरकार, सार्वजनिक क्षेत्र को अतिरिक्त बजटीय सहायता देने के विरूद्ध है। दरअसल, सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के बीच विभाजन को मिटा देने और "राष्ट्रीय क्षेत्र" की तरफ रुझान बढ़ रहा है जिसमें कि सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र का एक दूसरे में विलय हो जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र की समता–भागीदारी को बढ़ावा देने की सरकार की मुहिम, इस नये दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने वाला उल्लेखनीय नीतिगत उपाय है।

6. सार्वजनिक मालों तथा सेवाओं की गैर–नौकरशाही आपूर्ति

(Fullfilment the Non-Bureaucratic Assets and Services)

सार्वजनिक पसंद विचारकों का अनुसरण करते हुए, सरकार सार्वजनिक मामलों तथा सेवाओं को प्रतिस्पर्धा पूर्ण ढंग से प्रदान करने की दृष्टि से विचार कर रही है ताकि सार्वजनिक इजारेदारी के गड्ढे में गिरने से बचा जा सके। उदाहरण के बतौर, सरकार ऊर्जा उत्पादन एवं वितरण, इलैक्ट्रोनिक प्रचार माध्यम तथा दूर–संचार, सड़क निर्माण इत्यादि के क्षेत्र में निजी क्षेत्र को शामिल करने के बारे में गंभीरता से विचार कर रही है।

7. विकास योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता हेतु विकेन्द्रिकृत दायित्व पर बल

(Stress on the Decentralisation of Financial Help on Development Plans)

योजना बनाने तथा साथ ही योजना के लिए वित्त जुटाने का दायित्व संघीय सरकार पर रहा है। राज्य सरकारें अपने बजटीय प्रावधानों द्वारा समर्थित योजनाओं की बजाय, केन्द्र द्वारा प्रसारित योजनाओं को ही लागू कर सकी है। राज्यों में इस तरह की प्रवृति के चलते स्रोत जुटाने के काम के प्रति उदासीनता का भाव रहा है। यह लक्षण, राज्य सरकारों द्वारा लोकप्रिय उपायों पर बढ़ते हुए जोर से स्पष्ट हो जाता है। आर्थिक सुधारों को आगे बढ़ाते हुए संघीय सरकार, "परिचायक–नियोजन" की अवधारणा के निकट आ पहुंची है। यह बदली हुई समझ, आठवीं पंचवर्षीय योजना की प्रस्थापनाओं में झलकती है। संघीय सरकार अब सहकारी संघवाद को प्रोत्साहन दे रही है और इसलिए स्रोत जुटाने के काम में राज्य के काम में राज्य सरकारों के लिए एक सक्रिय भूमिका की माँग कर रही है।

8. नियंत्रणहीनता तथा उदारीकरण की ओर (Progress to Liberalisation & Decentralisation)

संघीय सरकार बाजार–क्रियाविधि को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रयास कर रही है, ताकि उद्यमशील व्यापारी व्यक्तियों की उत्पादन क्षमता को अधिकाधिक बढ़ाया जा सके और इस तरह मुक्त बाजार–अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ रही है। निजी क्षेत्र तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की जायज आवश्यकताओं के अनुरूप उद्योग–नीति के अनुकूल संशोधन कर लिए गए हैं। व्यापार–नीति तथा वाणिज्य नीति में इसी तरह के परिवर्तन किए गये हैं। लोगों में यह आशंका बढ़ रही है कि आय तथा संपत्ति की असमानताएँ बढ़कर भारी आघात पहुंचा सकती है और समाज के गरीब तथा कमजोर तबके की भारी उपेक्षा का शिकार होकर उन्हीं के हाल पर छोड़ दिए जा सकते हैं। इस दुर्भाग्यपूर्ण रुझान की क्षतिपूर्ति काफी हद तक सामाजिक सेवाओं तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर व्यय में बढ़ोतरी के जरिए की जा सकती है। इसके प्रमाण मिल रहे हैं कि सरकार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाने तथा अन्य तरीकों से, इस तरह की नीतिगत पहल कर रही है जिनसे यह सुनिश्चित हो जाये कि प्रगति को समता की कुर्बानी देकर हासिल न किया गया हो।

संक्षेप में इन नये रुझानों का आशय बाजार की शक्तियों को नौकरशाही नियंत्रण से मुक्त करना है। ये रुझान कम विकसित देशों की जरूरतों के काफी अनुकूल पाए गए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. के॰एन॰ बसईया, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, 1986
2. जी॰एस॰ लाल, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, दिल्ली : एच॰पी॰ कपूर, 1969
3. एम॰जे॰के॰ थावराज, फाइनेन्शियल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, नई दिल्लीः सुल्तान चन्द, 2002

कुछ प्रश्न

- वित्त प्रशासन की समस्याओं तथा सम्भावनाओं की समीक्षा करो।
- वित्तीय प्रबन्ध की विशेषताएं तथा कार्यों का वर्णन करो।